इकाई 1- अन्तर्राष्ट्रीय संबंध- अर्थ, स्वरूप

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 अन्तर्राष्ट्रीय संबंध: अर्थ
1.4 अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों के अध्ययन की आवश्यकता
1.5 अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों की बदलती प्रकृति
1.6 अंतर्राष्ट्रीय संबंध का अध्ययन क्षेत्र
1.7 सारांश
1.8 शब्दावली
1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.11 सहायक /उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.12 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

राजनीति विज्ञान के अध्येता के लिए अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों का अध्ययन बड़ा ही आकर्षक विषय रहा है| यह आकर्षण भूमंडलीकरण की प्रक्रिया के विस्तार के साथ और भी बढ़ जाता है क्योंकि इस प्रक्रिया मेंदुनियाँके राष्ट्रों को बहुत नज़दीक ला दिया है| सूचना तकनीकी की उन्नत व्यवस्था की उपलब्धता यातायात और परिवहन के अत्याधुनिक साधनों ने भी दुनियाँ को अपने बीच की दूरियों खासतौर से भौतिक दूरी को कम करने का बहुत ही सफलतापूर्वक कार्य किया है|

अन्तर्राष्ट्रीय शब्द जर्मी बेंथम के द्वारा 18 वीं शताब्दी में सर्वप्रथम प्रयोग में लाया गया |दुनियाँके राष्ट्रों के बीच आर्थिक सामाजिक सांस्कृतिक संबंधों का विस्तार काफी पहले से रहा है परंतु संचार और यातायात के साधनों के विस्तार के साथ उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों का विस्तार बहुत अधिक हुआ क्योंकि दुनियाँ के राष्ट्र आज एक दूसरे पर पूर्व की अपेक्षा अधिक निर्भर है |राष्ट्रों के बीच के संबंधों का अध्ययन नितांत आवश्यक होता है क्योंकि जब हम अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों की बात करते हैं और यह संबंध स्वतंत्र संप्रभु राष्ट्रों के बीच के संबंध है, इसलिए प्रमुखता से राजनीतिक संबंधों से इसका असर होता है|

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत निम्नलिखित विषयों के बारे में आप जान सकेंगे

१. अन्तर्राष्ट्रीय संबंध के अर्थ के बारे में आप जान सकेंगे

२.उसकी प्रकृति के बारे में आप जान सकेंगे

३. अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों के अध्ययन की उपयोगिता के संदर्भ में विस्तार से जान सकेंगे

1.3 अन्तर्राष्ट्रीय संबंध: अर्थ

जैसा कि हम जानते हैं आज दुनियाँ में बहुलता स्वतंत्र और संप्रभु राष्ट्र की है| इन राष्ट्रों के बीच सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनैतिक संबंध पाए जाते हैं | इन राष्ट्रों के बीच संचार के साधनों और यातायात के साधनों के कारण नजदीकियां बढ़ी है| जैसा कि ऊपर हम स्पष्ट कर चुके हैं कि राजनीति विज्ञान के विद्यार्थी के लिए अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों का अध्ययन बहुत ही महत्वपूर्ण है| अन्तर्राष्ट्रीय से तात्पर्य यहाँ राष्ट्रों के मध्य है, और संबंध का अर्थ राष्ट्रों के बीच विविध आयामों को समेटे हुए अपने आप में संबंध है| यह संबंध सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक या अन्य किसी भी प्रकार के हो सकते हैं| जिसमें राष्ट्रों के बीच न केवल सकारात्मक और सृजनात्मक संबंधों की बात इसमें शामिल है वरन राष्ट्रों के बीच संघर्ष और सहयोग से संबंधित पक्षों का अध्ययन भी अन्तर्राष्ट्रीय संबंध के अंतर्गत शामिल है|

जैसा कि मार्गेन्थाऊ के अनुसार राजनीति की तरह अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति सत्ता के लिए संघर्ष है और सत्ता का उद्देश्य अपने हितों को आगे बढ़ाना है| अंततः अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों को आगे बढ़ाने की बात की जाती है तो उसके अंतर्गत कूटनीति और नाना प्रकार के उपाय शामिल होते हैं जो एक राष्ट्र के द्वारा अन्य राष्ट्रों को अपने अनुकूल अपने हितों के अनुकूल करने की प्रक्रिया में शामिल होती है| इसलिए तथा अन्य ऐसी प्रक्रिया में भी अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों के अध्ययन के दायरे में आती है |इस विषय को लेकर के सभी विद्वानों में मतभेद है कुछ विद्वान इसको केवल राजनीतिक संबंधों तक सीमित मानते हैं परंतु यहां यह स्पष्ट करना नितांत आवश्यक होगा कि अन्य सभी संबंध सामाजिक सांस्कृतिक आर्थिक संबंधों का भी अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों के अंतर्गत अध्ययन उस सीमा तक करते हैं जहां तक वह राष्ट्रों के बीच के परस्पर राजनीतिक संबंधों को प्रभावित करता है| इसलिए अन्तर्राष्ट्रीय संबंध अपनी प्राकृति में काफी विस्तृत और व्यापक हो जाता है क्योंकि राष्ट्रों की पारस्परिक हितों की सिद्धि की प्रक्रिया अत्यंत व्यापक है|

किसी एक राष्ट्र के हित सदैव समान रहेंगे यह आवश्यक नहीं | हितों की परिभाषा समय के सापेक्ष होती है | एक राष्ट्र की प्राथमिकताएं बदलती रहती हैं| इस बदलाव के साथ राष्ट्रों के एक दूसरे के प्रति व्यवहार और व्यवहार के मानदंड भी बदलते रहते हैं क्योंकि राष्ट्रों का अंतिम उद्देश्य अपने हितों की सिद्धि करना है और इन्हीं की सिद्धि अन्तर्राष्ट्रीय जगत में अपनी हैसियत बड़ा करके ही की जा सकती है इसलिए इसमें वह प्रक्रिया भी शामिल हो जाती हैं जो किसी राष्ट्र की क्षमता विस्तार से संबंधित होती हैं|

इस प्रकार अंतर्राष्ट्रीय संबंध किसी समय विशेष में विश्व के सभी राष्ट्रों के बीच संबंधों की एक ही स्थिति के रूप में है साथ ही वर्तमान समय में एक स्वतंत्र विषय के रूप में भी स्थापित हो रहा है|

1.4 अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों के अध्ययन की आवश्यकता

वर्तमान समय में हम 21वीं सदी में जी रहे हैं| जिसमेंदुनियाँके सभी राष्ट्र एक दूसरे से जुड़े हुए हैं| यातायात के साधनों के सुलभता उपलब्धता तथा संचार के व्यापक साधनों के कारण दुनियाँके राष्ट्रों का एक दूसरे से जुड़ना आसान हो गया है|दुनियाँ में संपूर्ण राष्ट्र की बोलता है| और यह संपूर्ण राष्ट्र एक दूसरे से सामाजिक सांस्कृतिक राजनीतिक आर्थिक विषयों को लेकर के जुड़े हुए हैं| जो अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अन्य से सहयोग प्राप्त करने तथा इस सहयोग की प्राप्ति के लिए अन्य को सहयोग करने के लिए काफी हद तक तत्पर रहे हैं इस तत्परता ने दुनियाँ के देशों को और गतिशील तरीके से एक सूत्र में पिरोने का कार्य किया है|

राजनीति विज्ञान के विद्यार्थी के लिए यह विषय बहुत ही महत्वपूर्ण हो जाता है कि दुनियाँ के देशों के बीच आपसी संबंधों में क्या हो रहा है क्योंकि जैसा कि ऊपर हम बता चुके हैं सामाजिक आर्थिक सांस्कृतिक और अपनी

आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए राजनीतिक विशेष रूप से राजनयिक संबंधों में बहुत आगे बढ़ चुके हैं| आज दुनियाँ के राष्ट्रों की अंतर्निर्भरता में वृद्धि हुई है| इस अंतर्निर्भरता में वृद्धि के कारण एक राष्ट्र के अंदर होने वाले घटना अन्य सभी राष्ट्रों को भी काफी हद तक प्रभावित करती है और यह आर्थिक मंदी या किसी युद्ध की स्थिति में उस देश की आर्थिक स्थिति जो दुनियाँ के अन्य राष्ट्रों से जुड़ी हुई है अन्य राष्ट्रों को भी प्रभावित करती है|

इसलिए इतिहास अर्थशास्त्र राजनीति विज्ञान समाजशास्त्र जो जीवन के किसी न किसी आवश्यकता की पूर्ति से संबंधित है और क्योंकि यह सभी एक दूसरे से एकीकृत हैं इनको एक दूसरे से प्रथक नहीं किया जा सकता और इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दुनियाँ के राष्ट्र परस्पर अंतर्निर्भर और अंतरसंबंधित है इसलिए राष्ट्रों के बीच के संबंधों का अध्ययन करना नितांत आवश्यक हो जाता है|

इस प्रकार के अध्ययन के परिणामस्वरूप ही यह स्पष्ट होता है कि राष्ट्रों के विदेश नीतियों और किसी दूसरे राष्ट्र के प्रति अपनाए जाने वाले व्यवहार और मानदंडों के पीछे आधारभूत सिद्धांत हो सकते हैं वह कौन से तरीके अपनाए जाएं जिनसे राष्ट्रों के बीच जो संबंध है परस्पर सहयोग और सामंजस्य के हो| क्योंकि अभी देखा जाता है कि राष्ट्रों के बीच अपने हितों को लेकर के संघर्ष और कभी-कभी युद्ध जैसी स्थिति उत्पन्न होती है इससे आगे कभी कभी यूं भी दिखाई देते हैं का अध्ययन करने के लिए राष्ट्रों के बीच के संबंधों का अध्ययन करना नितांत आवश्यक हो जाता है| आज आतंकवाद एक वैश्विक समस्या है जिससे दुनियाँ के सभी राष्ट्र प्रभावित हैं| आतंकवादी गतिविधियों और उनके क्रियाकलापों से राष्ट्रों के बीच के संबंधों पर भी नकारात्मक तथा सकारात्मक प्रभाव पड़ते हुए दिखाई देते हैं अतः राष्ट्रों के बीच के संबंधों का अध्ययन आवश्यक हो जाता है|

अध्ययन के आधार पर स्पष्ट है कि इस भूमंडलीकरण के दौर में एक दूसरे से बहुत तेजी से जुड़ रहे हैं और उनके बीच आदान-प्रदान बढ़ रहा है उनके भी चिंता बढ़ रही है ऐसी स्थिति में हुई किसी भी गतिविधि का प्रभाव पड़ रहा है| राष्ट्रों के बीच के संबंधों का अध्ययन करने वाले एक विषय के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय संबंध अध्ययन की उपयोगिता स्वयं सिद्ध है|

1.5 अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों की बदलती प्रकृति

बदलाव प्रकृति का नियम है| इसलिए इससे अछूते अन्तर्राष्ट्रीय संबंध भी नहीं| अन्तर्राष्ट्रीय अध्ययन करने के संदर्भ में द्वितीय विश्व युद्ध को एक विभाजक के रूप में मान सकते हैं| दितीय विश्व युद्ध के पूर्व दुनियाँ के अधिकांश राष्ट्रों पर यूरोप के साम्राज्यवादी ताकतों का प्रभाव था| एशिया अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के देश यूरोपीय साम्राज्यवादी ताकतों के अधीन थे| इसलिए अंतर्राष्ट्रीय संबंध का मतलब था यूरोपियन राष्ट्र राज्यों के बीच के आपसी संबंध| इसके स्वरूप प्रकृति के निर्धारण में मुख्य नियंताओं राजनयिकों का मुख्य योगदान हुआ करता था| इस वजह से यह अधिकांश तक गोपनीय भी होता था|

परंतु द्वितीय विश्व युद्ध ने अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों की प्रकृति में आमूलचूल परिवर्तन ला दिया| उसके प्रमुख कारणों के अभिलेख किया जाए तो उनको इस प्रकार से सूचीबद्ध किया जा सकता है| द्वितीय विश्व युद्ध के परिणाम स्वरूप दुनियाँ में वर्चस्व की स्थिति में रहे ब्रिटेन का पराभव हुआ दूसरी तरफ 2 नवीन शक्तियों का उद्भव हुआ संयुक्त राज्य अमेरिका और दूसरा सोवियत संघ| संयुक्त राज्य अमेरिका उदारवादी पूंजीवादी लोकतांत्रिक विचारधारा का प्रतिनिधित्व कर रहा था तो दूसरी तरफ सोवियत संघ साम्यवादी चिंतन और विचारधारा का प्रचार कर रहा था| इन दोनों का उद्देश्य एक दूसरे के प्रमुख क्षेत्र को सीमित करना अपने क्षेत्र का और प्रभाव का विस्तार करना| इसी के साथ एक अन्य घटना घट रही थी वह थी एशिया ,अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के बहुत सारे देशों के गुलाम थे उपनिवेश थे, वे स्वतन्त्र हुए | इन नव स्वतंत्र राष्ट्रों का उद्देश्य जहां एक तरफ अपनी स्वतंत्रता को बनाए रखना था तो दूसरी तरफ अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों में एक सम्मानजनक स्थिति को प्राप्त करना था |इसलिए यह इन दोनों

महा शक्तियों के बीच प्रभाव क्षेत्र के विस्तार को लेकर चले संघर्ष में शामिल होना नहीं चाहते थे| इन एक एक नए आंदोलन की शुरुआत की जिसको गुटनिरपेक्ष आंदोलन के नाम से जानते हैं|

इन परिस्थितियों में अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों की प्रकृति में व्यापक बदलाव आया जैसा कि पूर्व में हम बता चुके हैं स्पष्ट कर चुके हैं युद्ध के पूर्व अन्तर्राष्ट्रीय संबंध कहीं न कहीं यूरोपीय राष्ट्रों के बीच के संबंधों तक सीमित थे वह गुप्त अर्थात नियमों और राजनयिकों द्वारा संचालित किए जाने वाले संबंधों तक सीमित परंतु जब लोकतांत्रिक देशों की बहुलता होने से में लोकतांत्रिक तौर तरीके का प्रयोग किया जाने लगा| देश के अंदर देश के बाहर के नीतियों के निर्माण में राष्ट्रों के बीच के संबंधों में आम जनमानस के विचार को महत्व मिलने लगा तब अन्तर्राष्ट्रीय संबंध अपेक्षाकृत खुला और विस्तृत हुआ ,क्योंकि क्षेत्र की दृष्टि से भी यूरोप की सीमा तक सीमित करके पूरीदुनियाँको समेटे हुए हैं जो दुनियाँ के राष्ट्रों के बीच के संबंधों में सामाजिक सांस्कृतिक आर्थिक और राजनीतिक संबंध विशेष रूप से उल्लेखनीय है ,का अध्ययन किया जाता है|

यहां यह भी उल्लेखनीय है कि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद विश्व शांति की स्थापना और राष्ट्रों के बीच पारस्परिक सहयोग के उद्देश्य से संयुक्त राष्ट्र जैसे संगठन का उद्भव हुआ अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों के स्वरूप के निर्धारण में काफी हद तक उनकी भी भूमिका महत्वपूर्ण रही है |

1.6 अंतर्राष्ट्रीय संबंध का अध्ययन क्षेत्र

जैसा कि हम पूर्व में स्पष्ट कर चुके हैं की आज दुनियाँ में बदलाव बहुत तेजी से हो रहा है|दुनियाँके राष्ट्रों का जुड़ाव उनमें आपसी संबंधों का विस्तार बहुत तेजी से हो रहा है| इन संबंधों के दायरे का विस्तार भी बहुत तेजी से हो रहा है जैसे| आर्थिक संबंधों का विस्तार आर्थिक संबंधों के विस्तार के लिए अन्य प्रकार के संबंध भी बड़े महत्वपूर्ण है जैसे तकनीकी संबंधों तकनीकी का हस्तांतरण ,इस हस्तांतरण की प्रक्रिया में नाना प्रकार के दबाव जो प्रयोग किए जाते हैं वह भी अन्तर्राष्ट्रीय संबंध की प्रकृति को बहुत प्रभावित करते हैं |इसलिए इसका भी अध्ययन नितांत आवश्यक हो जाता है|दुनियाँ में बहुत सी ऐसी समस्या है जिनका राष्ट्रों के आपसी संबंधों पर व्यापक प्रभाव पड़ता है इसलिए उनका भी अध्ययन नितांत आवश्यक हो जाता है, जैसे क्षेत्रीय संगठन है जो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रों के बीच के संबंधों और अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों की व्यापक प्रभाव डालते हैं क्षेत्रीय संगठनों का अध्ययन भी अपरिहार्य हो जाता है|

क्षेत्रीय संगठनों के साथ अंतर्राष्ट्रीय संगठन बने हुए हैं जो राष्ट्रों के बीच सामंजस्य पूर्ण सहयोग पूर्ण संबंधों के स्थापना और उनके बीच संबंधों के स्थापना करने के लिए कार्य करना है| जैसे संयुक्त राष्ट्र संगठन यह संगठन अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रों के बीच सहयोग और सामंजस्य के लिए काम करता है| इसकी सफलता और असफलता और इसके कार्य करने की प्रक्रिया है इनके कार्य में आने वाली बाधाएं भी अध्ययन का विषय है|

आज दुनियाँ में व्यापार की दृष्टि से राष्ट्रीय दूसरे से जुड़ रहे हैं एक देश की कंपनियां दूसरे अन्य देशों में व्यापक स्तर पर व्यापारी को आर्थिक वाणिज्यिक गतिविधियों में अपने आप को संलग्न किए हैं जिन्हें बहुराष्ट्रीय निगम के नाम से जानते हैं जो राष्ट्रों के बीच के संबंधों और उनके आर्थिक गतिविधियों को प्रभावित करती हैं इसलिए इनका भी अध्ययन अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों के अध्ययन क्षेत्र में शामिल हो जाता है|

दुनिया के राष्ट्र एक दूसरे से बहुत तेजी से जुड़े और उनके बीच अंतर निर्भरता का विस्तार हुआ है इसलिए राष्ट्रों के बीच सहयोग और समन्वय का विषय बहुत ही केंद्रीय महत्व का विषय है| द्वितीय विश्व युद्ध के बाद एशिया , अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के बहुत सारे देश स्वतंत्र हुए जिन्होंने अपने आंतरिक और बाह्य मामले में अपने द्वारा अपनाई जाने वाले निर्णय होनी थी और कार्यवाही को अपनाने पर बल दिया जिसका प्रभाव भी दुनियाँ में

वैश्विक स्तर पर पड़ा है और राष्ट्रों के बीच आपसी संबंधों के पड़ा है| इसलिए इनके राज व्यवस्था में आने वाले परिवर्तनों और गत्यात्मक तत्वों का अध्ययन भी महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि यह अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर राष्ट्रों के बीच के संबंधों पर भी व्यापक प्रभाव छोड़ते हैं|

क्योंकिदुनियाँअभी तक दो विश्व युद्धों का सामना कर चुकी है इस इसलिए युद्ध युद्ध के पूर्व की दशाएं जिनके कारण युद्ध की स्थिति पैदा होती है| युद्ध के दौरान की प्रक्रिया है और कुछ प्रक्रियाओं का अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पड़ने वाले व्यापक प्रभाव तथा युद्ध के उपरांत अपनाए जाने वाले पुनर्वास, सुरक्षा विकास और शांति के लिए नीतियों और कार्यवाही ओं का अध्ययन भी अन्तर्राष्ट्रीय अध्ययन के क्षेत्र में शामिल हो जाता है|

दुनियाँआतंकवाद से जूझ रही है| यह एक वैश्विक समस्या है जिसने मानवता को शर्मसार किया है और इससे दुनियाँ के सभी राष्ट्र प्रभावित हैं किस लिए किस विषय पर भी गंभीर चिंतन और मनन आवश्यक हो जाता है ताकि इसका किस प्रकार से निराकरण किया जा सके और व वह कौन से कारक है जिन बना करके इस प्रक्रियाओं को परिणामों को रोका जा सकता है|

राष्ट्रों के द्वारा अपनाए जाने वाली नीति के द्वारा भी दुनियाँ के सामने बहुत सारे संकट उत्पन्न हुए हैं और इंसानों के कारण भी राष्ट्रों के बीच के संबंधों पर सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव पड़ा है |भविष्य में युद्ध, युद्ध की आशंका को बचाने के लिए भी दुनियाँ के रास्तों में गंभीर मनन चिंतन की आवश्यकता ने भी अन्तर्राष्ट्रीय संबंध के अध्ययन के क्षेत्र में विस्तार किया है|

एक अन्य कारक है जिसने अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों के विषय क्षेत्र को गंभीरता से प्रभावित किया है जो कि राष्ट्रों के बीच बढ़ते हुए संबंधों ने राष्ट्रों के बीच बढ़ती हुई अंतर निर्भरता ने राष्ट्रों के वित्तीय संबंधों में भी विस्तार किया है और इन लड़ते हुए वित्तीय संबंधों ने व्यापक स्तर पर इस क्षेत्र में जटिलता उत्पन्न की है| इन समस्याओं के निराकरण और सहयोग के लिए अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक या इस तरह की अन्य संस्थाओं का भी संगठन किया गया है | इसलिए यह भी विषय क्षेत्र को विस्तृत करने का कार्य करते हैं|

1.7 सारांश

उपरोक्त अध्ययन से स्पष्ट है की अन्तर्राष्ट्रीय समबन्ध इसके अध्येता के लिए बहुत ही आकर्षण का विषय है | क्योंकि इसके अंतर्गत राष्ट्रों के बीच के समबन्धों का अध्ययन किया जाता है | परम्परागत रूप से यह अध्ययन काफी हद तक राजनीतिक संबंधों तक सीमित रहता हुआ दिखाई देता रहा है , परन्तु वर्तमान परिदृश्य में सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक तथा संबंधों के अन्य पक्षों का अध्ययन उस सीमा तक किया जाता है जहां तक वे राष्ट्रों के बीच के राजनीतिक संबंधों को प्रभावित करते है | इसी के साथ भूमंडलीकरण , आतंकवाद तथा युद्ध की बढ़ती भयावहता और उसके प्रभाव आदि पक्षों की वजह से इसके अध्ययन क्षेत्र और प्रकृति में बहुत अधिक बदलाव किया है |

1.8 शब्दावली

भूमंडलीकरण-विश्व के देशों के बीच एकीकरण की प्रक्रिया

अन्तर्राष्ट्रीय समबन्ध-राष्ट्रों के बीच के सम्बन्ध

1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.खन्ना, वी. एन. एवं अरोड़ा, लिपाक्षी (2006) "भारत की विदेश नीति" विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि., नई दिल्ली।

2.दीक्षित जे. एन. (2004) "भारतीय विदेश नीति", प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली।

3.घई, यू. आर. एवं घई के. के. (2005) "अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति", न्यू एकेडमिक पब्लिशिंग कंपनी, जालंधर।

4.घई, यू. आर. एवं घई. वी. (2004) "भारतीय विदेश नीति", न्यू एकेडमिक पब्लिशिंग कंपनी, जालंधर।

5.वरमानी, आर. सी. (2007) "समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध", गीतांजलि पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

6.फड़िआ, बी. एल. (2014) "अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति", साहित्यिक भवन पब्लिकेशन, आगरा।

7.बीस्वाल, तपन (2010), "अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध", मैकमिलन पब्लिशर्स इंडिया लि., नई दिल्ली

1.11 सहायक /उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.भारतीय विदेश मंत्रालय की आधिकारिक वेबसाइट

2.द हिन्दू समाचार पत्र

3.जनसत्ता समाचार पत्र

1.12 निबंधात्मक प्रश्न

1.अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के अर्थ और प्रकृति की विवेचना कीजिये |

2.अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्ध के क्षेत्र में विस्तार के कारणों की विवेचना कीजिये |

इकाई 2- द्वितीय विश्वयुद्ध के कारण और प्रभाव

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 द्वितीय विश्व युद्ध

2.4 द्वितीय विश्व-युद्ध के प्रारंभ होने के कारण

2.4.1 वर्साय संधि

2.4.2 ब्रिटेन की विदेश नीति

2.4.3 राष्ट्रसंघ की असफलता

2.4.4 यूरोपीय राष्ट्रों के बीच गुटबाजी

2.4.5 अन्य कारण

2.5 द्वितीय विश्व युद्ध के प्रभाव

2.5.1 प्राकृतिक और मानवीय जनधन की व्यापक हानि

2.5.2 औपनिवेशिक साम्राज्य की अंत का मार्ग प्रशस्त हुआ

2.5.3 परिवर्तित शक्ति संतुलन

2.5.4 अन्तर्राष्ट्रीयवाद की भावना का विकास

2.6 सारांश

2.7 शब्दावली

2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.10 सहायक /उपयोगी पाठ्य सामग्री

2.11 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना -

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति और संबंधों के के अध्ययन करने वाले अध्येता के लिए द्वितीय विश्व युद्ध एक निर्णायक घटना है जिसने न केवल राष्ट्रों के बीच शक्ति संबंधों को बदल दिया वरन राष्ट्रों के बीच चलने वाले संबंधों की प्रकृति का रूपांतरण कर दिया| इकाई दो में हम द्वितीय विश्व युद्ध के कारण और प्रभाव का अध्ययन करेंगे जिसमें हम यह देखने का प्रयास करेंगे कि वह कौन से कारण थे , वह कौन सी परिस्थितियां थी जिसकी वजह से द्वितीय विश्व युद्ध जैसा विनाशक घटनाक्रम दुनियाँको देखने को मिला|

द्वितीय विश्व युद्ध 1 सितंबर 1939 को जर्मनी के द्वारा पर किए जानेवाले हमले के साथ प्रारंभ हुआ| इसके पश्चात फ्रांस ने जर्मनी पर हमला बोला जिसका मित्र राष्ट्रों ने समर्थन किया| जर्मनी के द्वारा पोलैंड पर किया गया हमला कहीं ना कहीं उसकी साम्राज्यवादी सोच का परिणाम था जिसका मित्र राष्ट्रों ने पुरजोर विरोध किया|

किस इकाई में हम इस विश्व युद्ध में दो गुटों, मित्र राष्ट्र और धुरी राष्ट्र की युद्धगत परिस्थितियों के कारण और उनके प्रभाव का अध्ययन करेंगे

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के निम्नलिखित मुख्य उद्देश्य है

1. द्वितीय विश्व युद्ध के बारे में जानना
2. उन कारणों का अध्ययन करना जिनकी वजह से जीती विश्व युद्ध जैसा विनाशक युद्ध हुआ
3. द्वितीय विश्व युद्ध में भारत की स्थिति का अध्ययन करना
4. द्वितीय विश्व युद्ध के अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों की प्रकृति पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना

2.3 द्वितीय विश्व युद्ध

प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के भी लगभग 20 वर्ष हुए थे कि जर्मनी के द्वारा पोलैंड पर किए जानेवाले हमले के साथ ही यह कैसे युद्ध की शुरुआत हुई जो प्रथम चरण में यूरोप, आगे एशिया, अमेरिका और विश्व के अन्य हिस्से को अपने में समेटे हुए द्वितीय विश्व युद्ध के रूप में हमारे सामने उपस्थित हुआ| इस घटना ने एक बार पुनः मानवता को जोड़ने का कार्य किया इस विश्व युद्ध में बहुत ही भयावह और विनाशक मानव जनित घटनाओं को स्पष्ट रूप से समाज के सामने प्रस्तुत किया |

हिटलर ने भी कभी नहीं सोचा होगा कि उसके द्वारा पोलैंड पर हमला करके उसको धमका करके उससे डांसिंग छीनने की कोशिश अंततः विश्व युद्ध के द्वार तक उसे ले जाएगी |इसलिए नकारात्मकता और विध्वंस की तरफ बढ़ाया गया पहला कदम भी विश्व युद्ध जैसे भयावह दुर्दांत मानवता के लिए संकट के रूप में प्रस्तुत हो सकता है|

2.4 द्वितीय विश्व-युद्ध के प्रारंभ होने के कारण

द्वितीय विश्व युद्ध के प्रारंभ होने के निम्नलिखित कारण स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं

2.4.1 वर्साय संधि --

प्रथम विश्व युद्ध के बाद विजित राष्ट्रों ने जर्मनी पर अपमानजनक अन्यायसंगत संधि समझौते का प्रारूप प्रस्तुत किया| युद्ध में पराजित जर्मनी के समक्ष इस संधि को अपनाने के अलावा कोई विकल्प नहीं था| इस संधि के साथ ही यह स्पष्ट हो गया था कि भविष्य में जब भी जर्मनी अपने आप को मजबूती के साथ खड़ा करने में सफल होगा और कोशिश भी करेगा तब इस संधि को खंडित कर एक नवीन शक्ति संबंध को स्थापित करने का प्रयास करेगा जिससे जर्मनी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति और संबंधों में एक सम्मानजनक स्थिति को प्राप्त कर सके |

मित्र राष्ट्रों ने इस बात का ध्यान नहीं दिया कि किस प्रकार के दबाव पूर्वक अन्यायजनक संधि के दूरगामी परिणाम भयावह हो सकते हैं |जैसा कि एक कहावत है बोया पेड़ बबूल का तो आम कहां से खाए | यदि किसी को अपमानजनक परिस्थिति में रखा जाएगा तो निश्चित रूप से वह उस परिस्थिति से उबरने के लिए पुरजोर कोशिश करेगा और शक्ति प्राप्त कर, अर्जित कर उसी स्थिति से निपटने के लिए संघर्ष के विकल्प को भी चुनने में किसी प्रकार का संकोच नहीं करेगा |

छद्म राष्ट्रीयता के नाम पर वर्साय की संधि के द्वारा यूरोप के छोटे-छोटे टुकड़े किए गए | यहां इस बात की अनदेखी की गई इन छोटे-छोटे टुकड़ों से भविष्य में जर्मनी जैसे आहात देश की उभरने और अपनी पुरे साम्राज्यवादी प्रवृति को पुष्ट करने की कार्यों को आगे बढ़ाने में मदद मिलेगी| इस प्रकार निश्चित रूप से वर्साय की संधि विश्व युद्ध को प्रारंभ करने में एक महत्वपूर्ण कारण के रूप में चिन्हित किया जा सकता है|

2.4.2 ब्रिटेन की विदेश नीति

प्रथम विश्व युद्ध के बाद साम्राज्यवादी ब्रिटेन की विदेश नीति में एक महत्वपूर्ण पक्ष दिखाई देता है वह यह की वह साम्यवाद के प्रसार को रोकना चाहता था| उसको यहां शंका थी कि भविष्य में एशिया में जापान और सोवियत संघ तथा यूरोप में जर्मनी और सोवियत संघ उसके लिए संकट का कारण बन सकते हैं | ब्रिटेन चाहता था जो उस की विदेश नीति में स्पष्ट दिखाई दे रहा था की वह फ्रांस को सहयोग कर रहा है कथा जर्मनी जर्मनी के हिटलर और इटली के मुसोलिनी को कालीन सोवियत संघ के खिलाफ खड़ा करके साम्यवादी प्रसार को रोका जाए| इस प्रकार से ब्रिटेन की तुष्टीकरण की नीति के रूप में संबोधित किया जा सकता है| किस प्रकार से अन्य और

प्रयास ब्रिटेन के द्वारा किए गए जिससे जर्मनी तत्कालीन सोवियत संघ पर हमला कर उसके पतन का मार्ग प्रशस्त करें |यही कारण था कि ब्रिटेन पोलैंड पर जर्मनी के द्वारा किए गए हमले को भी समर्थन देने को तत्पर दिखाई देता है| अतः ब्रिटेन की इस जर्मनी के प्रति तुष्टीकरण की नीति को द्वितीय विश्व युद्ध के प्रारंभ का एक महत्वपूर्ण कारण कहा जा सकता है |

2.4.3 राष्ट्रसंघ की असफलता

प्रथम विश्व युद्ध की समाप्ति के साथ ही दुनियाँ ने एक ऐसी संस्था की आवश्यकता महसूस की जो विश्व में शांति की स्थापना की दिशा में कार्य कर सके और वह संस्था सार्वभौमिक संस्था हो | प्रारंभिक चरण में दिखाई देता है छोटे-छोटे राष्ट्रों के बीच बढ़ने वाले विवादों और झगड़ों के निस्तारण में काफी हद तक राष्ट्र संघ को सफलता मिली लेकिन राष्ट्रों के बीच उत्पन्न होने वाले झगड़े या बड़े राष्ट्रों के द्वारा छोटे कम शक्तिशाली राष्ट्र पर किए जाने वाले अन्याय जनक व्यवहार और संबंधों की बात आई तो राष्ट्र संघ वहां असफल होता हुआ दिखाई देता है | यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि राष्ट्र संघ एक ऐसी संस्था जिसका निर्माण जिसका गठन दुनियाँ के देशों ने मिलकर के किया| वह एक सामूहिक संस्था थी सामूहिक प्रयास से बनाई गई थी| इसलिए सामूहिक साझेदारी सामूहिक प्रयास से इस संगठन को मजबूती मिल सकती थी| परंतु यह देखने में आया कि दुनियाँ के शक्तिशाली राष्ट्र जब अपने हितों की बात आई तो राष्ट्र संघ के मूल सिद्धांतों की अनदेखी करते हुए दिखाई दे रहे हैं ,इसलिए इसे राष्ट्र संघ की असफलता कहना तर्कसंगत नहीं होगा | दुनियाँ के शक्तिशाली राष्ट्र के द्वारा राष्ट्र संघ जैसे अन्तर्राष्ट्रीय संगठन की अनदेखी करने की बात की जा सकती है| इसीलिए राष्ट्र संघ अपने उद्देश्यों को आगे बढ़ाने में सफल नहीं हुआ जिनके लिए इसकी स्थापना और संगठन किया गया था |

यहां पर यह विषय उठाना भी महत्वपूर्ण है की अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों में राष्ट्रों के बीच सत्ता क्रम दिखाई देता है| राष्ट्रों के बीच संबंधों में और पदसोपानीय संबंध दिखाई देता है| जिसमें शक्ति संबंधों में असमानता के कारण सापेक्षिक रूप से शक्तिशाली, सापेक्षिक रूप से शक्तिहीन के विरुद्ध अपने हितों के अनुरूप उसका इस्तेमाल करते हुए दिखाई पड़ता है| इसलिए विश्व शांति की कोई भी कोशिश जिसमें इस प्रकार के संबंध जीवंत हो वह असफल होने की संभावना समेटे हुए रहेगी|

जब जापान ने चीन पर हमला बोला, आक्रमण किया और इटली ने अबीसीनिया पर आक्रमण किया तो उस समय शांति के किसी भी प्रयास में राष्ट्र संघ अपने आप को अक्षम पाया क्योंकि यह शक्तिशाली राष्ट्र अपने हितों के आगे इस अन्तर्राष्ट्रीय संगठन के निर्णय और कार्यवाही को महत्व देने के लिए तैयार नहीं थे|

इस प्रकार राष्ट्र संघ के गठन के समय समझौते के प्रारूपपर हस्ताक्षर करने वाले राष्ट्र, जिसमें उन्होंने एक दूसरे की प्रादेशिक एकता और अखंडता की रक्षा के प्रति वचनबद्धता प्रकट की थी , अपने छद्म हितों के सामने पीछे हटने में संकोच नहीं किया |

2.4.4 यूरोपीय राष्ट्रों के बीच गुटबाजी:

दुनिया के राष्ट्रों मैं प्रायः यह सामान्य प्रवृत्ति दिखाई देती है कि अपने हितों की सिद्धि के लिए वे क्षेत्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर शक्ति संतुलन अपने पक्ष में करने के लिए, निरंतर प्रयासरत रहते हैं| परिणामस्वरूप क्षेत्रीय स्तर पर और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सैन्य संधियां और गुटबाजीयाँ दिखाई देती है| जो किसी न किसी प्रकार से शक्ति संघर्ष और एक दूसरे को अपने हितों के अनुसार उपयोग करने की होड़ दिखाई देती है | प्रथम विश्व युद्ध के

बाद इस प्रवृत्ति के परिणाम स्पष्ट रूप से यूरोप में दिखाई देने लगे | फलस्वरूप यहां दो गुटों का उद्भव हुआ एक का नेतृत्व फ्रांस कर रहा था तो दूसरे का जर्मनी |फ्रांस के ग्रुप में चेकोस्लाविया और पोलैंड थे ,जिन्हें वर्साय की संधि से काफी लाभ हुआ था| जबकि जर्मनी के ग्रुप में इटली और जापान थे जिन की प्रवृत्ति साम्राज्यवादी थी/ अधिनायकवादी थी, जो वर्साय की संधि की व्यवस्थाओं से समान रूप से आपत्ति रखते थे| ब्रिटेन काफी हद तक काफी दिनों तक अपने आप को इन गुटों से अलग रखा परंतु लगातार अलग रख नहीं पाया और वह भी फ्रांस के गुट का सदस्य बना जो पूंजीवादी विचारधारा में विश्वास रखते थे| इससे इतर तत्कालीन सोवियत संघ जो साम्यवादी देश था, उसे पूंजीवादीगुट और फासिस्टबादी गुट, दोनों में से कोई अपने साथ शामिल नहीं करना चाहता था| परंतु इस गुटबाजी ने ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न की कि दोनों गुटों ने सोवियत संघ को अपने पक्ष में मिलाने की कोशिश की, जिससे शक्ति संतुलन के पक्ष में हो और और अपने राष्ट्रीय हितों को क्षेत्रीय स्तर पर और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रोत्साहित कर सकें | इस जर्मनी को प्राप्त हुई सोवियत संघ इस ग्रुप में शामिल हुआ| इस तरह से यूरोपीय राष्ट्रों के बीच अपने निजी हितों को ध्यान में रखकर के गुटों में शामिल होने और उसके माध्यम से अपने हित की पूर्ति की कोशिश ने दुनियाँ को द्वितीय विश्व युद्ध के द्वार पर लाकर खड़ा कर दिया |

2.4.5 अन्य कारण

तृतीय विश्व युद्ध के प्रारंभ होने में अन्य कई विशेष कारण उल्लेखनीय है जिसमें म्यूनिख समझौता का जिक्र करना आवश्यक होगा चेकोस्लाविया जर्मनी के लिए औद्योगिक दृष्टि से और सामरिक दृष्टि बहुत ही महत्वपूर्ण था इसलिए उसने सुडेटनलैंड पर अपना दावा पेश किया और जर्मनी में एक समझौता हुआ जिसे म्यूनिख समझौता के नाम से जाना जाता है जिसके तहत टुडे टर्न लाइन पर जर्मनी का अधिकार हुआ आगे चलकर जर्मनी ने चीकू चलाभैया को पूरी तरह से अपने आधिपत्य में ले लिया, फ्रूट जर्मनी और किस तरह की प्रवृत्ति के राष्ट्रों की विस्तारवादी नीति को प्रोत्साहन मिला

यहां एक विषय का उल्लेख करना और आवश्यक है प्रथम विश्व युद्ध के बाद लगभग 1929 के आसपास विश्व के समक्ष उपस्थित आर्थिक मंदी ने भी द्वितीय विश्व युद्ध के लिए मार्ग प्रशस्त किया क्योंकि इसने एक तरफ उद्योग धंधे नष्ट किए दूसरी तरफ कृषि व्यापार पर व्यापक प्रभाव नकारात्मक रूप से दिखाई दिए | जर्मनी इस तरह की घटनाओं के लिए पूरी तरह से वर्साय की दोषपूर्ण मानता था और इस तरह की स्थिति से निपटने के लिए उसने अपनी ताकत को बढ़ाई और निरंकुश बैठा|

और उपरोक्त अन्य सभी कारकों ने जहां द्वितीय विश्व युद्ध के लिए वातावरण तैयार किया उसके लिए परिस्थितियां उत्पन्न की 1939 में हिटलर के द्वारा पोलैंड के डोजिंग बंदरगाह तथा पुलिस गलियारा जर्मनी को वापस किए जाने की मांग रखी और यह मांग की पूर्ति न होने पर जर्मनी ने पोलैंड के ऊपर 1 सितंबर 1939 को हमला कर दिया| ऐसी किसी भी स्थिति में इंग्लैंड और फ्रांस पोलैंड की सहायता करेंगे ऐसी संधि पोलैंड ने कर रखी थी | फल स्वरूप इंग्लैंड और फ्रांस ने पोलैंड के सहायतार्थ जर्मनी पर हमला बोल दिया | बाद की घटनाओं और युद्ध के विस्तार में इसे विश्व युद्ध में तब्दील कर दिया |

2.5 द्वितीय विश्व युद्ध के प्रभाव

2.5.1 प्राकृतिक और मानवीय जनधन की व्यापक हानि:

जैसा कि पूर्व में हम स्पष्ट कर चुके हैं कि द्वितीय विश्व युद्ध अंतर्राष्ट्रीय राजनीति अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों में एक महत्वपूर्ण दुर्दांत और निर्णायक घटना रही, जिसके व्यापक प्रभाव रहे | उसने प्राकृतिक और मानव जन धन की व्यापक हानी की| इस युद्ध की विभीषिका का आकलन इस बात जा सकता है किस सामान्य नागरिक और सैनिकों को मिलाकर के लगभग ढाई करोड़ लोग हताहत हुए | एक करोड़ से अधिक लोग घायल हुए इसमें शामिल राष्ट्रों ने युद्ध किया कार्यवाही को संचालित करने के लिए लाखों करोड़ रुपए पानी की तरह बहा दिए |यदि इस जनधन का उपयोग मानवता के उत्थान और सृजनात्मक प्रयासों में किया गया होता तो निश्चित रूप से आज विश्व का समाज एक नए मुकाम को हासिल किया होता | लेकिन व्यक्ति के अहम और राष्ट्रों की साम्राज्यवादी प्रवृत्ति ने दुनियाँ के सामने इतने बड़े युद्ध की विभीषिका को खड़ा कर दिया|

2.5.2 औपनिवेशिक साम्राज्य के अंत का मार्ग प्रशस्त हुआ

द्वितीय विश्व युद्ध और उसके पूर्व में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है यूरोप के साम्राज्यवादी ताकतों ने दुनियाँ के बड़े हिस्से पर अपने औपनिवशिक साम्राज्य का विस्तार किया | उनका उपयोग अपने हितों के अनुरूप किया, उनका नाना रूपेण शोषण, उन पर अत्याचार की जिससे उनका उपयोग अपने हितों की सिद्धि के लिए कर सके| परंतु द्वितीय विश्व युद्ध में कुछ ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न की कि, अब साम्राज्यवादी ताकतों के द्वारा अपने साम्राज्य को सुरक्षित रखना संभव नहीं रहा| फलस्वरूप दुनियाँ में स्वतंत्रता के लिए चल रहे आंदोलनों को ताकत मिली और उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय समर्थन भी प्राप्त हुआ, जिससे उस समय और उसके बाद एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के बहुत सारे देशों ने स्वतंत्रता प्राप्त की|

2.5.3 परिवर्तित शक्ति संतुलन

द्वितीय विश्व युद्ध के पूर्व अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति और अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों में ब्रिटेन की बहुत सारी स्थिति थी| परंतु द्वितीय विश्व युद्ध के उपरांत अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में ब्रिटेन का प्रभाव हुआ तथा दूसारी शक्तियों का उदय हुआ| प्रथम अमेरिका और दूसरा सोवियत संघ|अमेरिका जहां पूंजीवादी उदारवादी लोकतांत्रिक विचारधारा का प्रतिनिधित्व कर रहा था तो सोवियत संघ साम्यवादी विचारधारा का प्रतिनिधित्व कर रहा था| पूर्वी यूरोप में टर्की और यूनान को छोड़कर सभी सोवियत संघ के प्रभाव में थे जबकि पश्चिमी यूरोप संयुक्त राज्य अमेरिका के विचार धारा के प्रभाव और आकर्षण में था| अमेरिका और सोवियत संघ दोनों का उद्देश्य एक दूसरे के प्रभाव को सीमित करते हुए अपने प्रभाव को विस्तृत करना था जिसकी वजह से नवीन महा शक्तियों के बीच शक्ति संतुलन केंद्रित हुआ|

इसी के साथ-साथ एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के नए स्वतंत्र हुए देशों में कुछ ने मिलकर के एक नवीन आंदोलन की शुरुआत की| जिस गुटनिरपेक्ष आंदोलन कहते है| इनका उद्देश्य गुट के संघर्ष से अपने आप को अलग रखते हुए अपनी स्वतंत्र विदेश नीति का संचालन करते हुए, अपने राष्ट्र को और इस प्रकार के सभी राष्ट्रों को एक सम्मानजनक स्थिति में लाना तथा अपने देश के सामाजिक, आर्थिक उन्नयन के लिए कार्य करते हुए राष्ट्र की एकता और अखंडता को मजबूत करना| द्वितीय विश्व युद्ध के बाद जहां ब्रिटेन का पराभव हुआ तो वहीं अमेरिका और सोवियत संघ जैसे महा शक्तियों के उदय के साथ गुटनिरपेक्ष आंदोलन की शुरुआत में अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों में शक्ति संतुलन के पूर्ववर्ती प्रकृत को पूरी तरह से बदल दिया|

2.5.4 अन्तर्राष्ट्रीयवाद की भावना का विकास

दुनियाँ अभी तक 20 वीं शदी के अर्धशदी तक दो विश्व युद्धों को झेल चुकी जिसके परिणामस्वरूप व्यापक स्तर पर मानवीय , प्राकृतिक और आर्थिक संसाधनों की क्षति हुई| फलस्वरूप द्वितीय विश्व युद्ध के बाद, दुनियाँ के राष्ट्रों ने यह महसूस किया की प्रथम विश्व युद्ध के बाद की सारी रिपोर्ट सारी कोशिशें निष्फल सिद्धि क्योंकि कुछ राष्ट्रों की साम्राज्यवादी प्रवृत्ति और निजी आकांक्षाओं के चलते दुनियाँ को द्वितीय विश्व युद्ध जैसे व्यापक भीषण विनाशक युद्ध का सामना करना पड़ा इसलिए अब एक ऐसे वैश्विक वातावरण के निर्माण की आवश्यकता है जिसके फलस्वरूप राष्ट्रों के बीच संघर्ष/ युद्ध के बजाय पारस्परिक सहयोग, शांति और सद्भावना की स्थापना की जा सके, ताकि विकास उन्नति और प्रगति का मार्ग प्रशस्त हो सके| यह ध्यान में रखते हुए दुनियाँ के राष्ट्रों ने मिलकर के 1945 में संयुक्त राष्ट्र संगठन जैसे अन्तर्राष्ट्रीय संगठन का निर्माण किया |

अभ्यास प्रश्न –

१. अभी तक कितने विश्व युद्ध हो चुके है ?
२. पोलैंड पर हिटलर ने किस सन् में आक्रमण किया ?

2.6 सारांश

उपरोक्त अध्ययन से यह स्पष्ट है कि द्वितीय विश्व युद्ध अन्तर्राष्ट्रीय जगत में मानवता के लिए व्यापक दृष्टि से अभिशप्त घटना रही| जिसके परिणामस्वरूप बहुत बड़े पैमाने पर मानवीय, आर्थिक और प्राकृतिक संसाधनों की क्षति हुई| इस व्यापक स्तर पर हुए युद्ध के कारणों को तलाशने पर स्पष्ट होता है की प्रथम विश्व युद्ध के बाद की परिस्थितियां और उसके फलस्वरूप हुए कुछ संधियां जिन्हें असंगत कहा जा सकता है, तथा यूरोप के कुछ राष्ट्रों की साम्राज्यवादी प्रवृत्ति और लोलुपता ने पुनः मानवता को द्वितीय विश्व युद्ध जैसे व्यापक बिनाशक स्थिति में लाकर खड़ा कर दिया|

कहते हैं कि व्यक्ति अनुभव से सीखता है यह बात राष्ट्रों पर भी लागू होती है अब तक दुनियाँ दो विश्व युद्धों को देख चुकी थी, जिसके परिणामस्वरूप दुनियाँ के राष्ट्रों को एहसास हो गया था कि दुनियाँ में मानवता की सुरक्षा शांति और विकास के लिए राष्ट्रों के बीच पारस्परिक सहयोग आवश्यक है| इस एक सुर में मित्र राष्ट्र महसूस की जो इस उद्देश्य की पूर्ति में निरंतर कार्य कर सकें| इसलिए संयुक्त राष्ट्र संगठन जैसी संस्था का निर्माण किया| परंतु यहां यह भी स्पष्ट करना आवश्यक है कि दुनियाँ के राष्ट्रों ने प्रथम विश्व युद्ध के बाद भी मिलकर के एक संयुक्त राष्ट्र संघ जैसे संगठन का निर्माण किया परंतु वह पूरी तरह से असफल रहा क्यों क्योंकि उसको निर्माण करने वाले राष्ट्रों ने उन मूल्यों सिद्धांतों और मान्यताओं का निरंतर उल्लंघन किया जिन को ध्यान में रखकर के उसका निर्माण किया गया था | इसलिए वर्तमान समय में भी संयुक्त राष्ट्र संघ जैसे संस्था की सफलता के लिए आवश्यक है कि उसके सदस्य राष्ट्र उनमें भावनाओं और चिंताओं को ध्यान में रखते हुए अपनी जिम्मेदारी जो अन्तर्राष्ट्रीय जगत सामूहिक रूप से स्वीकार करते हैं ,उनका इमानदारी पूर्वक पालन करें तभी इस तरह की संगठन सफलतापूर्वक अपने दायित्वों का निर्वहन कर सकते हैं और मानवता की दिशा में विश्व के राष्ट्र को अग्रसर होने को प्रोत्साहित कर सकते हैं|

2.7 शब्दावली

विश्व युद्ध – ऐसा युद्ध जिसमें दुनिया के सभी हिस्से के राष्ट्र शामिल हो

2.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

१. दो , २. 1939

2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1.खन्ना, वी. एन. एवं अरोड़ा, लिपाक्षी (2006) "भारत की विदेश नीति" विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि., नई दिल्ली।

2.दीक्षित जे. एन. (2004) "भारतीय विदेश नीति", प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली।

3.घई, यू. आर. एवं घई के. के. (2005) "अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति", न्यू एकेडमिक पब्लिशिंग कंपनी, जालंधर।

4.घई, यू. आर. एवं घई. वी. (2004) "भारतीय विदेश नीति", न्यू एकेडमिक पब्लिशिंग कंपनी, जालंधर।

5.वरमानी, आर. सी. (2007) "समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध", गीतांजलि पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

6.फड़िआ, बी. एल. (2014) "अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति", साहित्यिक भवन पब्लिकेशन, आगरा।

7.बीस्वाल, तपन (2010), "अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध", मैकमिलन पब्लिशर्स इंडिया लि., नई दिल्ली

2.10 सहायक /उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.भारतीय विदेश मंत्रालय की आधिकारिक वेबसाइट

2.द हिन्दू समाचार पत्र

3.जनसत्ता समाचार पत्र

2.11 निबंधात्मक प्रश्न

१. द्वितीय विश्व युद्ध के कारणों और प्रभावों की विवेचना कीजिये |

इकाई – 03 : शीत युद्ध का उदय व अंत

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 शीत युद्ध का अर्थ
3.4 शीत युद्ध का उदय
3.5 शीत युद्ध के चरण
3.5.1 पहला चरण (1946-1962), शीत युद्ध
3.5.1.1 ट्रूमैन सिद्धांत
3.5.1.2 मार्शल योजना
3.5.1.3 बर्लिन की नाकाबंदी
3.5.1.4 चीन में साम्यवादी शासन की स्थापना
3.5.1.5 कोरिया युद्ध
6.5.1.6 वियतनाम युद्ध
3.5.2 दूसरा चरण (1962-1979), दितान्त
3.5.2.1 गैर - पश्चिमी गठबंधनों का उदय
3.5.2.2 दितान्त
3.5.3 तीसरा चरण (1979-1984), दूसरा शीत युद्ध
3.5.3.1 अफगानिस्तान संकट
3.5.3.2 तनाव-शैथिल्य
3.5.4 चौथा चरण (1985 -1991), शीत युद्ध का अंत
3.5.4.1 बर्लिन की दीवार का ध्वस्त होना
3.5.4.2 जर्मनी का एकीकरण
3.5.4.3 नाटो द्वारा शीत युद्ध समाप्ति को घोषणा
3.5.4.4 हेलसिंकी में गोर्बाचोव - बुश वार्ता
3.5.4.5 वारसा व नाटो ऐतिहासिक संधि पर हस्ताक्षर
3.5.4.6 पेरेस्ट्रोइका तथा ग्लासनोस्त
3.6 सारांश
3.7 शब्दावली
3.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.9 संदर्भ ग्रन्थ
3.10 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री
6.11 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

परिवर्तित समय के साथ - साथ अध्ययन की दृष्टि से अंतराष्ट्रीय सम्बन्धो में भी परिवर्तन आया और इसका महत्व भी बढ़ा | ऐतिहासिक दृष्टि से यह प्रयास किया जाता रहा है की 20 वी शताब्दी में राष्ट्रों के मध्य शक्ति एवं समृद्धि के लिए संघर्ष के वर्णन का विश्लेषिक ढाँचा प्रदान किया जा सके | 20 वी शताब्दी दो महायुद्धों की साक्षी है जिसने शीत - युध्द जैसी विशाल - प्रतिद्वंद्विता को जन्म दिया| शीत युद्ध एक बहुआयामी संघर्ष था | इसमें संयुक्त राज्य अमेरिका और भूतपूर्व सोवियत संघ द्वारा अपने-अपने प्रभावी क्षेत्रो में नियंत्रण स्थापित करने के लिए रणनीतिक एवं सैनिक प्रतिस्पर्धा शामिल थी | इन दो महाशकितयों ने सम्पूर्ण विश्व को दो शक्ति गुटो में विभाजित कर दिया। | पूर्वी गुट में सामान्यतया साम्यवादी देश थे, विशेषत: पूर्वी यूरोप के वो देश जो सोवियत संघ के राजनैतिक और सैन्य मित्र थे | पशिचमी गुट में पूँजीवादी देश थे जिसका नेतृत्व अमेरिका कर रहा था | पशिचमी यूरोप के औधोगिक दृषिटकोण से विकसित राज्य, जैसे कि जापान, कनाडा, आस्ट्रेलिया एवं न्यूजीलैण्ड, इस गुट के मुख्य सहभागी थे| इसके अलावा, इसके अन्य आयाम भी थे जिसमे पश्चिमी पूँजीवादी मॉडल तथा सोवियत राज्य द्वारा नियंत्रित आर्थिक नियोजन के बीच प्रतिद्वंदिता एवं बैचारिक संघर्ष और विवाद भी शामिल था | महाशक्तियों की रणनीतियों को निर्धारित करने वाले कारक शीत युद्ध के दौरान संघर्ष के केंद्रीय मुद्दो में से एक थे | संबंधित राज्यों ने अपने औचित्य को स्पष्ट करते हुए राष्ट्रीय हित, सुरक्षा, मित्र राज्यों का समर्थन आदि को महत्वपूर्ण माना है |

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अंतर्गत हम मुख्यत: शीत युद्ध की अवधारणा की व्याख्या, इसका अर्थ तथा शीत युद्ध के उदय और समाप्ति के कारणों की विवेचना करेंगे जिनकी सम्पूर्ण शीत युद्ध में महत्वपूर्ण भूमिका थी, इस इकाई में शीत युद्ध को चार चरणो में बाटा गया है| शीत युद्ध ने विश्व की सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक व्यवस्था को अस्त - व्यस्त कर दिया यह प्रभाव इतना गहरा था की इसके लक्षण आज भी देखे जा सकते है |

इस इकाई को पढ़ने और समझने के पश्चात हम :-

- सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक व्यवस्थाओ पर शीत युद्ध के प्रभावों का अध्ययन कर सकेंगे |
- शीत युद्ध के उदय के कारणों से परिचित हो सकेंगे |
- हथियारों की होड़ ने विश्व अर्थ व्यवस्था को कहा तक प्रभावित किया इसका अध्ययन कर सकेंगे |
- सोवियत संघ का विघटन शीत युद्ध के समाप्त होने का मुख्य कारण किस प्रकार था, इसको समझने सहायता मिलेगी |
- क्षेत्रीय गुटो का शीत युद्ध पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन कर सकेंगे |

3.3 शीत युद्ध का अर्थ

अमेरिका तथा सोवियत रूस के सम्बन्धों के बीच के तनावों को शीत युद्ध का नाम दिया गया है | शीत युद्ध का अर्थ है अंतर्राष्ट्रीय संबंधो में दो विरोधी प्रतियोगिता के बीच तनावपूर्ण संबंध | **द्वितीय विश्व युद्ध शुरू होने के पहले से ही अमेरिका और सोवियत संघ के संबंध तनावपूर्ण थे परन्तु इसे शीत युद्ध की संज्ञा 1947 के आस-पास ही दी गई।** शीत युद्ध शब्द का प्रयोग पहली बार अमेरिकी राज नेता बर्नाड बारोच द्वारा किया गया परन्तु इसे प्रो. लिप्पमैन ने लोकप्रिय किया | उसने इसका प्रयोग अमेरिका तथा रूस के बीच तनावपूर्ण संबंधो का वर्णन करने के लिए किया |

शीत - युद्ध एक ऐसी स्थिति थी जिसे ' उष्ण शान्ति ' के रूप में जाना जाने लगा | ऐसी स्थिति में न तो पूर्ण रूप से शांति रहती है और न ही वास्तविक युद्ध होता है, बल्कि शांति एवं युद्ध के बीच की अस्थिर स्थिति बनी रहती है | इस स्थिति में दोनों पक्ष परस्पर शान्तिकालीन कूटनीतिक संबंध कायम रखते हुए भी परस्पर शत्रुता का भाव रखते है और सशस्त्र युद्ध को छोडकर अन्य समस्त उपायों का सहारा लेकर एक दूसरे की स्थिति दुर्बल बनाने का प्रयत्न करते है | यह कूटनीतिक दांवपेंचों से लड़ा जाने वाला युद्ध था जिसमे महाशक्तियां एक दूसरे से भयभीत रहती थी | **यह सैन्य संघर्ष न होकर एक कूटनैतिक एवं विचारात्मक युद्ध था । लेकिन ऐसी तनावपूर्ण सिथति में प्रत्यक्ष सैन्य संघर्ष की गुंजाइश हमेशा बनी रहती है।**

3.4 शीत युद्ध का उदय

1917 की बोलशेविक क्रानित के साथ ही शीत युद्ध का उदय माना जा सकता है। सोवियत संघ की उत्पत्ति के साथ ही पशिचमी देशों के साथ इसके संबंध तनावपूर्ण रहे । सोवियत संघ में गृह-युद्ध के शुरूआत के दिनों मे ही अमेरिका सहित पशिचमी देशों का हस्तक्षेप इसका कारण माना जा सकता है। 1933 तक तो अमेरिका ने सोवियत संघ को कूटनैतिक मान्यता भी नहीं दी थी। 1941 में हिटलर द्वारा अचानक सोवियत रूस पर हमला करने की वजह से इसे पशिचमी देशों से हाथ मिलाना पड़ा। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान साम्यवादी रूस की साहस और त्याग की वजह से सहयोगी शकितयों को विजय प्राप्त करने में मदद मिली और उनके मन में सोवियत रूस के लिए सम्मान पैदा हुआ। आशा जगी कि पूरब और पशिचम के बीच अच्छे संबंधो का एक नया दौर शुरू होगा।

जहा तक इसके उदय का कारण है इसकी जड़े यूरोप में विश्व युद्धों के बाद की परिस्थितियाँ है | दूसरा विश्व युद्ध अमेरिका तथा सोवियत संघ ने साथ मिलकर लड़ा था अत: ऐसी आशा व्यक्त की जा रही थी कि युद्ध के बाद भी इनका सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण रहेगा | परन्तु ऐसा नही हो सका युद्ध के समय यह दोनों देश मित्र थे परन्तु दोनों के बीच हितो का टकराव काफी पुराना था और यही टकराव विवाद का मुख्ये मुद्दा था | फ़रवरी 1945 में हुए याल्टा सम्मेलन ने यह स्पष्ट कर दिया था कि सोवियत संघ पूर्वी यूरोप को अपने प्रभाव क्षेत्र में लाना चाहता था जिसकी वजह से अमेरिका, ब्रिटेन और सोवियत संघ के बीच कई तरह के राजनितिक, बैचारिक, एवं सामाजिक भेद भाव देखने को मिले | इन महाशक्तियों का सबसे अधिक विवाद पोलैंड पर केंद्रित था | जहा अमेरिका तथा ब्रिटेन की पोलैंड में विशेष रूचि थी वही स्टालिन की सेनाओ ने 1944 तथा 45 के बीच जर्मनी की सेनाओ को बाहर कर पोलैंड में साम्यवादी अस्थायी सरकार स्थापित कर दी थी | अमेरिक तथा ब्रिटेन ने इसका विरोध किया और यह विरोध याल्टा सम्मेलन से लेकर 1947 तक तनाव का मूल कारण बना| इसी तरह जर्मनी को लेकर भी दोनों महाशक्तियों में विवाद की स्थिति बनी रही |

सोवियत संघ जर्मनी को कमजोर तथा गरीब बने रहना देखना चाहता था ताकि की वह भविष्य में खतरा न बन सके जबकि अमेरिका उसकी अर्थव्यवस्था का पुनर्निर्माण चाहता था ताकि वह अपने अत्याधिक उत्पादों को

जर्मनी के बाजारों में बेच सके | दोनों के बीच तनाव और भी गहरा हो गया जब स्टालिन ने 1946 में यह बयान दिया की दूसरा विश्व युद्ध पूंजीवादी साम्राज्यवाद का परिणाम था | इसका अर्थ यह निकला जा सकता था की इस तरह के युद्ध भविष्य में दोबारा भी हो सकते है | अमेरिका और सोवियत संघ के संबंधो में नया मोड़ तब आया जब 1949 में सोवियत संघ ने अणु शक्ति पर सयुक्त राज्य अमेरिका के एकाधिकार को ख़त्म कर दिया |

नए शक्ति संतुलन में परिवर्तन ने प्रत्यक्ष विरोध से आंदोलन की दिशा बदल दी | अब दोनों शक्तियों ने अपने - अपने मित्र राष्ट्रों के साथ संसाधनो का विस्तार करना शुरू कर दिया | उनकी सफलताओ ने दिवध्रुवीय विश्व का निर्माण किया | अमेरिका के यूरोपीय मित्र और सोवियत संघ के मित्र क्रमश: उत्तर अटलांटिक **संधि संगठन (NATO) और वारसा पैक्ट में विभाजित हो गया |**

3.5 शीत युद्ध के चरण

दूसरे विश्व युद्ध के बाद शीत युद्ध को चार चरणो में विभाजित किया जा सकता है :- शीत युद्ध (1946 - 1962), दितान्त (1963 - 1979), दूसरा शीत युद्ध (1979-1984), तथा शीत युद्ध का अंत (1985-1991) वस्तुता: यह शीत युद्ध के विकास के विभिन्न चरण है जिसमे उतार चढ़ाव आते रहे |

3.5.1 पहला चरण (1946-1962), शीत युद्ध

यह चरण 1946 से शुरू होकर 1962 तक चला | इस चरण की प्रमुख घटनायें थी: ट्रूमैन सिद्धांत, मार्शल योजना, बर्लिन नाकाबंदी, सोवियत संघ द्वारा पहला परमाणु बम धमाका, नाटो की स्थापना, पश्चिमी तथा पूर्वी जर्मनी की स्थापना, जर्मनी के एकीकरण पर स्टालिन का संदेश, केंद्रीय यूरोप से महाशक्तियों की सेनाओ की वापसी, चीन का गृहयुद्ध एवं साम्यवाद चीन गणराज्य की स्थापना तथा कोरिया युद्ध |

3.5.1.1 ट्रूमैन सिद्धांत

दूसरे विश्व युद्ध अपने अंतिम चरण में था तभी सोवियत संघ ने पोलैण्ड, बुल्गारिया, रूमानिया, हंगरी तथा युगोस्लाविया जैसे पूर्वी यूरोपीय देशों में साम्यवादी शासन की स्थापना की तथा इसके साथ ही उसने प्रजातांत्रिक राजनैतिक दलों को बर्खास्त करने एवं लोकतांत्रिक संगठनों को कुचलने की नीति भी अपनाई। सोवियत संघ ने हंगरी और युगोस्लाविया के उपर ब्रिटेन और अपने संयुक्त प्रभाव वाली 1944 की चर्चिल और स्तालिन के बीच हुए बालकन समझौता का भी उल्लंघन किया। युद्ध के बाद सोवियत संघ ने हस्तक्षेप ने पूरे बालकन क्षेत्रा में साम्यवादी सरकार की स्थापना की। पूर्वी यूरोप के बाद सोवियत संघ ने पश्चिमी यूरोप की ओर साम्यवाद के फैलाव का प्रयास शुरू किया। परन्तु सोवियत संघ के इस बढ़ते प्रभाव को अमेरिका चुप-चाप नहीं देख सकता था।

8 मई 1945 में जब दूसरा विश्व युद्ध समाप्त हुआ तो सोवियत संघ और पश्चिमी देशो की सेनाये यूरोप की मध्य रेखा पर, तैनात थी| वास्तव में याल्टा समझौत में परोक्ष रूप से यह स्वीकार कर लिया गया की दोनों पक्षों की सेनायें जहां है वहां रह सकती है | राजनीतिक दृष्टिकोण से याल्टा समझौता युद्धोपरान्त यथास्थिति पर एक समझौता था जिससे सोवियत यूनियन को यूरोप के तकरीबन 1/3 तथा अमेरिका को 2/3 भाग पर नियंत्रण मिल गया | सोवियत संघ चाहता था की जर्मनी की दोबारा आक्रमण करने की क्षमता को सदा के लिए निरस्त कर दे | दूसरी ओर अमेरिका के नये (1945) राष्ट्रपति ट्रूमैन की अध्यक्षता में, 1941 की रूजवेल्ट योजना के अनुसार आकार देना चाहता था | ट्रूमैन सिद्धांत का विस्तान इस आधार पर किया गया कि यह सोवियत यूनियन के प्रसार को किसी भी तरह से रोका जा सके | इसे निरोधक नीति या कन्टेनमैंट पॉलिसी का नाम दिया गया |

इस पॉलिसी के द्वारा जानबूझकर पूरे विश्व में साम्यवाद के खिलाफ डर पैदा किया गया। इरान से सोवियत सैनिकों का बाहर न निकाला जाना, चेकोस्लोवाकिया में साम्यवादियों द्वारा तख्ता-पलट, 1948 में बर्लिन की घेराबन्दी,

1949 में नाटो गठन और चीन में साम्यवादियों का शासन, इन सब घटनाओं ने शानितपूर्ण सहयोग के विषय पर विश्व को शंका में डाल दिया। इस समय अमेरिका ने अपना वैचारिक आक्रमण तेज करते हुए कई सैन्य गुटों को प्रोत्साहन दिया एवं हथियारों के लिए होड़ लग गई।

3.5.1.2 मार्शल योजना

मार्शल योजना ट्रूमैन सिद्धन्त का आर्थिक विचार था | आर्थिक पक्ष को कार्यान्वित करने के लिए अमेरिका ने मार्शल प्लान की रचना की | मार्शल प्लान, जो आधिकारिक तौर पर यूरोपियन रिकवरी प्रोग्राम (ERP) के नाम से जानी जाती है, क्या उद्देश्य अमेरिका द्वारा यूरोप कैँ मित्र देशो का आर्थिक पुर्ननिर्माण करके साम्यवाद के प्रसार को रोकना था | अमेरिका की इस पहल, जिसे अमेरिका के विदेश सचिव जार्ज मार्शल का नाम दिया गया, में विदेश विभाग के अन्य वरिष्ट पदाधिकारियों जार्ज कैनन तथा विलियम क्लेटोन की महत्वपूर्ण भूमिका थी |

मार्शल प्लान 4 वर्षो के लिए थी और यह अपने प्राम्भिक कार्यक्रम के अनुसार 1951 में समाप्त हो गयी | इस अनुदान के परिणाम स्वरूप 1948-52 के चार साल यूरोपीय इतिहास के आर्थिक विकास में सबसे गतिशील वर्ष थे | अमेरिकी सहायता का प्रस्ताव रखते हुए मार्शल ने यूरोप के लोकतान्त्रिक आर्थिक संकट की ओर ध्यान केंद्रित किया और उनका यह विश्वास था की अमेरिका युद्ध से प्रभावित देशो के स्थायित्व में मदद कर सकता है | उन्होंने यह भी उल्लेख किया क़ि आर्थिक पुनर्निर्माण यूरोपवासियों का व्यवसाय था परन्तु संयुक्त राज्य अमेरिका ऐसे कार्यक्रम का प्रारूप तभी तैयार करेगा जब यूरोप इसमें पहल - शक्ति दिखाए और उन्हें यह भी सुझाव दिया की कोई भी कार्यक्रम तभी सयुक्त रूप ले सकता है जब उसमे, यदि सभी नही तो अधिकांश यूरोपीय राष्ट्र शामिल हो| मार्शल ने अपने भाषण में कहा की हमारी नीति किसी देश या सिडन्ट के विरुद्ध नही है बल्कि यह भुखमरी, गरीबी, निराशा और अव्यवस्था को समाप्त करके के लिए है | मार्शल योजना का औपचारिक उद्देश्य यूरोप के आर्थिक पुनर्निर्माण को बढ़ावा देना था परन्तु उसका वास्तविक उद्देश्य तो राजनितिक था वह समृद्धशाली पश्चिमी यूरोप में नियंत्रण को कमजोर करना चाहता था |

3.5.1.3 बर्लिन की नाकाबंदी

याल्टा सम्मेलन और पोस्टडेम सम्मेलन में यह हुआ था की जर्मनी और बर्लिन दोनों को चार क्षेत्रो में विभाजित किया जायेगा | बर्लिन का यधपि व्यावसायिक क्षेत्रो में विभजित कर दिया गया था परन्तु अभी भी उसका प्रसासन चार शक्तियों :- सोवियत संघ, अमेरिका, ब्रिटेन, और फ्रांस द्वारा सयुक्त रूप से चलाया जा रहा था | इस प्रकार बर्लिन की स्थिति शेष जर्मनी से भिन्न थी |

बर्लिन की नाकाबंदी उभरते हुये शीत युद्ध की पहली मुख्ये संकटकालीन घटना थी जब सोवियत संघ ने पश्चिमी बर्लिन तक पहुचने के सभी रेल तथा सड़क मार्गो को बंद कर दिया | बर्लिन नाकाबंदी के मूल में शीत युद्ध ही था जो अभी आरम्भ ही हुआ था | जहां एक तरफ स्टालिन धीरे धीरे पूर्वी यूरोप के देशो पर अपना नियंत्रण स्थापित करता जा रहा था (मार्च 1948 में चेकोस्लोवाकिया में साम्यवादी सरकार स्थापित की गयी), वहां दूसरी तरफ अमेरिका ने सोवियत साम्यवाद को नियंत्रित करने के लिए ट्रूमैन सिद्धांत की घोषणा की | इस संधर्भ में बर्लिन नाकाबंदी शीत युद्ध का प्रयोग था |

इसके अतिरिक्त तीन अन्य घटनाओ ने स्टालिन को बर्लिन नाकाबंदी जैसा कदम उठाने पर मजबूर किया :-

१) जनवरी 1947 में अमेरिका तथा ब्रिटेन ने बर्लिन के अपने अपने क्षेत्रो का विलय कर दिया और उन्होंने इस सयुक्त क्षेत्र को बिजिनिया का नाम दिया | सोवियत संघ को लगा की, ब्रिटेन तथा अमेरिका एक नए सशक्त जर्मनी

की स्थापना करने जा रहे है अतः उसकी नाराजगी जायज थी |

२) 31 मार्च 1948 को अमेरिका की कांग्रेस ने मार्शल प्लान को मंजूरी दी | स्टालिन ने इस योजना को सोवियत संघ पर पूर्वी यूरोप में प्रभाव को कम करने की चाल समझा | अतः सोवियत संघ ने बर्लिन जाने वाले सभी रेल तथा सड़क परिवहनों की तलाशी लेनी आरम्भ कर दी |

३) 01 जून को अमेरिका तथा ब्रिटेन ने घोषणा की कि वह पश्चिमी बर्लिन बिजोनिया में नई मुद्रा आरम्भ करने जा रहे है और वे पश्चिमी जर्मनी नाम से नये राज्य की स्थापना करना चाहते है | 23 जून को उन्होंने बिजोनिया तथा पश्चिमी बर्लिन में नई मुद्रा आरम्भ कर दी | पर्वी जर्मनी के लोगो ने अपनी मुद्रा नई बिजोनिये मुद्रा में बदलनी आरम्भ कर दी जिसका आर्थिक मूल्य अपेक्षाकृत अधिक था | इसके दूसरे ही दिन सोवियत संघ ने बर्लिन जाने वाले सभी रेल तथा सड़क परिवहन पर रोक लगा दी |

सोवियत रूस की इस नाकाबंदी की समस्या से निपटने तथा पश्चिमी बर्लिन में वस्तुओ की आपूर्ति बनाये रखने के लिए अमेरिका के कमांडर जनरल लूशियस डी. क्ले ने प्रस्ताव रखा की हथिया बंद सैनिक शांतिपूर्ण तरीके से पश्चिमी जर्मनी से पश्चिमी बर्लिन भेजे जाये| अमेरिका और ब्रि्टेन ने लगभग एक वर्ष तक वायु मार्ग द्वारा बर्लिन में आवश्यक सामग्री भेजने का काम किया। मई 1949 में यह घेराबन्दी हटा ली गई लेकिन वायुमार्ग द्वारा सामान भेजने का काम सितम्बर तक चलता राह। इस नाकेबन्दी के बाद बर्लिन का विभाजन औपचारिक रूप से पूर्वी और पशिचमी क्षेत्रा में हो गया। सेावियत संघ द्वारा बर्लिन को विभाजित करते हुए मीलों लम्बी दीवार का निर्माण किया गया ताकि शरणार्थी पूर्वी बर्लिन से भागकर पशिचमी बर्लिन में न जा सके।

3.5.1.4 चीन में साम्यवादी शासन की स्थापना

दूसरे विश्व युद्ध के बाद साम्यवादी दल जिसका नेतृत्व माओ कर रहा था तथा चियांग कई शेक चीन के राष्ट्रवादी दल के बीच युद्ध दोबारा आरम्भ हो गया | जहाँ सोवियत संघ चीन के साम्यवादी दल को सिमित सहायता प्रदान कर रहा था, वहीं दूसरी तरफ अमेरिका राष्ट्रीय दल कि आर्थिक और सैनिक रूप से उसकी मदद कर रहा था | परन्तु साम्यवादी दल की जनवादी मुक्ति सेना के आगे भृष्ट और अनुशासनहीन राष्ट्रवादी सेनाये नही टिक सकी| 1949 के अंत तक चीन की लगभग सारी प्रमुख भूमि पर साम्यवादी दल का कब्जा हो गया| अक्टूबर 1949 में माओ ने जनवादी चीनी गणराज्य की घोषणा कर दी| चियांग काई शेक अपनी सेनाओ के साथ भाग कर ताईवान दीवप में आ गया | दिसम्बर 1949 में चियांग कई शेक ने ताईवान को चीनी गणराज्य की अस्थायी राजधानी घोषित किया तथा अपनी सरकार को चीन की वैध सरकार होने का दावा किया | इससे राष्ट्रवादी चीन की सरकार तथा साम्यवादी चीन गणराज्य का झगड़ा पुरे शीत युद्ध के दौरान चलता रहा | 1949 में कोमिंटाग पर साम्यवादी विजय के बाद, माओ ने बिखरे चीन के पुनर्निर्माण का कार्य शुरू किया | प्रारम्भ में वहाँ रुसी सहायता और परामर्श लिया गया परन्तु 1950 के दशक के अंत तक संबंध शांत हो गए और रुसी आर्थिक सहायता को घटा दिया गया | माओ ने चीन की आर्थिक मांगो को पूरा करने के लिए व्यापक रूप से आकस्मिक परिवर्तन किया |

3.5.1.5 कोरिया युद्ध

शीत युद्ध 1950 में यूरोप से एशिया में पहुँच गया। वस्तुत: कोरियन युद्ध (1950-53) दोनों महाशकितयों के बीच एक प्रत्यक्ष संघर्ष था। उत्तरी कोरिया युद्ध सोवियत हथियारों तथा चीनी सैनिक की मदद से लड़ रहा था जबकि संयुक्त राष्ट्र सेना के नाम पर अमेरिका दक्षिणी कोरिया की ओर से युद्धरत था। यह युद्ध निशिचत ही तीसरे विश्व युद्ध का रूप ले सकता था परन्तु युद्ध विराम की घोषणा से यह खतरा टल गया।

दूसरे विश्व युद्ध के बाद कोरिया को दो भागो - उत्तरी कोरिया (सोवियत नियंत्रण) तथा दक्षिण कोरिया (अमेरिकी नियंत्रण) - विभाजित कर दिया गया | जहाँ उत्तरी कोरिया में सोवियत संघ के नियंत्रण में साम्यवादी सरकार की स्थापना की गयी, वहाँ दक्षिण कोरिया में सयुक्त राष्ट्र की देख रेख में हुए चुनावो के परिणाम स्वरूप पूंजीवाद सरकार की स्थापना हुई | 1950 में अमेरिका ने जापान के साथ एक संधि पर हस्ताक्षर किये जिसके अनुसार अमेरिका जापान में दीर्घकालीन सैनिक अड्डो की गारंटी देगा | कुछ प्रयावेक्षको का मानना था की इस समझोते ने स्टालिन को अमेरिका द्वारा समर्थिक दक्षिण कोरिया पर 20 जून 1950 को आक्रमण करने की योजना को स्वीकृति देने पर मजबूर कर दिया | इस डर से की कहीं एकीकृत कोरिया जापान में अमेरिकी शक्ति को समतल न कर दे और विश्व स्तर पर साम्यवादी आंदोलन को जन्म न दे दे, ट्रूमैन ने दक्षिण कोरिया को सैनिक सहायता देने का निर्णय लिया तथा दक्षिण कोरिया से उत्तरी कोरिया की सेनाओ को हटाने के लिए संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद का समर्थन भी प्राप्त कर लिया | इस संदर्भ में सोवियत यूनियन ने एक ऐतिहासिक कूटनीतिक गलती की जब उसने सुरक्षा परिषद की बैठक का बाईकाट किया| परन्तु अमेरिका की तरफ से भी भरी गलती हुई जब उसने अपनी सेनाओ को चीन कोरिया सीमा की तरफ जाने की स्वीकृति दे दी | चीन ने इसका जवाब नवम्बर 1950 में भरी जवाबी आक्रमण से दिया जिसमे अमेरिकी तथा चीनी सेनाओ का भरी विनाश हुआ | यह युद्ध दो साल तक चला और कोरिया के विभाजन में समाप्त हुआ |

3.5.1.6 वियतनाम युद्ध

1966 तक अमेरिका के दो लाख के करीब सैनिक वियतनाम में युद्ध कर रहे थे | दूसरी तरह उतरी वियतनाम सोवियत यूनियन तथा अन्य साम्यवादी देशो से सैनिक तथा तकनीकी सहायता प्राप्त कर रहा था | व्यापक सैनिक सहायता, भरी बम्ब वर्षा तथा अधिका अधिक अमेरिकी सेनाओ के बावजूद दक्षिण वियतनाम वियतकोंग एवं उत्तरी वियतनाम की सेनाओ को हराने में असफल रहा | अमेरिका की जीत की आशा वादी रिपोर्ट का पर्दा फाश tab हुआ जब उत्तरी वियतनाम तथा वियतकोंग ने घातक टेट आक्रमण किया जिसमे 100 से अधिक शहरो पर आक्रमण किया गया तथा दक्षिण वियतनाम के ह्यू शहर के लिए एक महीने तक का युद्ध चला |

वियतनाम युद्ध को समाप्त करने के लिए गंभीर वार्ता 1968 के बाद आरम्भ हुई जब अमेरिका के राष्ट्रियपति लिंडन जॉनसन ने दोबारा चुनाव न लड़ने का निर्णय लिया | 1969 ने अमेरिका, उत्तरी वियतनाम , दक्षिण वियतनाम तथा राजनितिक संगठन राष्ट्रीय मुक्ति मोर्चा के बीच वार्ताएँ चली | नये राष्ट्रपति निक्सन ने रणनीति में परिवर्तन किया | वियतनाम से अमेरिकी सेनाओ की वापसी के साथ उसने वियतनाम पर बम बरी और भी तीव्र कर दी जिसमे कम्बोडिया में साम्यवादी दिकणो पर हमले भी शामिल थे |

3.5.2 दूसरा चरण (1962-1979), दितान्त

शीत युद्ध के पहले चरण के खत्म होते ही 1962 क्यूबा मिसाइल संकट का दौर शुरू हो गया । एक तरफ अमेरिका सोवियत संघ को घेरने के उद्देश्य से जगह-जगह अपनी सेनाये भेज रहा था तो दूसरी तरफ अमेरिका की बढ़ती हुई शक्ति को रोकने के लिए सोवियत संघ ने क्यूबा में परमाणु मिसाइल लगाने का सोचा।

क्यूबा मिसाइल को लेकर अमेरिकी प्रशासन में सात-दिनों तक चर्चा हुई और 22 अक्टूबर को राष्ट्रपति केनेडी ने अपने एक टेलिविजन भाषण के माध्यम से इस तथ्य का खुलासा किया और यह चेतावनी भी दी कि क्यूबा की जमीन से हुए किसी भी मिसाइल आक्रमण को सोवियत संघ द्वारा किया गया आक्रमण समझा जाएगा एवं उसका उचित जवाब भी दिया जाएगा। अमेरिका ने क्यूबा की समुंद्री सीमा में जहाजों के आवागमन पर भी प्रतिबंध लगा दिया ताकि सोवियत सैन्य हथियार वहाँ नहीं पहुँच सके।

इस संकट के दौरान दोनों पक्षों के बीच औपचारिक तथा अनौपचारिक दोनों तरह की वार्ता होती रही। 23 और 24 अक्टूबर को –ख्रुश्चेव ने केनेडी को पत्रा लिखे जिसमें यह इंगित किया गया था कि सोवियत संघ का रवैया शांतिपूर्ण है तथा क्यूबा में लगने वाले मिसाइल सुरक्ष के उद्देश्य के लिए लगाया गया हैं। 26 अक्टूबर को –ख्रुश्चेव ने केनेडी को एक और पत्रा लिखा जिसमें यह था कि सोवियत संघ क्यूबा में अपना मिसाइल कार्यक्रम स्थगित कर देगा यदि अमेरिका यह सुनिशिचत करे कि अमेरिका या उसके आड़ में कोई अन्य देश क्यूबा पर आक्रमण नहीं करेगा। 27 अक्टूबर को –ख्रुश्चेव ने फिर एक पत्रा केनेडी को भेजा जिसकी भाषा पहले से अलग थी। इस पत्रा में –ख्रुश्चेव ने यह प्रस्ताव दिया था कि यदि अमेरिका टर्की से अपना मिसाइल हटा ले तो सोवियत संघ क्यूबा में अपना मिसाइल कार्यक्रम रोक देगा। अमेरिकी प्रशासन ने 26 अक्टूबर वाले पत्रा के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। 28 अक्टूबर को –ख्रुश्चेव ने ये घोषणा की कि क्यूबा में मिसाइल कार्यक्रम को सोवियत संघ वापस ले लेगा और अमेरिका क्यूबा पर हमला नहीं करेगा। 28 अक्टूबर वाले समझौते को लागू करने की दिशा में आगे की बातचीत आरम्भ हो गई। इस घटना दोनों महाशकितयों को युद्ध के कगार पर ला कर खड़ा कर दिया था। लेकिन –ख्रुश्चेव और केनेडी के बीच हुए इस समझौते ने विश्व को परमाणु विनाश से बचा लिया।

3.5.2.1 गैर - पश्चिमी गठबंधनों का उदय

1960 के दशक में एशिया, मध्यपूर्व तथा अफ्रीका के तृतीय विश्व के देशो ने भी संगठन बनाने शुरू कर दिए जैसे:- गुटनिरपेक्ष आंदोलन, OPEC, OAU तथा अरब लीग की स्थापना| कुछ विकासशील देशो ने एक नई रणनीति की रचना भी की ताकि महाशक्तियों का अपने राष्ट्रीय हितो के लिए लाभ भी उठाया जाये तथा गुटनिरपेक्ष भी रह सके |

सयुक्त राष्ट्र आम सभा, जिसमे पहले 51 सदस्य राज्य थे, 1970 के दशक में यह सदस्य संख्या बढ़कर 126 हो गयी और 2014 में इसके सदस्यों की संख्या 192 है | पश्चिमी राज्यों का प्रभुत्व घटकर 40 प्रतिशत रह गया तथा एशिया-अफ्रीका के देशो की संख्या का प्रतिशत बड़ गया | जैसे - जैसे पुराने उपनिवेशों को स्वतंत्रता मिलती गयी, वैसे - वैसे सयुक्त राष्ट्र आम सभा में भीड़ बढ़ती गयी| परिणम स्वरूप एशिया, अफ्रीका तथा लेटिन अमेरिका के विकासशील देशो का गुट बहुमत हो गया और सोवियत यूनियन के समर्थन में यह कभी-कभी पश्चिमी विरोधी भी हो जाता था |

3.5.2.2 दितान्त

यह चरण में शीत युद्ध समाप्ति की ओर था और दोनों पक्षों के बीच संबंध सामान्य होने लगे। राष्ट्रपति निक्सन एवं उनके राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार हेनरी ए. किसिन्जर के आगमन से ही यह संभव हो सका। सोवियत - अमेरिका संबंध बढ़ाने की इस नीति को आधिकारिक रूप से 1969 में दितान्त का नाम दिया गया।

शब्द देतान्त का अर्थ है |शीतयुद्ध के दौरान अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धो मे स्थाई ढील ना कि अस्थायी ढील जिसे था का नाम दिया जाता है | देतांत एक फ्रंच शब्द है जिसका अर्थ है तनाव की कमी |

वियतनाम युद्ध में असपफलता की वजह से 1969 और 1975 के बीच अमेरिका आर्थिक संकट के दौर से गुजर रहा था। वियतनाम युद्ध 1959 से लेकर 30 अप्रैल 1975 तक वियतनाम, लाओस तथा कम्बोडिया में चला। अमेरिका को युद्ध में इसलिए शामिल होना पड़ा कि दक्षिण वियतनाम में साम्यवादी शासन की स्थापना न हो पाए। इस दौरान अमेरिकी डालर का मूल्य गिरता जा रहा था। सोवियत संघ की भी आर्थिक स्थिति ख़राब होती जा रही थी और वह तकनीकि रूप से अपने-आप को उन्नत करने के प्रयास में लगा हुआ था। बड़े पैमाने पर सेनाओ का संरक्षण तथा परमाणु आस्त्रो के निर्माण में होने वाले महाकाय व्यय का भी अंदाज होना आरम्भ हो गया था |

वियतनाम युद्ध के परिणाम स्वरूप अमेरिका को हुए आर्थिक तथा मानवीय नुकसान ने भी स्पष्ट कर दिया की सोवियत रूस के साथ शांति पूर्ण संबंध ही लाभकारी होंगे | उधर सोवियत रूस भी परमाणु शस्त्रों के विकास पर आपार धन खर्च कर रहा था जिसका सीधा प्रभाव उसकी घरेलू अर्थव्यवस्था पर पड़ रहा था | सोवियत संघ में जीवन स्तर काफी निम्न था | सोवियत रूस के चीन के साथ संबंध बिगड़ और उसे यह भी पता था की अमेरिका चीन के साथ संबंध सुधरने जा रहा है | चीन के सोवियत रूस के साथ संबंध बिगड़ चुके थे और सोवियत संघ अमेरिका की शक्ति तथा पहुंच से भी भलीभांति परिचित था अत: अमेरिका, सोवियत यूनियन तथा चीन के त्रिकोण ने तनाव शैथिल्य को जन्म दिया |

1972 में सामरिक हथियार परिसीमन संधि पर जुलाई 1973 में हस्ताक्षर किये गये तथा 1977 में यूरोपीय सुरक्षा बैठक की समीक्षा हेतु बेलग्रेड में आयोजित समीक्षा बैठक एक ऐसा कदम था जिनका दोनों पक्षों के बीच सुसंबंध में महत्वपूर्ण योगदान रहा। फिर भी दोनों पक्षों के बीच कुछ कड़वाहट बची हुई थी। उदाहरणस्वरूप, मध्य एशिया में रूस के बढ़ते प्रभाव को रोकने के दृषिटकोण से अमेरिका ने इरान मे हथियारों के जमावड़े को प्रोत्साहन दिया। इसने डिएगो ग्रेसिया को सैन्य बेस में तब्दील करने की पहल की। बंगलादेश संकट के समय अमेरिका ने पाकिस्तान का साथ दिया जबकि रूस भारत के पक्ष में था। इसी तरह 1973 के मिश्र - इजराइल युद्ध के समय सोवियत संघ मिश्र के पक्ष में था जबकि अमेरिका इज़राएल के साथ था। परन्तु इन सभी घटनाओ में दोनों ही महाशक्तियों ने प्रत्यक्ष सैन्य कार्यवाई में हिस्सा नहीं लिया।

3.5.3 तीसरा चरण (1979-1984), दूसरा शीत युद्ध

1979 में सोवियत संघ के हस्तक्षेप से देतांत का अंत हो गया तथा शीत युद्ध एक बार फिर से शुरू हुआ| इस चरण को दूसरा शीत युद्ध भी कहा जाता है| इस चरण में दोनों पक्षों दोनों पक्षों ने फिर से सैनिक तेयारिया करना शुरू कर दिया | 1983 में पश्चिमी यूरोप द्वारा नकली परमाणु मुक्ति अभ्यास से सोवियत संघ को लगा की अमेरिका उस पर परमाणु आक्रमण करने वाला है| दूसरी तरफ अफगानिस्तान में सोवियत संघ का हस्तक्षेप इस समय की विकट समस्या बन गया | अमेरिका ने अफ़ग़ानिस्तान को हथियार देकर सहायता की जिसने सोवियत संघ के कई जहाजो को मार गिराया | दिसम्बर 1979 में राष्ट्रपति कार्टर ने हाटलाइन पर सोवियत नेताओं को चेतावनी दी कि यदि सोवियत संघ अपफगानिस्तान से बाहर नहीं निकला तो पूरा सोवियत-अमेरिकी संबंध खटाई में पड़ सकता है। आक्रमण के एक साल के अंदर ही 1980 में सोवियत संघ को निर्यात किए जाने वाले अन्न एवं उच्च तकनीक पर अमेरिका ने आंशिक प्रतिबंध लगा दिया। 3 जनवरी 1980 को ही संयुक्त राष्ट्र महासभा ने एक प्रस्ताव पारित करके अपफगानिस्तान में सोवियत आक्रमण की भत्र्सना की। इस प्रकार, संयुक्त राष्ट्र के माध्यम से व्यक्त अंतर्राष्ट्रीय विचार सोवियत संघ के विरोध में कड़ा रूप धारण कर लिया।

3.5.3.1 अफगानिस्तान संकट

दिसम्बर 1979 में सोवियत संघ ने अफगानिस्तान पर पूर्णरूप से अधिकार कर लिया और बराक कर्मल को राष्ट्रपति बना दिया गया। इसके साथ ही सोवियत संघ और उसके द्वारा बनाई सरकार को भारी विरोध का सामना करना पड़ा | इस विरोध का फायदा उठा कर गुरिल्ला दस्तो ने आक्रमणकारियों के खिलापफ जिहाद की घोषणा कर दी| जिसकी अमेरिका ने पाकिस्तान की मदद से अमेरिकी अत्याधुनिक हथियारों मुजाहिदीन की सहायता के लिए भेजने लगा |

जिससे सोवियत सेनाये इस अफ़ग़ानितं के युद्ध में पराजित होने लगी| यह संघर्ष लगभग बराबरी पर समाप्त हुआ जिसमें शहरी क्षेत्रों पर सोवियत सेना का नियंत्राण था जबकि पहाड़ी क्षेत्रों में मुजाहीदीन गुरिल्ला मुक्त रूप से

कार्यरत थे। 1986 में करमल के त्यागपत्रा देने के बाद मोहम्मद नजीबुल्ला राष्ट्रपति बने। अप्रैल 1988 में सोवियत संघ, अमेरिका, अफगानिस्तान तथा पाकिस्तान के बीच समझौता हुआ जिसका प्रावधान था कि युद्धरत गुटों को किसी तरह की बाहरी सहायता न मिले। फ़रवरी 1988 में राष्ट्रपति मिखाइल गोरबाचेव ने अफगानिस्तान से सोवियत सेना की वापसी की घोषणा की परन्तु एक साल बाद अफगानिस्तान कई नियंत्राण क्षेत्रों में विभाजित हो गया। दशक के अंत तक यही राजनैतिक विभाजन तालिबान के उत्थान का कारण बना।

3.5.3.2 तनाव-शैथिल्य

नये सोवियत नेता मिखाइल गोरबाचेव और अमेरिकी राष्ट्रपति रोनाल्ड रीगन के साथ एक विश्व स्तरीय शिखर बैठक में परमाणु हथियार समाप्त करने हेतु एक पांच वर्षीय समय सरणी का प्रस्ताव रखा। अमेरिका ने इस विषय पर सकारात्मक रूख तो दिखाया परन्तु गोरबाचेव की तुलना में यह बहुत कम था। गोर्बाचेव और रीगन ने चार शिखर बैठक की जिसकी विश्वव्यापी सराहना हुई। दोनों देशों ने सामरिक हथियार परिसीमन सन्धि की दिशा में अपना रुख किया | दोनों देश के बीच यह समझोता हुआ कि समुन्द्र एवं सतह पर मार करने वाले मिसाइल के परीक्षण की पूर्व सूचना दी जाए तथा परमाणु हथियारों के परीक्षण की संयुक्त जाँच हो।

1990 के वाशिंगटन शिखर बैठक में राष्ट्रपति बुश एवं राष्ट्रति गोर्बाचेव ने परमाणु, रसायनिक एवं पारम्परिक हथियारों से संबंधित कई समझौतों पर हस्ताक्षर किए। सामरिक हथियार परिसीमन संधि के भी कुछ सिद्धान्तों पर दोनों सहमत हुए एवं 31 जुलाई 1990 को इस पर हस्ताक्षर भी किए।

3.5.4 चौथा चरण (1985 -1991), शीत युद्ध का अंत

1985-91 की कालावधि शीत युद्ध के अंत की दृष्टि से सोवियत संघ और अमेरिका के संबंधो में ऐतिहासिक सीमचिन्ह मानी जाती है| इस समय ऐसी घटनाये घाटी जिसकी वजह से सोवियत संघ के बिघटन के साथ शीत युद्ध का अंत हो गया |

3.5.4.1 बर्लिन की दीवार का ध्वस्त होना

यूरोप में बर्लिन की दीवार शीत युद्ध का कलुषित प्रतिक थी | 9 नवंबर 1989 को बर्लिन को दो भागो में बाटने वाली दीवार ध्वस्त कर दी गयी | पूर्वो जर्मनी से लोग बिना किसी रोक टोक पश्चिमी जर्मनी जाने लगे इस घटना का सोवियत संघ की और कोई प्रतिरोध नही किया गया |

3.5.4.2 जर्मनी का एकीकरण

01 जुलाई 1990 को दोनों जर्मनी का आर्थिक एकीकरण हो गया| 15-16 जुलाई, 1990 को पश्चिमी जर्मनी के चांसलर हेल्मुट कॉल ने सोवियत राष्ट्रपति गोर्बाचोब से भेट की| बाद में एक पत्रकार सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए सोवियत राष्ट्रपति ने कहा की जर्मनी का एकीकरण निश्चित है, सोवियत संघ जर्मनी से निकट संबंध चाहता है और यह जर्मनी की इच्छा पर है की वह नाटो या वारसा पेक्ट में शमिल हो | इस प्रकार सोवियत संघ ने जर्मनी के एकीकरण को हरी झंडी दिखा दी | 03 अक्टूबर 1990 को जर्मनी का एकीकरण हो गया जिसके साथ ही यूरोप से शीत युद्ध की गंदगी साफ हो गयी |

3.5.4.3 नाटो द्वारा शीत युद्ध समाप्ति को घोषणा

5-6 जुलाई 1990 को लन्दन में दोदिवसीय नाटो शिखर सम्मेलन में राष्ट्रपति बुश ने ऐतिहासिक घोषणा करते हुए खा की नाटो व् वारसा पेक्ट देशो के बीच शीत युद्ध अब समाप्त हो चूका है सोवियत संघ की असंकाओ को दूर करने के लिए नाटो घोषणा में कहा गया की जर्मनी से सेनिको की तादाद कम कर दी जाएगी जैसे - जैसे सोवियत संघ पूर्वी यूरोप से अपनी सेनाए हटाएगा, नाटो भी पश्चिमी जर्मनी से परमाणु हथियारों को हटा लेगा | पश्चिमी जर्मनी ने सोवियत संघ को आश्वासन दिया की वह एकीकरण बाद अपनी सेना आधी कर देगा | नाटो देशो में वारसा पेक्ट के देशो के सामने एक अनाक्रमण घोषणा के साथ परमाणु शस्त्रों को खत्म करने का प्रस्ताव रखा |

3.5.4.4 हेलसिंकी में गोर्बाचोव - बुश वार्ता

8-9 सितम्बर, 1990 को हेकसिंकी में राष्ट्रपति बुश व गौरवबाचोव के बीच बात चित्त हुई दोनों नेताओ ने इराक द्वारा कुवैत पर आक्रमण की निन्दा की और कहा की वह सुरक्षा परिषद के प्रस्ताव का पूर्णता समर्थन करते है | दोनों महाशक्ति इस बात पर एकमत है की इराक बिना शर्त कुवैत से वापस हो जाये तथा सयुक्त राष्ट्र सुरक्ष परिषद के सभी प्रस्तावों का अनुपालन करे | सोवियत संघ ने इराक को शस्त्रों की आपूर्ति बंद कर दी तथा कुवैत की स्वतंत्रता एवं संप्रभुता को बहाल करने की मांग की |

3.5.4.5 वारसा व नाटो ऐतिहासिक संधि पर हस्ताक्षर

19 नवंबर 1990 को नाटो व वारसा पेक्ट की संधि पर हस्ताक्षर किया गया इस संधि में जांच पड़ताल की व्यापक व्यवस्था की गयी ताकि कोई भी पक्ष इसका उल्ल्ंघन न कर सके | 21 नवंबर, 1990 को शिखर बैठक सद्भावनापूर्ण विचार - विमर्श के बाद समाप्त हो गयी | और इसके साथ ही 01 जुलाई , 1991 को वारसा पैक्ट भी समाप्त कर दिया गया |

3.5.4.6 पेरेस्ट्रोइका तथा ग्लासनोस्त

जून 1987 में गोर्बाचेव के द्वारा आर्थिक एवं राजनितिक सुधारो के लिए उढाये गए कदमो को पेरेस्ट्रोइका तथा ग्लासनोस्त का नाम दिया गया | पेरेस्ट्रोइका का अर्थ था आर्थिक एवं राजनीतिक संस्थाओं का पुर्ननिर्माण है | जिससे निजी क्षेत्रा में व्यापार को अनुमति मिल गई एवं विदेशी निवेश के लिए मार्ग खुल गए। इन प्रावधानों का उद्देश्य था शीत युद्ध के दौरान सैनिक प्रतिबद्धता पर हो रहे खर्च को जनहित एवं विकस कायो में लगाया जाए। दूसरी तरफ ग्लासनोस्त का अर्थ था विचारभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, समाचार तथा मीडिया पर सरकारी नियंत्रण में ढील तथा प्रकाशन आदि में सेंसरशिप की समाप्ति आदि |

पेरेस्ट्रोइका तथा ग्लासनोस्त पूर्वी यूरोपीय देशो से साम्यवादी शासनो सदा के लिए समाप्त कर दिया, सोवियत रूस के गणराज्यो को भी मास्को से मुक्ति पाने के लिए प्रोत्साहित किया | अभी तक साम्यवादी दाल सोवियत यूनियन के बहुजातीय तथा बहुभाषीय गणराज्यो को इकट्ठा रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा था | परन्तु सरकारी नियंत्रण ढीला होने से इन राष्ट्रताओ को सोवियत दमन से मुक्ति पाने की इच्छा तीव्र हो गयी | अगस्त 1989 में इस्टोनिया, लॅट्विया, लिथुनिया, ने सोवियत संघ से स्वतंत्रता पाने के लिए प्रदर्शन किया | जिसकी वजह से सोवियत रूस के यह राज्य स्वतंत्र हो गए | परन्तु इसके बाद भी गणराज्यों की स्वतंत्रता की यह मांग नही रुकी और धीरे - धीरे सोवियत यूनियन का विघटन हो गया | और सोवियत यूनियन के विघटन के साथ ही शीत युद्ध भी समाप्त हो गया |

अभ्यास प्रश्न

1 मार्शल योजना किससे संबंधित थी (?

क रूस की सहायता से . ख यूरोप का आर्थिक पुनरुत्थान .

ग शीत युद्ध की शुरुआत . घ इनमे से कोई नही .

2अमेरिका द्वारा सैनिक संगठन था साम्यवाद के प्रसार पर रोक लगाने के लिए (?

क नाटो . ख वारसा पेक्ट .

ग सीटो . घ कोई नही .

3 कोरिया (युद्ध कब हुआ था?

क१९६० . ख१९५० .

ग१९५५ . घ१९५१ .

4 शीत युद्ध किन दो विचारधराओ के मध्य संघर्ष था (?

क नाजीवादी और फासीवादी . ख पूंजीवादी और साम्यवादी

ग उदारवादी और मार्क्सवादी . घ सभी .

5 नाटो द्वारा शीत युद्ध की समाप्ति की घोषणा कब की गई (?

क .१९९१ ख१९९०जुलाई .

ग१९९०जनवरी . घ १९९१अक्टूबर .

3.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अंतर्गत हम लोगो ने शीत युद्ध का अर्थ, शीत युद्ध के जन्म के कारण तथा इसके विकास के विभिन्न चरणो का अध्ययन किया | शीत युद्ध का समय एक ऐसा समय था जिसने सम्पूर्ण विश्व को दो गुटो में विभजित कर दिया | पूरा विश्व सिर्फ दो महाशक्तियों के इर्द -गिर्द घूम रहा था| इस समय बहुत से शक्ति समझौते हुए और बहुत से समझौतों को तोड़ा भी गया और कई बार तो ऐसा भी लगा की तीसरा विश्व युद्ध न शुरू हो जाये | बर्लिन की नाकाबंदी, कोरिया युद्ध, वियतनाम युद्ध और अफगानिस्तान संकट आदि ऐसी घटनाये है जिनसे लगा की कभी भी विश्व को तीसरा विश्व युद्ध झेलना पड़ सकता| परन्तु 1985 तक आते -आते दोनों महाशक्तियों के संबंधो में तनाव कम हुआ | जिसका मुखे कारण आर्थिक संकट और सोवियत रूस के गणराज्यो का सोवियत संघ से अलग होने के लिए घरेलू विद्रोह था | जिसकी वजह से 1991 में सोवियत रूस रूस के विघटन के साथ ही शीत युद्ध भी समाप्त हो गया |

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि शीत युद्ध के अंत का सम्पूर्ण विश्व पर बहुआयामी प्रभाव पड़ा और इसने विश्व व्यवस्था को बिल्कुल ही परिवर्तित कर दिया है| आज उदार लोकतंत्रवाद तथा पूंजीवाद का हर जगह बोलबाला है | पूंजीवादी अमेरिका का एक छत्र राज है और अपने हितो की पूर्ति के लिए वह हर प्रकार के साधनो का खुल कर प्रयोग कर रहा है| यधपि इस दौरान हितो एवं शक्ति के लिए निरंतर चलने वाले संघर्स के कारण कटटरता, धार्मिक उन्माद, तथा आतंकवाद जैसे नए कारक भी उभर कर सामने आए परन्तु राष्ट्र के मध्य पारस्परिक मित्रता, द्विपक्षीय, बहुपक्षीय सहयोग, सतत विकास, नि - शस्त्रीकरण, मानव अधिकरवाद जैसे मुद्दो पर जागरूकता तथा आम सहमति पूर्वापेक्षा बढ़ी है | इस कारण शीत युद्ध के पूर्ववर्ती स्वरूप के पुनरोदय की संभावना क्षीण ही दिखाई देती है |

3.7 शब्दावली

प्रस्तावना - परिचय, भूमिका, इत्यादि
शीत युद्ध - न तो पूर्ण रूप से शांति हो और न ही वास्तविक युद्ध हो
देतांत - तनावों में कमी
सामरिक - युद्ध नीति -विषयक, रणनीति -संबंधी

3.8 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

1). ख 2). ग 3). ख 4). ख 5). ख

3.9 संदर्भ ग्रन्थ

1.K. Smith S. (ed) (1995), "International Relations Theory Today", University Press, Cambridge

2.Huntington S (1996), "The Clash of Civilization and the Remaking of World Order", Simon and Schusgte, New York.

3.Leffier. Melvyn P. (2005), "Cold War and Global Hegemony, 1945- 1991", OAH Magazine of History, America.

4.Mueller, John (1994), "What Was the Cold War About? Evidence from Its Ending",

3.10 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.Appadorai A (1981), "India's Foreign Policy", Oxford University Press, New Delhi.

2.Dixit, J. N.(200),*India's Foreign Policy*, New Delhi: Picus Books

3.Rajan, M.S.(1990), *Non-alignment and Non-aligned Movement: Retrospect and Prospect*, New Delhi : Vikas Publishing House Pvt Ltd.

4.Appadorai, A., M.S. Rajan (1985), *India's Foreign Policy and Relations*, New Delhi: South Asian Publishers.

3.11 निबंधात्मक प्रश्न

1.शीत युद्ध के उदय के कारणों की समीक्षा कर ?
2.शीत युद्ध की समाप्ति के क्या कारण थे ?
3.शीत युद्ध का विश्व अर्थव्यवस्थ पर क्या प्रभाव पड़ा ?
4.उत्तर शीत युद्ध काल में अमेरिका के योगदान की समालोचना करे ?

इकाई04- शीतयुद्ध का अन्त, नव शीत युद्ध तथा उसका विश्व राजनीति पर प्रभाव

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 शीत युद्ध का अंत

- 4.3.1 बर्लिन की दीवार का ध्वस्त होना
- 4.3.2 जर्मनी का एकीकरण
- 4.3.3 नाटो द्वारा शीत युद्ध समाप्ति को घोषणा
- 4.3.4 हेलसिंकी में गोर्बाचोव - बुश वार्ता
- 4.3.5 वारसा व नाटो ऐतिहासिक संधि पर हस्ताक्षर
- 4.3.6 पेरेस्ट्रोइका तथा ग्लासनोस्त

4.4 नव शीत-युद्ध

4.5 नये शीत-युद्ध की उत्पत्ति

4.6 नये शीत-युद्ध के कारण

4.7अमेरिकी कूटनीति का प्रयोग

4.8पश्चिमी एशिया या मध्यपूर्व के बदलते हालात

4.9नये शीत-युद्ध की प्रकृति

4.10 विश्व राजनीति पर प्रभाव

4.11 सारांश

4.12 शब्दावली

4.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.14 संदर्भ ग्रन्थ

4.15 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री

4.16 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

परिवर्तित समय के साथ - साथ अध्ययन की दृष्टि से अंतराष्ट्रीय सम्बन्धो में भी परिवर्तन आया और इसका महत्व भी बढ़ा | ऐतिहासिक दृष्टि से यह प्रयास किया जाता रहा है की 20 वी शताब्दी में राष्ट्रों के मध्य शक्ति एवं समृद्धि के लिए संघर्ष के वर्णन का विश्लेषिक ढाँचा प्रदान किया जा सके | 20 वी शताब्दी दो महायुद्धों की साक्षी है जिसने शीत - युध्द जैसी विशाल - प्रतिद्वंद्विता को जन्म दिया| शीत युद्ध एक बहुआयामी संघर्ष था | इसमें संयुक्त राज्य अमेरिका और भूतपूर्व सोवियत संघ द्वारा अपने-अपने प्रभावी क्षेत्रो में नियंत्रण स्थापित करने के लिए रणनीतिक एवं सैनिक प्रतिस्पर्धा शामिल थी |

सोवियत संघ के विघटन ने शीतयुद्ध के अंत का मार्ग प्रशस्त किया |

सन् 1962 के क्यूबा संकट के बाद शीत-युद्ध में शिथिलता या नरमी आने लगी। हेल्सिंकी सम्मेलन के समय पर तनाव शैथिल्य अपनी चरमसीमा पर था परन्तु उसके पश्चात् इसकी गति धीमी पड़ गई। सोवियत संघ और अमरीकी संबंध एक बार फिर इतने बिगड़ गए कि 1980 में ऐसा प्रतीत होने लगा कि शीत-युद्ध वापस आ गया है। जो तनाव इस बार उभरकर आया उसको ''नव-शीत-युद्ध'' की संज्ञा दी गई। दिसम्बर 1979 में जब सोवियत सैनिक अफगानिस्तान में प्रवेश करके उसकी राजनीति में हस्तक्षेप किया और उस पर कब्जा कर लिया तब शीत-युद्ध पुनः सामने आ गया।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अंतर्गत हम मुख्यत: शीत युद्ध की अवधारणा की व्याख्या, इसका अर्थ समाप्ति के कारणों की विवेचना करेंगे जिनकी सम्पूर्ण शीत युद्ध में महत्वपूर्ण भूमिका थी |

इस इकाई को पढ़ने और समझने के पश्चात हम :-

- सोवियत संघ का विघटन शीत युद्ध के समाप्त होने का मुख्य कारण किस प्रकार था, इसको समझने सहायता मिलेगी |
- क्षेत्रीय गुटो का शीत युद्ध पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन कर सकेंगे |

4.3 शीत युद्ध का अंत(1985 -1991),

1985-91 की कालावधि शीत युद्ध के अंत की दृष्टि से सोवियत संघ और अमेरिका के संबंधो में ऐतिहासिक सीमचिन्ह मानी जाती है| इस समय ऐसी घटनाये घाटी जिसकी वजह से सोवियत संघ के बिघटन के साथ शीत युद्ध का अंत हो गया |

4.3 .1 बर्लिन की दीवार का ध्वस्त होना

यूरोप में बर्लिन की दीवार शीत युद्ध का कलुषित प्रतिक थी | 9 नवंबर 1989 को बर्लिन को दो भागो में बाटने वाली दीवार ध्वस्त कर दी गयी | पूर्वो जर्मनी से लोग बिना किसी रोक टोक पश्चिमी जर्मनी जाने लगे इस घटना का सोवियत संघ की और कोई प्रतिरोध नही किया गया |

4.3 .2 जर्मनी का एकीकरण

01 जुलाई 1990 को दोनों जर्मनी का आर्थिक एकीकरण हो गया| 15-16 जुलाई, 1990 को पश्चिमी जर्मनी के चांसलर हेल्मुट कॉल ने सोवियत राष्ट्रपति गोर्बाचोब से भेट की| बाद में एक पत्रकार सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए सोवियत राष्ट्रपति ने कहा की जर्मनी का एकीकरण निश्चित है, सोवियत संघ जर्मनी से निकट संबंध चाहता है और यह जर्मनी की इच्छा पर है की वह नाटो या वारसा पेक्ट में शमिल हो | इस प्रकार सोवियत संघ ने जर्मनी के एकीकरण को हरी झंडी दिखा दी | 03 अक्टूबर 1990 को जर्मनी का एकीकरण हो गया जिसके साथ ही यूरोप से शीत युद्ध की गंदगी साफ हो गयी |

4.3 3 नाटो द्वारा शीत युद्ध समाप्ति को घोषणा

5-6 जुलाई 1990 को लन्दन में दोदिवसीय नाटो शिखर सम्मेलन में राष्ट्रपति बुश ने ऐतिहासिक घोषणा करते हुए खा की नाटो व् वारसा पेक्ट देशो के बीच शीत युद्ध अब समाप्त हो चूका है सोवियत संघ की असंकाओ को दूर करने के लिए नाटो घोषणा में कहा गया की जर्मनी से सेनिको की तादाद कम कर दी जाएगी जैसे - जैसे सोवियत संघ पूर्वी यूरोप से अपनी सेनाए हटाएगा, नाटो भी पश्चिमी जर्मनी से परमाणु हथियारों को हटा लेगा | पश्चिमी जर्मनी ने सोवियत संघ को आश्वासन दिया की वह एकीकरण बाद अपनी सेना आधी कर देगा | नाटो देशो में वारसा पेक्ट के देशो के सामने एक अनाक्रमण घोषणा के साथ परमाणु शस्त्रों को खत्म करने का प्रस्ताव रखा |

4.3 .4 हेलसिंकी में गोर्बाचोव - बुश वार्ता

8-9 सितम्बर, 1990 को हेकसिंकी में राष्ट्रपति बुश व गौरवबाचोव के बीच बात चित्त हुई दोनों नेताओ ने इराक द्वारा कुवैत पर आक्रमण की निन्दा की और कहा की वह सुरक्षा परिषद के प्रस्ताव का पूर्णता समर्थन करते है | दोनों महाशक्ति इस बात पर एकमत है की इराक बिना शर्त कुवैत से वापस हो जाये तथा सयुक्त राष्ट्र सुरक्ष परिषद के सभी प्रस्तावों का अनुपालन करे | सोवियत संघ ने इराक को शस्त्रों की आपूर्ति बंद कर दी तथा कुवैत की स्वतंत्रता एवं संप्रभुता को बहाल करने की मांग की |

4.3 .5 वारसा व नाटो ऐतिहासिक संधि पर हस्ताक्षर

19 नवंबर 1990 को नाटो व वारसा पेक्ट की संधि पर हस्ताक्षर किया गया इस संधि में जांच पड़ताल की व्यापक व्यवस्था की गयी ताकि कोई भी पक्ष इसका उल्लंघन न कर सके | 21 नवंबर, 1990 को शिखर बैठक सद्भावनापूर्ण विचार - विमर्श के बाद समाप्त हो गयी | और इसके साथ ही 01 जुलाई , 1991 को वारसा पैक्ट भी समाप्त कर दिया गया |

4.3 .6 पेरेस्ट्रोइका तथा ग्लासनोस्त

जून 1987 में गोर्बाचेव के द्वारा आर्थिक एवं राजनितिक सुधारो के लिए उढाये गए कदमो को पेरेस्ट्रोइका तथा ग्लासनोस्त का नाम दिया गया | पेरेस्ट्रोइका का अर्थ था आर्थिक एवं राजनीतिक संस्थाओं का पुर्ननिर्माण है | जिससे निजी क्षेत्रा में व्यापार को अनुमति मिल गई एवं विदेशी निवेश के लिए मार्ग खुल गए। इन प्रावधानों का उद्देश्य था शीत युद्ध के दौरान सैनिक प्रतिबद्धता पर हो रहे खर्च को जनहित एवं विकस कायो में लगाया जाए। दूसरी तरफ ग्लासनोस्त का अर्थ था विचारभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, समाचार तथा मीडिया पर सरकारी नियंत्रण में ढील तथा प्रकाशन आदि में सेंसरशिप की समाप्ति आदि |

पेरेस्ट्रोइका तथा ग्लासनोस्त पूर्वी यूरोपीय देशो से साम्यवादी शासनो सदा के लिए समाप्त कर दिया, सोवियत रूस के गणराज्यो को भी मास्को से मुक्ति पाने के लिए प्रोत्साहित किया | अभी तक साम्यवादी दाल सोवियत यूनियन के बहुजातीय तथा बहुभाषीय गणराज्यो को इकट्ठा रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा था | परन्तु सरकारी नियंत्रण ढीला होने से इन राष्ट्रताओ को सोवियत दमन से मुक्ति पाने की इच्छा तीव्र हो गयी | अगस्त 1989 में इस्टोनिया, लॅट्विया, लिथुनिया, ने सोवियत संघ से स्वतंत्रता पाने के लिए प्रदर्शन किया | जिसकी वजह से सोवियत रूस के यह राज्य स्वतंत्र हो गए | परन्तु इसके बाद भी गणराज्यों की स्वतंत्रता की यह मांग नही रुकी और धीरे - धीरे सोवियत यूनियन का विघटन हो गया | और सोवियत यूनियन के विघटन के साथ ही शीत युद्ध भी समाप्त हो गया |

4.4 नव शीत-युद्ध

जब वाल्टर लिपमैन ने शीत-युद्ध शब्द का प्रयोग किया तब उसका अभिप्राय दो शक्ति गुटों के मध्य ऐसी युद्ध जैसी स्थिति से था, जो कि युद्ध की स्थिति वास्तव में नहीं थी। यह एक कूटनीतिक युद्ध था दो या दो से अधिक शक्तियों के बीच सशस्त्र संघर्ष नहीं था। फ्लेमिंग ने शीत-युद्ध का वर्णन करते हुए इसे एक ऐसा युद्ध बताया जो युद्ध-स्थल में नहीं लड़ा जाता परन्तु मानवों के मस्तिष्क में होता है। एक व्यक्ति अन्य के मस्तिष्क को नियंत्रित करने का प्रयास करता है। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान मित्र राष्ट्रों में आपस में दरार पड़ गई। यह मित्रता तनाव में परिवर्तित होकर एक विचित्र युद्ध का रूप धारण कर लिया जिसे शीत युद्ध कहा गया। मित्र राष्ट्र दो गुटों में बँट गई एक सोवियत संघ दूसरा अमरीका। ये दोनों एक-दूसरे को कूटनीतिक सामाजिक सांस्कृतिक राजनीतिक और सम्भव हो तो सैनिक मोर्चे पर भी पराजीत करने में संलग्न हो गए।

सन् 1962 के क्यूबा संकट के बाद शीत-युद्ध में शिथिलता या नरमी आने लगी। हेल्सिंकी सम्मेलन के समय पर तनाव शैथिल्य अपनी चरमसीमा पर था परन्तु उसके पश्चात् इसकी गति धीमी पड़ गई। सोवियत संघ और अमरीकी संबंध एक बार फिर इतने बिगड़ गए कि 1980 में ऐसा प्रतीत होने लगा कि शीत-युद्ध वापस आ गया है। जो तनाव इस बार उभरकर आया उसको ''नव-शीत-युद्ध'' की संज्ञा दी गई। दिसम्बर 1979 में जब सोवियत सैनिक अफगानिस्तान में प्रवेश करके उसकी राजनीति में हस्तक्षेप किया और उस पर कब्जा कर लिया तब शीत-युद्ध पुनः सामने आ गया।

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में शीत-युद्ध का एक महत्वपूर्ण भूमिका रहा है। इस युद्ध के कारण विश्व दो गुटों में बंट गया था। शीत-युद्ध का मुख्य उद्देश्य था अपनी वर्चस्व को बनाये रखना। नये शीत-युद्ध का भी यही उद्देश्य था क्योंकि सोवियत संघ की बढ़ती शक्ति के कारण अमरीका हड़बड़ा गया था उन्होंने सोवियत संघ की शक्ति एवं प्रभाव के विस्तार को रोकने। अफगानिस्तान को सोवियत संघ का वियतनाम बनाना। शस्त्र बेचकर डॉलर कमाना ताकि अपनी अर्थव्यवस्था को सुधर सके। अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति के रूप में अमरीकी प्रतिष्ठा और विश्वसनीयता को बनाये रखना चाहता था। सोवियत संघ भी अपने प्रभाव का विस्तार करना चाहता था ताकि विश्व में उनकी वर्चस्व

स्थापित हो। इस अध्याय का मुख्य उद्देश्य है नए शीत-युद्ध काल में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में हो रहे बदलाव एवं उसका विश्व राजनीति पर पड़ने वाले प्रभाव का विस्तारपूर्वक वर्णन करना है।

4.5 नये शीत-युद्ध की उत्पत्ति

शीत-युद्ध के लिए अनेक तत्व एवं कारक उत्तरदायी थे, परन्तु अन्य तत्वों की अपेक्षा तीन मूल तत्व संघर्ष के लिए अधिक उत्तरदायी थे। जर्मनी की पराजय ने शून्य की स्थिति को जन्म दिया। परमाणु अस्त्रों का आविष्कार और प्रयोग हुआ तथा अमेरिका तथा सोवियत संघ के मध्य वैचारिक मतभेद अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों के मूल आकर्षक बन गए। आगे चलकर सोवियत संघ और अमरीकी संबंधों में दितान्त की शुरूआत हुई। दितान्त से अभिप्राय है सोवियत-अमरीकी रिश्तों में तनाव-शैथिल्य और उनमें दिन-प्रतिदिन बढ़ती मित्रता। कभी एक-दूसरे को अपना जानलेवा दुश्मन समझने वालों के बीच खरबों डॉलर का व्यापार होने लगा था। सहकार के इस दौर में अप्रत्याशित रूप से नए शीत-युद्ध का विस्फोट हुआ, जिसे नया शीत-युद्ध कहा जाता है, उसका आरम्भ सोवियत संघ द्वारा अफगानिस्तान में सैनिक हस्तक्षेप को माना जाता है। 1978-88 के मध्य महाशक्तियाँ पुनः शीत-युद्धकालीन भाषा का प्रयोग करने लगी, शस्त्रों की होड़ पुनः तीव्र गति से बढ़ने लगी। टकराव के पुनः विविध केन्द्र उत्पन्न हो गये एक नये शीत-युद्ध की शुरूआत हुई। दोनों शक्ति गुटों में तनाव शैथिल्य के मार्ग से हटने की प्रक्रिया एक समान नहीं थी। सोवियत संघ ने कुछ क्षेत्रों में सहयोग और कुछ क्षेत्रों में संघर्ष का मार्ग अपनाया। हिन्द-चीन, हार्न ऑफ अफ्रीका तथा अफगानिस्तान की घटनाओं ने अमरीका को हताश किया परन्तु उसे इन्हीं घटनाओं ने सोवियत संघ के विरुद्ध प्रचार के अस्त्र के रूप में प्रयोग करने का अवसर भी मिला। इस बार यूरोप के बाहर के संघर्षों की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण हो गई। अमरीका और सोवियत संघ दोनों ही अपने विरोधी के पिछले आँगन में अपनी नीतियों को सक्रिय रूप से लागू करना चाहते थे। सोवियत संघ की सहायता से क्यूबा ने एक बार फिर लैटिन अमरीका में क्रान्तिकारी आन्दोलनों का सक्रिय समर्थन करना आरम्भ कर दिया। अमरीका भी बदला लेने में पीछे नहीं रहा। सोवियत नेता ब्रेजनेव ने कम्युनिस्ट पार्टी की 27वीं काँग्रेस 1976 में कहा था कि ''तनाव शैथिल्य वर्ग संघर्ष के नियमों में नाममात्रा का भी परिवर्तन नहीं कर सकता था, और न उन्हें बदल सकता था। हम इस तथ्य को बिल्कुल छिपाना नहीं चाहते कि हम तनाव शैथिल्य को उस मार्ग के रूप में देखते है जो कि शान्तिपूर्ण समाजवादी और साम्यवादी संरचना के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न करेगा।''

सोवियत संघ शस्त्रास्त्रों के निर्यात के क्षेत्र में अधिक सक्रिय हो गया। सामान्यतया शस्त्र निर्यात के संबंध में अमरीका सोवियत संघ से बहुत आगे था। इस प्रवृत्ति में परिवर्तन हुआ और देशों में शस्त्र-निर्यात को लेकर होड़ शुरू हो गया। अस्सी के दशक के आरम्भ में विश्व के कुल शस्त्र निर्यात का 30 प्रतिशत निर्यात सोवियत संघ कर रहा था। उधर अमरीका का हिस्सा 30 प्रतिशत से कुछ कम था।

4.6 नये शीत-युद्ध के कारण

नये शीत-युद्ध की शुरूआत के निम्नांकित कारण बताये जाते है -

4.6.1 सोवियत संघ की शक्ति में वृद्धि होना

दितान्त के युग में सोवियत संघ परमाणु और नौ-सैनिक शक्ति में अमरीका की बराबरी करने का प्रयत्न कर रहा था। जब अमरीका वियतनाम युद्ध में उलझा हुआ था तब सोवियत संघ ने परम्परागत अस्त्रों और अन्तरिक्ष में अमरीका से आगे निकलने की सफल चेष्टा की। अब सोवियत संघ अमरीका को चुनौती देने की स्थिति में था। उसके समुद्री जहाज सातों समुद्रों की गश्त लगाने लगा अमरीका सोवियत संघ की सर्वोपरि स्थिति को कैसे स्वीकार कर सकता था।

4.6.2 रीगन का राष्ट्रपति पद पर निर्वाचन होना

नवम्बर 1980 के अमरीकी राष्ट्रपति के निर्वाचन में अमरीकी जनता ने जब एक बाज को ह्वाइट हाउस की गद्दी प्रदान कर दी तो नये शीत-युद्ध की गर्मी को सर्वत्र अनुभव किया जाने लगा। दक्षिण-पंथियों और कट्टर रूढ़िवादियों के हाथों ह्वाइट हाउस की बागडोर उग्र-आक्रामक नीतियों का संकेत था। रीगन ने सत्ता में आते ही अमरीका को पुनः कार्य पर लगाने शस्त्र उद्योग को बढ़ावा देने, मित्र राष्ट्रों का पुनः शस्त्रीकरण करने शस्त्र प्रतिस्पर्द्धा को तेज करने और सोवियत संघ के प्रति उग्र नीति अपनाने की घोषणा करके पहले से ही शुरू हुए नये शीत-युद्ध की अग्नि में घी की आहुति दे दी।

4.6.3 अन्तरिक्ष अनुसन्धान की सोवियत संघ-अमरीकी होड़

अन्तरिक्ष में हथियारों की होड़ का सिलसिला पिछले तीन दशक से जारी था। जिस दिन पहला स्पुतनिक छोड़ गया था उसी दिन इस होड़ की भी शुरूआत हो गयी थी। सोवियत संघ और अमरीका दोनों ने यह प्रचार किया कि उनके अन्तरिक्ष अनुसंधान मानव जाति के कल्याण के लिए है। वास्तव में दोनों की नियत साफ नहीं था। दोनों को यह आशंका हमेशा रही कि दूसरा अन्तरिक्ष अनुसंधान में कही बाजी न मार ले जाये, इसलिए दोनों एक-दूसरे पर कड़ी नजर रखने लगे। पहले साधारण उपग्रह फिर संचार उपग्रह, फिर अन्तरिक्ष में प्रयोगशाला तो दूसरी ओर मनुष्य को अन्तरिक्ष में लम्बे समय तक रखकर प्रयोग करने में समर्थ बनाने के प्रयास। एक ओर स्पेस शटल तो दूसरी ओर अन्तरिक्ष स्टेशन। एक ने आदमी को चन्द्रमा पर भेजकर वहाँ की मिट्टी और चट्टानें मंगाकर दुनिया को हतप्रभ कर दिया दूसरे ने यंत्र द्वारा चन्द्रमा से मिट्टी और चट्टाने लाकर दिखा दी। एक ने बृहस्पति और शनि की खोज के लिए यान भेजा तो दूसरे ने अन्तरिक्ष में कारखाने खोलने की तैयारी शुरू कर दी। कहा गया कि अन्तरिक्ष यान इस ब्रह्माण्ड की गुत्थी सुलझाने में मदद करेंगे तो दूसरे ने प्रचारित किया कि अन्तरिक्ष कारखानों में ऐसी उपयोगी चीजें तैयार की जायेगी जिन्हें धरती पर बनाना सम्भव नहीं।

अमरीका के सैन्य संवाद का 80 प्रतिशत उपग्रहों के माध्यम से ही होता है। 1988 तक वह 18 उपग्रहों का ऐसा समूह स्थापित करना चाहता था जो संसार के किसी भी हिस्से में विमानों, जहाजों और फौजियों की बिल्कुल ठीक स्थिति बता सके। इसके लिए उपग्रहों पर परमाणु घड़िया लगाने की बात कही जाने लगी। सोवियत संघ भी पीछे नहीं था। 18 जून 1982 को उसके कॉस्माँस 1379 उपग्रह-मारक उपग्रह ने अन्तरिक्ष में जाकर बारह दिन पूर्व छोड़े गये कॉस्माँस यान का रास्ता रोक लिया। पृथ्वी से 950 किलोमीटर ऊपर उपग्रह मारक अस्त्र की स्थापना की दिशा में यह पहला कदम था। उपग्रह-मारक उपग्रह के इस निदर्शन के कुछ ही घण्टों में सोवियत संघ ने अन्तरिक्ष में दो आई.सी.बी.एम. एक मध्यम दूरी का एस.एस. 20 प्रक्षेपास्त्र, एक पनडुब्बी प्रक्षेपित प्रक्षेपास्त्र और दो बैलस्टिक प्रक्षेपास्त्र-रॉकेट छोड़कर खौफनाक युद्ध का माहौल बना दिया। सोवियत संघ की इस अन्तरिक्षीय उपलब्धि के बाद अमरीका भला चुप कैसे बैठ सकता था उसने रफ्तार से अपनी उपग्रह-मारक प्रणाली तैयार कर डाली और 14 सितम्बर 1985 को अपना पहला उपग्रह-मारक परिक्षण कर डाला। यह ठीक है कि अन्तरिक्ष अनुसंधान का लाभ मनुष्य को भी मिला है। संचार उपग्रह के रूप में यह अनुसंधान वरदान है। लेकिन यह भी सच है कि सोवियत संघ और अमरीका जितने उपग्रह छोड़े उनमें से 75 प्रतिशत उपग्रह सैन्य उपयोग के लिए थे। इन तमाम उपग्रहों से दोनों देशों को एक-दूसरे की गतिविधियों का पता चलता था और जहाँ एक-दूसरे को आभास हुआ कि वह किस बात में पिछड़ रहा है, वह अपनी गति तेज कर देता।

4.6.4 अफगानिस्तान में सोवियत हस्तक्षेप

अफगानिस्तान में क्रान्ति का सफल होना तथा काबुल की सत्ता साम्यवादियों के हाथों में आना अमरीका के लिए एक बहुत बड़ा धक्का था। 27 दिसम्बर 1979 को सोवियत संघ ने जिस तत्परता से अफगानिस्तान में कार्यवाही की उससे न केवल अमरीका अपितु सम्पूर्ण विश्व चौंक गया। अफगानिस्तान में सोवियत हस्तक्षेप से अमरीका

हड़बड़ा उठा। उसने सोवियत हस्तक्षेप की न केवल निन्दा की अपितु सीनेट में साल्ट-2 पर बहस को स्थगित कर दिया, हॉट लाइन पर तात्कालीन राष्ट्रपति कार्टर ने सोवियत नेताओं से बातचीत में कड़े शब्दों का प्रयोग किया, सोवियत संघ को अनाज देने और तेल की खोज के लिए आधुनिक संयंत्र और तकनीकी जानकारी देने के फैसले को बदल दिया तथा 1980 में होने वाले मास्को ओलम्पिक खेलों का बहिष्कार कर दिया। अमरीका की ये कार्यवाहियाँ दूसरे शीत-युद्ध की शुरूआत थी।

4.6.5 दक्षिण-पूर्व एशिया में बढ़ता हुआ सोवियत प्रभाव

हिन्दचीन में सोवियत प्रभाव उत्तरोत्तर बढ़ने लगा। वियतनाम की सफलताओं से कम्बोडिया और लाओस के साम्यवादियों को बल मिला। हेंग सामरिन ने वियतनाम से समर्थन एवं सैनिक सहायता प्राप्त करके 7 जनवरी 1979 को पोल पोत के ख्मेर शासन का तख्ता पलट दिया। इससे न केवल चीन नाराज हुआ अपितु अमरीका भी हड़बड़ा उठा क्योंकि वियतनाम के माध्यम से सारे हिन्दचीन में सोवियत संघ के प्रभाव के फैलने की सम्भावनाएँ बढ़ गयीं। हिन्दचीन में सोवियत प्रभाव के विस्तार को रोनके के लिए चीन और अमरीका ने संयुक्त मोर्चा बना लिया। अमरीका से प्रेरणा पाकर वियतनाम को सबक सिखाने के उद्देश्य से चीन ने 17 फरवरी 1979 को वियतनाम पर आक्रमण कर दिया। इस आक्रमण ने वियतनाम को सोवियत संघ की गोद में धकेल दिया।

4.6.6 यूरोप में मध्यम मार प्रक्षेपास्त्रों का उलझा सवाल

सोवियत संघ ने यूरोप में एस.एस. 20 प्रक्षेपास्त्रों को लगाने का निर्णय लिया। इससे नाटो देशों को डर था कि सोवियत संघ द्वारा लगाये जा रहे प्रक्षेपास्त्रों के कारण उनकी स्थिति दयनीय हो जायेगी क्योंकि ब्रिटेन और फ्रांस के पास जो 162 प्रक्षेपास्त्र थे वे सोवियत संघ के 340 नये एस.एस. 20 तथा 260 पुराने एस.एस. 4 और 5 प्रक्षेपास्त्रों के मुकाबले बहुत हल्के थे। अतः दिसम्बर 1979 में फैसला किया गया कि अमरीका से नयी पीढ़ी के जानदार प्रक्षेपास्त्र मंगाकर पश्चिमी यूरोप के नाटो देशों में लगाये जायें। उनकी संख्या 572 हो, 108 तो हों पर्शिग-2 और 464 हों, क्रूज, 162 पहले से ही थे। सोवियत संघ के लिए यह काफी चिन्ताजनक बात हो गयी। एक ओर परमाणु आयुधों से लैस शक्तिशाली देशों के पास इन सर्वनाशकारी अस्त्रों का जखीरा बढ़ रहा था तो दूसरी ओर महाशक्तियों के बीच तनातनी की बिजलियाँ कौंध रही थी। नवम्बर 1983 में जब सोवियत संघ ने यूरोप में मध्यम मार परमाणु प्रक्षेपास्त्रों में कटौती को लेकर चल रही वार्ता का बहिष्कार किया तो महाशक्तियों का तनाव और भी बढ़ गया।

4.6.7 स्टारवार्स (अन्तरिक्ष युद्ध) परियोजना

स्टारवार्स यह नाम ही कुछ अजब रहस्यमय और कल्पना की उड़ान सा लगता है। 23 मार्च 1983 को राष्ट्रपति रीगन ने राष्ट्र को संबोधित करते हुए स्टारवार्स सम्बन्धी घोषणा की। स्टारवार्स यानी अरबों डालरों से निर्मित हो रही अमरीका की नयी प्रतिरक्षा परियोजना। अनुसंधान का उद्देश्य था हमला रोकने के लिए बैलिस्टिक प्रक्षेपास्त्रों से सुरक्षा की हाल में विकसित टेक्नोलॉजी के उपयोग के तरीके खोजना ताकि अमरीका अपनी और अपने मित्र-राष्ट्रों की सुरक्षा कर सके। स्टारवार्स अभियान के तहत लगभग दो हजार युद्धयान अन्तरिक्ष में तैरेंगे और आधुनिकतम आयुधों से घुसपैठिया प्रक्षेपास्त्रों को नष्ट करेंगे। नये अस्त्रों की खोज जारी थी - एक तरीका था न्यूकलीय और इलेक्ट्रॉन कणों से युक्त सशक्त प्लाज्मा किरणों का प्रयोग। प्लाज्मा किरणें शक्तिशाली से शक्तिशाली लेजर किरणों से भी कई सौ गुना प्रभावशाली होती है। प्लाज्मा किरणों के साथ-साथ शक्तिशाली एक्स किरणों पर भी काम हो रहा था। रीगन की नजरों में यह एक ऐसा रक्षा कवच था जो शत्रु को बेअसर साबित कर देगा।

4.7 अमेरिकी कूटनीति का प्रयोग

मॉस्को में आयोजित ओलम्पिक खेलों का कई देशों ने अमरीका की अगुवाई में बहिष्कार किया। खेल की राजनीति अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति संघर्ष से अब तक अभिन्न रूप से जुड़ चुकी थी। अब तक नस्लवाद उपनिवेशवाद के कारण ही खेलों की दुनिया में कड़वाहट देखने को मिलती थी। अब विचारधारा का टकराव भी सतह पर आ गया। इसके कई कारण थे। यह वर्ष अमरीकी चुनाव का था राष्ट्रपति कार्टर को इस आक्षेप का सामना करना पड़ रहा था कि वह कमजोर व्यक्ति है और उसका प्रशासन सोवियत संघ के सामने निरंतर समर्पण वाली मुद्रा में खड़ा नजर आता है। उनके लिए यह मजबूरी थी कि कोई ऐसा फैसला ले जिससे अपने आलोचकों को चुप करा सके। दूसरी ओर इसी वक्त पॉलैंड में कोयला खदानों और बंदरगाहों पोतों में काम कर रहे मजदूरों ने साम्यवादी पार्टी के खिलाफ विद्रोह का नारा बुलंद किया। साम्यवादी पार्टी के नेतृत्व को चुनौती देने वाले श्रमिक संगठनों की कल्पना साम्यवादियों ने कभी नहीं की थी। पॉलैंड तथा सोवियत संघ के कट्टरपंथी साम्यवादी नेताओं का सोचना था कि धर्म के कुटिल प्रयोग से अमेरीका पॉलैंड में साम्यवादी पकड़ को अस्थिर करने की कोशिश कर रहा है। अपने कार्यकाल के आरम्भ से ही राष्ट्रपति कार्टर ने अपनी पहचान मानवाधिकारों के प्रखर संरक्षक के रूप में बनाने की कोशिश की। इस मुद्दे पर वे अक्सर सोवियत संघ को अपना निशाना बनाये रखते थे। ब्रेजनेव के शासनकाल में एक बार फिर सोवियत गुप्तचर संस्था के.जी.बी. असरदार होने लगी थी। असहमति और असंतोष मुखर करने वाले सोवियत नागरिकों का दमन काफी बर्बरता से किया जाने लगा था। इससे सोवियत संघ की अन्तर्राष्ट्रीय छवि काफी मलिन हुई थी। अमरीका के लिए यह प्रचार करना सहज हुआ था कि सोवियत व्यवस्था मूलतः दमनकारी तानाशाही है और अपने नागरिकों के लिए भी शोषक-उत्पीड़क ही है। सोवियत नेता ब्रेजनेव ने इसी दौर में ब्रेजनेव सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इस स्थापना के अनुसार साम्यवादी खेमे के किसी भी सहयोगी सदस्य राष्ट्र को अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में अपना अलग पथ चुनने की स्वाधीनता नहीं थी। यदि किसी देश की सरकार ऐसा कोई कदम उठाती है तो उसे प्रतिक्रियावादी क्रान्ति विरोधी और साम्यवादी खेमे की सुरक्षा को जोखिम में डालने वाला ही माना जा सकता है। पश्चिमी विश्लेषकों ने इसे सीमित सम्प्रभुता के सिद्धान्त की स्थापना का एक दुर्भाग्यपूर्ण और खतरनाक प्रयत्न ही समझा।

4.8 पश्चिमी एशिया या मध्यपूर्व के बदलते हालात

1971 से ही मध्यपूर्व में यह बात नजर आने लगी थी कि तेल संसाधनों के मालिक अरब राष्ट्र भविष्य में बहुत देर तक पश्चिमी आधिपत्य स्वीकार करने वाले नहीं है। पहले पहल इस बात का इशारा सऊदी अरब के तेल मंत्री, शेख यमनी ने दिया और उनका अनुसरण लिबिया के क्रान्तिकारी नेता कर्नल गद्दाफी ने किया। तेल के एक और प्रमुख उत्पादक ईरान के शाह की तो यह पुरानी आदत थी कि वे तेल से अर्जित अपनी संपदा के प्रयोग से अमरीका को नीचा दिखा सके। कभी वे यह धमकी देते थे कि अमरीकी बैंकों में जमा अपनी पूँजी को कही और उठा ले जायेंगे तो कभी पैनेम जैसे एयरलाइन को खरीद अमेरीकियों के राष्ट्रीय अहं को ठेस पहुँचाते थे। यह हाल तब था जब उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर अमेरीका का साथी-समर्थक समझा जाता था। ईराक पर बाथ पार्टी के नेता सद्दाम का कब्जा था और उनका रूझान आमतौर पर सोवियत संघ का पक्षधर ही रहा। कुल मिलाकर अमेरीका और पश्चिमी देशों को यह आशंका होने लगी थी कि मध्यपूर्व के तेल संसाधन निकट भविष्य में उनके प्रभुत्व से बाहर जा सकते है। तत्पश्चात तेल की कीमतें अमेरीका और पश्चिम जगत को कमजोर करने के लिए ओपेक राष्ट्रों द्वारा कमरतोड़ ढंग से बढ़ाई जा सकती है। 1973 में इजराईलियों और अरबों के बीच योम कीपुर युद्ध लड़ा गया जिसने ऊर्जा तेल संकट को और भी विकट बना दिया। सोवियत संघ को चुनौती देने के लिए यदि किसी और

प्रोत्साहन की जरूरत अमेरीका को थी तो उसे यह युद्ध ने पुरा कर दिया। वियतनाम से अमेरीकी फौज की वापसी ने भी महाशक्ति के रूप में उसका कद बौना ही बना डाला था। 1971 में जब बांग्लादेश पाकिस्तान से टूटकर अलग हुआ तो उस वक्त भी अपनी संधि मित्र की एकता-अखंडता की रक्षा करने में अमरीका असमर्थ ही रहा। अपनी राष्ट्रीय हितों की हिफाजत के लिए भारत ने सोवियत संघ के साथ शांति और मैत्री की संधि पर हस्ताक्षर कर भारत-सोवियत रिश्तों को एक नया सामरिक आयाम दिया। जब अमरीका ने भारत को धमकाने के लिए बंगाल की खाड़ी में अपना युद्ध पोत इंटरप्राइज भेजा और उसका कोई असर नहीं हुआ तो परिणामतः यह बात खुल गई कि इस महाशक्ति की क्षमता बदले परिप्रेक्ष्य में कितनी सीमित है।

1979 में एकाएक ईरान में मोहम्मद रजाशाह पहलवी का तख्ता पलट दिया गया। उनकी जगह अब तक फ्रांस में शरणार्थी की तरह रह रहे इमाम खोमैनी ने ले लिया। नई सरकार इस्लामी कानून, शरियत के अनुसार चलाई जाने लगी। और तेलकूपों समेत सभी राष्ट्रीय संसाधन का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। आरम्भ से ही अमरीका और नए ईरान के हितों का टकराव खुलकर सामने आ गया। बुनियादी सवाल तेल से जुड़ा हुआ था पर शाह के नाम पर जमा अकूल धन राशि को इमाम खोमैनी को सौंपना भी विवाद का कारण बना। जब ईरान विरोधी आचरण का अभियोग लगा अमरीकी दूतावास की नाकेबंदी कर दी गई और दर्जनों अमरीकी राजनयिक बंधक बना दिए गए तब इस अन्तर्राष्ट्रीय संकट ने और भी विस्फोटक रूप ले लिया। अमरीका अपने बंधकों को छुड़ाने के लिए वायु सेना का असफल प्रयोग किया तो अमरीका की अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा को जबर्दस्त धक्का लगा। दुर्भाग्य से इस अनुभव के बाद भी अमरीका ने ईरान में सत्ता परिवर्तन को उस देश का आंतरिक मामला स्वीकार नहीं किया। खोमैनी को सबक सिखाने के लिए उसके मुकाबले ईराक को खड़ा करने की रणनीति तैयार की गई। ईरान के साथ संघर्ष के लिए बड़े पैमाने पर उन्हें हथियार देना शुरू कर दिया गया। ईरान और ईराक दोनों ही इस क्षेत्र में अपना एकाधिकारी प्रभुत्व स्थापित करने के लिए समान रूप से उत्सुक रहे है और उनकी प्रतिद्वंद्विता पारम्परिक रही है। अमरीका के प्रोत्साहन से ही खाड़ी युद्ध का विस्फोट हुआ। लगभग एक दशक तक चले इस सैनिक संघर्ष में दोनों पक्षों ने लाखों जाने गंवाई और बहुत बड़ी आर्थिक क्षति उठाई। कुल मिलाकर नए शीत-युद्ध में इस संवेदनशील क्षेत्रों को जोखिम ग्रस्त रखने से तनाव शैथिल्य का ही क्षय हुआ।

4.9 नये शीत-युद्ध की प्रकृति

नये शीत-युद्ध पहले शीत-युद्ध से काफी भिन्न था। पुराना शीत-युद्ध साम्यवाद विरोधी था उसका मूल उद्देश्य साम्यवाद का अवरोध था। इसके विपरीत नया शीत-युद्ध, सोवियत संघ विरोधी था, इसका उद्देश्य सोवियत संघ की बढ़ती हुई शक्ति और प्रभाव का प्रतिरोध करना था। पुराना शीत-युद्ध विचारधारा के घेरे में लड़ा गया था। इसका दायरा पूँजीवाद बनाम साम्यवाद अथवा लोकतंत्र बनाम सर्वहारातन्त्र का अधिनायकवाद था जबकि नया शीत-युद्ध विचारधारा के घेरे में नहीं लड़ा जा रहा था। इस युद्ध में साम्यवादी चीन पूँजीवादी अमरीका के साथ था। नए शीत-युद्ध का मुख्य आधार उपयोगिता और न्यस्त स्वार्थ थे न कि विचारधारा सोवियत शक्ति और प्रभाव के विस्तार के प्रति अमरीका इतना ईर्ष्यालु और सतर्क था कि उसे सीमित करने के लिए साम्यवादी चीन से मित्रता करने में कोई हिचकिचाहट महसूस नहीं होती। पुराने शीत-युद्ध के मुख्य पात्र अमरीका और सोवियत संघ थे जबकि नये शीत-युद्ध के मुख्य पात्र थे अमरीका, ब्रिटेन, चीन, फ्रांस और सोवियत संघ। एक तरफ अमरीका, चीन, ब्रिटेन, फ्रांस थे और दूसरी तरफ अकेला सोवियत संघ था। पुराने शीत-युद्ध में महाशक्तियों की प्रतिद्वंद्विता का मुख्य क्षेत्र यूरोप था। यद्यपि सीटो, सेण्टो जैसे संगठन बनाये गये थे परन्तु उस काल में नाटो संघठन ही लावा उगलता रहा। नये शीत-युद्ध काल में लावा उगलने वाले मुख्य क्षेत्र थे - फारस की खाड़ी, पश्चिमी एशिया, दक्षिण-पूर्वी एशिया और हिन्द महासागर। पुराने शीत-युद्ध में शामिल होने के लिए यूरोपीय देश मजबूर थे। चूँकि द्वितीय

विश्व युद्ध के बाद अपनी सुरक्षा और आर्थिक पुनर्निर्माण के लिए वे अमरीका पर निर्भर थे अतः उनके लिए अमरीकी विदेश नीति का अनुकरण करना अपरिहार्य था। अब स्थिति काफी बदल गयी थी। फ्रांस और पश्चिमी जर्मनी अमरीकी विदेश नीति के पिछलग्गू बनकर नहीं रह सकते थे। न्यूट्रॉन बम का सफलतापूर्वक विस्फोट कर लेने से फ्रांस अब अपनी सुरक्षा के लिए अमरीका पर निर्भर नहीं था। पश्चिमी जर्मनी आर्थिक दृष्टि से न केवल आत्मनिर्भर था अपितु औद्योगिक और इलेक्ट्रॉनिक क्षेत्र में अमरीका को चुनौती देने की स्थिति में था। यही कारण था कि पश्चिमी जर्मनी और सोवियत संघ में व्यापार द्रुत गति से बढ़ रहा था।

प्रथम शीत-युद्ध काल में निर्गुट आन्दोलन का अभ्युदय हुआ और निर्गुट आन्दोलन का उद्देश्य महाशक्तियों के मध्य सेतुबन्ध का कार्य करना था। दूसरे शीत-युद्ध काल में निर्गुट राष्ट्र स्वयं गुटबन्दी के शिकार होते जा रहे थे और निर्गुट मंच पर कुछ देश अमरीका की तरफदारी करने लगे तो कुछ देश सोवियत संघ की तरफदारी। नये शीत-युद्ध महाविनाशकारी शस्त्रों के जमाव एवम भण्डारण से भय और मानसिक तनाव उत्पन्न करके लड़ा जा रहा था। महाशक्ति प्रत्यक्ष टकराव की स्थिति के बजाए एजेण्ट के माध्यम से युद्धरत थी। पहला शीत-युद्ध स्टालिन की उग्र आक्रामक नीतियों का परिणाम था। स्टालिन सोवियत शक्ति में वृद्धि करना चाहता था ताकि वे अमरीका के सामने एक महाशक्ति बन सके। नया शीत-युद्ध अमरीकी मजबूरियों का परिणाम था अब अमरीका औद्योगिक समान और इलेक्ट्रॉनिक्स में फ्रांस, पश्चिमी जर्मनी और जापान के साथ प्रतिद्वंद्विता नहीं कर सकता था अतः विश्व में शस्त्रों का निर्यात करना चाहता था क्योकि यही एक ऐसा उद्योग है जहाँ उसे पश्चिमी देशों की प्रतिद्वंद्विता सहन नहीं करनी पड़ती। शस्त्र उद्योग का विकास अमरीका की आर्थिक स्थिति में सुधार हेतु आवश्यक माना जा रहा था। इसलिए अमरीका नाटो के सैनिक बजट में वृद्धि चाहता था और मित्र राष्ट्रों का शस्त्रीकरण चाहता था। इसलिए उसने साल्ट वार्ताओं को स्थगित कर दिया और दितान्त को तिलांजलि देने की तैयारी कर ली।

4.10 विश्व राजनीति पर प्रभाव

नये शीत-युद्ध काल में शस्त्रों की होड़ शुरू हो गयी। जहाँ पहले शीत-युद्ध में 1962 के क्यूबा संकट के बाद दितान्त की शुरूआत हुई। दितान्त सम्बन्धों के इस युग में सीमित परमाणु परीक्षण प्रतिबन्ध संधि 1963, परमाणु अप्रसार संधि 1968, मॉस्को-बोन समझौता 1970, बर्लिन समझौता 1971, यूरोपीय सुरक्षा एवं सहयोग सम्मेलन 1973-75, साल्ट वार्ताएँ 1972 आदि प्रमुख उपलब्धि कही जा सकती है वही नये शीत-युद्ध काल में शस्त्रीकरण का एक ऐसा दौड़ शुरू हुआ जिससे इन सभी प्रयासों को काफी धक्का लगा। रोनाल्ड रीगन के ह्वाइट हाउस में प्रवेश लेते ही शस्त्र उद्योग को बढ़ावा दिया गया, शस्त्रों की होड़ तेज की गयी मित्र राष्ट्रों को विशेषकर पाकिस्तान को एफ-16 जैसे वायुयानों एवं खतरनाक अस्त्रों से लैस किया गया। नाटो के सुरक्षा बजटों में वृद्धि की गयी। रीगन ने स्टारवार्स नामक एक योजना की घोषणा की जिससे अब तक मान्यता प्राप्त एटमी रणनीति और सामरिक राजनय की सभी स्थापनाओं को उलट-पुलट कर दिया। वास्तव में स्टारवार्स परियोजना का पूरा नाम था स्ट्रेटेजिक डिफेंस इनीसिएटिव जिसके अन्तर्गत अमेरीकी वैज्ञानिकों का आह्वान एक ऐसे अभेदय रक्षा कवच के आविष्कार के लिए किया गया था जिसे किसी भी शत्रु का कोई भी प्रक्षेपास्त्र न भेद सके। ऐसा कहा जाता है कि कैनेडी-मेक्नामारा टीम ने 1960 के दशक में शस्त्रों के निर्माण का जो कार्यक्रम बनाया था राष्ट्रपति कार्टर ने उससे भी विशाल स्तर पर शस्त्रीकरण की पहल की। सन् 1986 के उत्तरार्द्ध में अमरीकी स्टारवार्स कार्यक्रम के विरुद्ध सोवियत संघ ने भी जवाबी कार्यवाही आरम्भ कर दी। सोवियत वैज्ञानिकों की एक विशेष समिति ने कहा कि अमरीकी कार्यक्रम के विरुद्ध प्रतिरोधी और अप्रतिरोधी दोनों तरह के उपाय किये जायेंगे। प्रतिरोधी कार्यक्रम के अन्तर्गत छोटे प्रक्षेपास्त्रों, अतिरिक्त विस्फोटकों और उच्च क्षमता वाले लेसर शस्त्रास्त्रों का विकास किया जायेगा। 26 फरवरी 1987 को लगभग डेढ़ वर्ष बाद सोवियत संघ ने अपने ऊपर लगाये गये प्रतिबन्ध को समाप्त करते हुए पहला परमाणु परीक्षण

किया। उसने अपना अन्तिम परमाणु परीक्षण 25 जुलाई 1985 को किया था। उसने अमरीका को चेतावनी दी कि यदि 1987 में अमरीका ने परमाणु परीक्षण किया तो वह भी इसे पुनः शुरू कर देगा। सोवियत संघ ने अमरीका के प्रभाव को नियंत्रित करने के लिए पूर्वी यूरोपीय देशों में नई किस्म की 20 मध्य दूरी की मारक मिसाइलों को लगाया। अफ्रीका में अपने सैनिक अड्डों को सुदृढ़ किया। शीत-युद्ध के इस चरण में दोनों महाशक्तियों में शस्त्रीकरण की प्रतिस्पर्धा शुरू हो गयी जिससे विश्वशान्ति को एक बार फिर से खतरा होने लगा। नये शीत-युद्ध की मानसिकता ने परमाणु ही नहीं पारम्परिक शास्त्रस्त्रों के मामलों में भी निःशस्त्रीकरण को नुकसान पहुँचाया। स्टारवार्स परियोजना को इस युग की शस्त्रास्त्रों की होड़ का अब तक का सबसे खतरनाक उदाहरण माना जाता है।

प्रश्न- नव-शीत-युद्ध के कारणों का वर्णन करे?

उत्तर- नव-शीत-युद्ध के शुरूआत के निम्नांकित कारण थे। दितान्त के युग में सोवियत संघ परमाणु और नौ-सैनिक शक्ति में अमरीका की बराबरी करने का प्रयत्न कर रहा था। जब अमरीका वियतनाम युद्ध में उलझा हुआ था तब सोवियत संघ ने अपनी शक्ति में वृद्धि की। दूसरे शीत-युद्ध के शुरूआत का एक कारण राष्ट्रपति कार्टर और रोनाल्ड रीगन की उग्र नीति रही। अन्तरिक्ष अनुसंधान में सोवियत संघ और अमरीका में होड़ शुरू हो गयी। दोनों देशों ने अपने जितने उपग्रह छोड़े उनमें से 75 प्रतिशत उपग्रह सैनिक उपयोग के लिए थे। उनका इस्तेमाल एक-दूसरे के सैनिक गतिविधियों पर नजर रखने के लिए किया जाता था। नव-शीत-युद्ध का एक महत्वपूर्ण कारण सोवियत संघ का अफगानिस्तान में हस्तक्षेप को माना जाता है। इस हस्तक्षेप से अमरीका हड़बड़ा उठा। उसे लगने लगा कि सोवियत संघ साम्यवाद का प्रसार करना चाहता है। दक्षिण-पूर्वी एशिया में भी सोवियत प्रभाव बढ़ रहा था। यूरोप में सोवियत संघ द्वारा मध्य मार प्रक्षेपास्त्रों को लगाने का निर्णय, अमरीका द्वारा स्टारवार्स परियोजना की घोषणा ये सभी नव-शीत-युद्ध के प्रमुख कारण थे। इन्हीं सब कारणों से विश्व एक बार फिर तनाव स्थिल की दौर से निकल कर नव-शीत-युद्ध की ओर अग्रसर हो गया।

4.11 सारांश

समग्र रूप से इस अध्याय में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में नव-शीत-युद्ध और शस्त्रीकरण की होड़ की अवधारणा का विस्तार से वर्णन किया गया है। यह एक राजनयिक युद्ध था। यह रणक्षेत्र में नहीं लोगों के मस्तिष्कों में लड़ा गया। शीत-युद्ध में सशस्त्र सेनाओं ने भाग नहीं लिया केवल राजनयिक कार्यों के द्वारा पूर्व और पश्चिम के मध्य तनाव को उच्च स्तर पर बनाए रखा गया। इसमें सबसे पहले शीत-युद्ध की उत्पत्ति इसके बाद नव-शीत-युद्ध की उत्पत्ति, नव-शीत-युद्ध के कारण, अमरीकी कूटनीति का प्रयोग, पश्चिमी एशिया के बदलते हालात नये शीत-युद्ध की प्रकृति, शस्त्रीकरण की होड़ का वर्णन किया गया है। नये व दूसरे शीत-युद्ध काल में शान्तिपूर्ण प्रतिद्वंद्विता का स्थान आक्रामक राजनीतिक-सैनिक प्रतिद्वंद्विता ने ले लिया, युद्ध मनोदशा और युद्ध उन्माद का युग प्रारम्भ हुआ।

4.12 शब्दावली

दितान्त -दितान्त से अभिप्राय है सोवियत अमेरीकी रिश्तों में तनाव-शैथिल्य और उनमें दिन-प्रतिदिन बढ़ती मित्रता, सहयोग और शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व की भावना का विकास।

स्टारवार्स-स्टारवार्स अमरीका की नयी प्रतिरक्षा परियोजना।

निर्गुट-यह उन देशों को कहा जाता है जो दोनों महाशक्तियों से समान दूरी बनाये रखा और किसी भी शक्ति गुट में शामिल नहीं हुआ।

मित्र-राष्ट्र-द्वितीय विश्व युद्ध में जर्मनी, ईटली और जापान के विरुद्ध जिन देशों का संगठन बना उन्हे मित्र-राष्ट्र कहा गया।

धुरी-राष्ट्र-द्वितीय विश्व-युद्ध में जर्मनी, इटली और जापान को संयुक्त रूप से धुरी-राष्ट्र कहा गया।
नाटो-अमरीका के नेतृत्व में बना सैन्य संगठन।
हॉटलाईन समझौता- महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय संकट के समय दोनों महाशक्तियों में सीधा सम्पर्क स्थापित करके संकट का निर्वारण करना।

4.13 संदर्भ ग्रंथ

1.लूकास इडवर्ड (2009), द न्यू कोल्ड वार: हॉव द क्रेमलीन मयनेस बोध एशिया एण्ड द बेस्ट, कीन्डले एडिशन।
2.पंत पुष्पेश (2008), 21वीं शताब्दी में अंतर्राष्ट्रीय संबंध, टाटा मेकग्रोंव हील पब्लिकेशन कम्पनी लिमिटेड।
3.खन्ना बी.एन. (2003), अन्तर्राष्ट्रीय संबंध, विकास पब्लिशिंग हाऊस प्रा.लि.

4.14 सहायक उपयोगी पाठ्य-सामग्री

1.हेवूड एन्ड्रयू (2011), ग्लोबल पॉलिटिक्स, पेलग्रेव फाउण्डेशन
2.फाड़िया बी.एल. (2008), अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा

4.15 निबंधात्मक प्रश्न

1. नव-शीत-युद्ध के प्रकृति एवं कारणों का वर्णन करते हुए शस्त्रीकरण की होड़ का वर्णन करे?

ईकाई-05 : गुटनिरपेक्ष आन्दोलन एवम् उसकी प्रासंगिकता

ईकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 गुटनिरपेक्षता की अवधारणा
5.4 भारतीय गुट निरेपक्षता की अवधारणा
5.5 गुटनिरपेक्ष की नीति अपनाने का कारण
5.6 भारतीय गुटनिरपेक्ष नीति के विकास के विभिन्न चरण
5.7 अभी तक संपन्न गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के सम्मलेन
5.8 गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की प्रासंगिकता
5.9 भारत की भूमिका
5.10 गुटनिरपेक्ष नीति
5.11 सारांश
5.12 शब्दावली
5.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.14 संदर्भ ग्रन्थ
5.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
5.16 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

गुट निरपेक्ष आन्दोलन एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलन है तथा यह भारतीय विदेश निति की एक विशिष्ट विशेषता रही है। भारतीय विदेशनीति के एक आधारभूत विशेषता के रूप में गुट निरपेक्षता का निहितार्थ विभिन्न शक्ति गुटो से समान एवं सैद्धान्तिक दुरी बनाये रखना, सभी गुटो से समान मित्रवत सम्बन्ध बनाये रखना, किसी भी सैन्य गठजोड़ में शामिल न होना तथा एक स्वतंत्र विदेश नीति के मार्ग पर चलना, से है। ऐसा माना जाता है कि गुटनिरपेक्षता की नति मुख्यतः शीतयुद्ध का राजनीति परिणाम थी जो द्वितीय विश्वयुद्ध के समाप्त होने के तत्काल बाद शुरू हो गया था। इस नीति के विकास में भारत का योगदान प्रमुख था तथा यह अब भी इस आंदोलन के अग्रणी सदस्यों मे से एक हैं। जिस समय गुटनिरपेक्षता की नीति पर बल दिया जा रहा था, उस समय पूरा विश्व शीत युद्ध के दौर से गुजर रहा था। पूरा विश्व दो ध्रुवो-सयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत यूनियन में बँटा हुआ था। साम्यवाद के बढ़ते प्रसार को रोकने के लिए जहां लगभग सम्पूर्ण दक्षिण पूर्व एशिया तथा पश्चिमी युरोप अमेरिका के नेतृत्व वाले गठबंधन से जुड़ गया था, वही दूसरे तरफ पूर्वी युरोप तथा चीन, सोवियत यूनियन के साथ जुड़ गये थे। उसी समय भारत समेत अनेक तीसरी दुनियाँ के देश, उनके यहाँ राष्ट्र निर्माण और विकास का प्रतिरूप किस प्रकार हो कि समस्या से जुझ रहे थे। इस परिस्थिति में किसी एक गुट के साथ गठबन्धन का अर्थ, दूसरे गुट से मिलने वाली सहायता से वंचित होना था। अतः इन नवोदित राष्टों ने दोनों गुटों से समान दूरी बनाकर, दोनों गुटो से सहायता प्राप्त कर अपने राष्ट्रीय विकास की प्रक्रिया को बढ़ाने का प्रयास किया। स्वाभाविक रूप से इस सन्दर्भ में गुटनिरेपेक्ष की नीति का अनुसरण करना सर्वोतम मार्ग था।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अन्तर्गत हम मुख्यतः गुटनिरपेक्षता की अवधारणा की व्याख्या, इसका अर्थ तथा उन कारणों की विवेचना करेंगे जिनका गुट निरपेक्ष आन्दोलन के उद्भव मे मुख्य भूमिका थी। वर्तमान भूमण्डलीकरण के दौर में, विदेश नीति के आधार के रूप में गुटनिरपेक्षता की नीति कहाँ तक प्रासंगिक है, यह अत्यन्त ही महत्वपूर्ण प्रश्न है। इस इकाई को पढ़ने एवं समझने के पश्चात् हम:-

- गुटनिरपेक्षता की विशेषताएँ अवधारणाओं से परिचीत हो सकेंगे ।
- भारतीय विदेश नीति के आधार के रूप में गुटनिरपेक्षता का अर्थ, विषेषताएँ और महत्व समझ सकेंगे।
- गुटनिरपेक्ष आन्दोलन का विभिन्न कालो के दौरान विकास और कार्यान्वयन को जान सकेंगे।
- उत्तर शीत युद्ध काल में गुटनिरपेक्षता की नीति कहाँ तक प्रासगिक है, इसका विश्लेषण कर सकेगे।

5.3 गुटनिरपेक्षता की अवधारणा

जैसा कि हमने प्रस्तावना में देखा कि गुटनिरपेक्षता का अपना एक विशिष्ट अर्थ है। अनेको पश्चिमी विद्वानो ने गुट निरपेक्ष के शाबदिक अर्थ को संज्ञान में लेते हुए इसे नाकारात्मक अवधारणा के रूप में व्याख्यायित किया है। उन्होने गुटनिरपेक्षता का तात्पर्य, तटस्थता या तटस्थतावाद के रूप में लिया है। अतः गुटनिरपेक्षता के विशेषताओं और उद्देश्यों का विवेचन करने से पूर्व, इसकी, इससे मिलती जुलती कुछ शब्दालियों से तुलना करना अत्यन्त आवश्यक है। सामान्यतया गुटनिरपेक्षता को तटस्थता,तटस्थीकरण, अलगाववाद एकलवाद, गैर प्रतिबद्धता असम्बद्धता जैसे शब्दों से तुलना की जाती है। तटस्थता शब्द का तात्पर्य युद्ध में सहभागी न होने से है। यह एक कानुनी अवधारणा है जो कि अन्तर्राष्ट्रीय कानून से सम्बन्धीत है तथा केवल युद्ध के सन्दर्भ में प्रयुक्त होता है। यह एक ऐसी अवस्था है जो कि केवल युद्ध की स्थिति में अपनाया जा सकता है। अतः तटस्थता पद केवल प्रत्यक्ष संघर्ष के स्थिति में प्रासंगिक है। एक तटस्थ देश वह देश होता है जो कि तटस्थता के नीति का पालन करता है। तटस्थीकरण किसी देश विशेष के स्थायी तटस्थ अवस्था को प्रदर्शित करता है, जो कि किसी भी अवस्था में तटस्था की नीति को छोड़ नहीं सकता। उदाहरणस्वरूप स्वीटजरलैण्ड ऐसा देश है जो कि स्थायी रूप से तटस्थ है। अलगाववाद से तात्पर्य, दुसरे देशों के समस्याओं से पूर्ण रूप से अलग होने की अवस्था से है। प्रथम विश्व युद्ध के पूर्व तक अमेरिका पूर्ण अलगाववाद की नीति के पालन के लिए जाना जाता था। गैर प्रतिबद्धता से तात्पर्य त्रीकोणीय या बहुपक्षीय सम्बन्धों में दुसरे शक्तियों से दुरी बनाये रखना है। एकलवाद से तात्पर्य सुनियोजित जोखिम उठाकर अपने ही नीतियों पर सदैव चलना, जैसे अपने थर्मोन्युक्लीयर हथियारां को नष्ट करना। असम्बद्धता से तात्पर्य विभिन्न महाशक्तियों के बीच चल रहे विचारधारात्मक सघंर्ष से दुरी बनाए रखना, लेकिन कुछ विशेष परिस्थिति में जबकि दूरी बनाये रखना असम्भव हो तो, कुछ हद तक एक विशेष गुट की तरफ झुकने से है।

गुटनिरपेक्ष का तात्पर्य, महाशक्तियों के साथ किसी भी तरह के सैन्य गुट में गैर-सहभागिता से है। भारतीय गुटनिरपेक्षता के नीति के निर्माण कर्त्ता, पंडीत जवाहरलाल नेहरू ने भी गुट निरपेक्षता को राष्ट्रो के द्वारा सैन्य शक्ति से दुरी बनाये रखने के रूप में परिभाषित किया है। इसका तात्पर्य यह है कि, जहाँ तक सभव चीजो को सैन्य दृष्टि से न देखना, बल्कि देशो को स्वतंत्र रूप से अन्य देशों के साथ स्वतंत्र मित्रतापूर्ण सम्बन्ध बनाये रखने से है।

नेहरू के अनुसार गुटनिरपेक्षता एक विस्तृत अवधारणा है। तटस्थ देशों के विपरित, गुटनिरपेक्ष देश प्रत्येक घटना को उसके गुणो के आधार पर परखेगा न कि केवल दुसरे देशों के दृष्टिकोण के अनुसार। इस वधरणा का सिधा सम्बन्ध स्वतंत्रता से है। तटस्थता के विपरित गुटनिरपेक्षता का संबध शांति एवं युद्ध दोनों की अवस्थाओं से होता है। गुटनिरपेक्षता की नीति प्रत्येक देशों को विभिन्न परिस्थितियों में अपने-अपने निर्णय के अनुसार अपने-अपने र्राष्ट्रीय हितों में अभिवृद्धी करने के नीति पर आधारित है। लेकिन गुटनिरपेक्षता की नीति अन्तराष्ट्रीय घटनाओं के प्रति उदासिनता नहीं है। गुटनिरपेक्षता के अवधारणा को स्पष्ट करने लिए इसे दो रूपो में दिखना आवश्यक है- साकारात्मक और नाकारात्मक। नाकारात्मक रूप में यह किसी भी प्रकार के सैन्य गठजोड़ को निषेध करता है। यह गुटनिरपेक्षता का सबसे निम्नतम शर्त माना जा सकता है। अपने-अपने विदेश नीति का संरक्षण सवंर्द्धन गुटनिरपेक्षता का महत्वपूर्ण सकारात्मक स्वरूप है। यह पांरपरिक रूप से विदेश नीति का संरक्षण और संवर्द्धन गुटनिरपेक्ष का सबसे माना जा सकता है।अप ने विदेश नीति का संरक्षण और संवर्द्धन गुटनिरपेक्षता का सबसे महत्वपूर्ण सकारात्मक स्वरूप है। यह पांरम्परिक रूप से विदेश नीति का महत्वपूर्ण सिद्धान्त भी माना जाता है। साकारात्मक रूप में यह विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर खुल कर उसके गुणों-अवगुणों के आधार पर निर्णय लेना भी है।

यदि देखा जाय तो गुटनिरपेक्ष के नीति की शुरूआत एक साकारात्मक अन्र्राष्ट्रीय घटना के द्वारा हुई थी। इस आन्दोलन का बीज 1955 में इण्डोनशिया के वांडुंग में हुए एफ्रो-एशियाई देशो के सम्मलेन में पड़ गई थी। इस सम्मेलन में एशिया और अफ्रीका के नवोदित स्वतंत्र देशों ने पूर्व-पशिचमी वैचारिक संघर्ष मे शामिल न होने की स्वतंत्र इच्छा की घोषणा की थी। एक राजनीतिक आन्दोलन के रूप में गुटनिरपेक्षता के विकास के लिए बांडुग सम्मेलन मील का पत्थर साबित हुआ।

आगे चलकर 1961 में युगोस्लाविया के बेलग्रेद में हुए प्रथम सम्मलेन में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की औपचारिक शुरूआत हुई। इस सम्मेलन में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के लिए कुछ प्रतिबद्धताओं की घोषणा हई थी, जिसके माध्यम से गुटनिरपेक्ष आन्दोलन का अर्थ बहुत हद तक स्पष्ट किया जा सकता है-

I.शाति और निशस्त्रीकरण, मुख्य रूप से महाशक्तियों के बीच तनाव को कम करना।

II.स्वतत्रंता, सारे औरपनिवेशिक लोगों को आत्मनिर्णय का अधिकार तथा सभी प्रजातियो को समानता का अधिकार।

III.आर्थिक समानता की माँग, मुख्य रूप से अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की पुर्नसंरचना की मागँ मुख्य था, जिसमें गरीब और सम्पन्न राष्ट्रों की बीच असमानता न हो।

IV.सांस्कृतिक समानता की माँग। पशिचमी सांस्कृतिक वर्चस्व का विरोध।

VI.सार्वभौमिकतावाद और बहुदेशवाद की मागँ, जिसमें, सयुक्त राष्ट्र संघ व्यवस्था में विश्वास पर जोर दिया जाए।

स्पष्ट है कि ये सारे के सारे प्रतिबद्धताएँ आज के सन्दर्भ में भी प्रासगिक है। शीत युद्ध के समाप्त होने से विकासशील और गैर-विकसीत देशो की समस्याए अभी खत्म नहीं हुई है।

5.4 भारतीय गुट निरेपक्षता की अवधारणा

गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के गठन में भारत के जवाहर लाल नेहरू, इण्डोनेशिया के सुकार्णे, इजिप्ट के कर्नल नासिर और घाना के क्वामे एनक्रुमा का योगदान महत्वपूर्ण है। परन्तु जवाहर लाल नेहरू के नेतृत्व में भारत ही वह पहला देश था जिसने गुटनिरपेक्षता की नीति को सर्वप्रथम अपनाया। जिसका सीधा तात्पर्य अपनी विदेश नीति को स्वतत्रं बनाये रखना, किसी भी शक्ति गुट से संलग्न न होना, अपने विकल्पो को खुला रखना, पूर्वधारणा आधारित निर्णयो को न लेना और सभी मुद्दो को उसके गुण-दोषों के आधार पर परखना था। भारतीय गुटनिरपेक्षता का तात्पर्य अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दो से अलगाव नही था। जैसा कि नेहरू जी ने 1948 में अमेरिकी काँग्रेस में घोषणा के द्वारा स्पष्ट किया था कि जहाँ पर भी स्वतंत्रता को कुचला जायेगा या न्याय को खतरा पहुंचाया जायेगा, या फिर आक्रमण होता है, हम न तटस्थ रह सकते है, न ही रहेंगे.....। हमारी नीति तटस्थतावाद नहीं है बल्कि हमारा मुख्य उद्देश्य शान्ति का संरक्षण है। भारतीय गुटनिरपेक्षता की मुख्य विशेषताओं को निम्न उपशीर्षकों के माध्यम से देखा जा सकता है।

I.सैन्य गठजोड़ का विरोध - गुट निरपेक्षता का एक मुख्य आवश्यक शर्त सैन्य गठजोड़ का विरोध करना था। सैन्य गठजोड़ के कारण पाकिस्तान शुरू-शुरू में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन में शामिल नही हो सका था, क्योकि वह पशिचमी सैन्य सगठनों-दक्षिण पूर्व अटलांटिक एशियाई सन्धि-संगठन (सीटो) तथा मध्य पूर्व सन्धि संगठन (सेंटो) का सदस्य था। बाद में 1979 में इन सैन्य संगठनों की सदस्यता छोड़ने के बाद वह गुटनिरपेक्ष आन्दोलन का सदस्य बन सका।

II.राष्ट्रीय हित का सवर्द्धन - गुटनिरपेक्ष का तात्पर्य अपने विदेश नीति के स्वतंत्र रखने से भी था क्योंकि इसी के माध्यम से कोई भी देश विभिन्न विकल्पों में से सर्वोतम विकल्प चुन सकता था। विभिन्न मुद्दो पर उसके गुणो-दोषों के आधार निर्णय दे सकता था।

III.शीत युद्ध का विरोध - गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के जन्म के पीछै शीत युद्ध ही मुख्य कारण था जो कि अमेरिका और सोवियत संघ के आक्रामक गुट निर्माण के प्रक्रिया के रूप में पहचाना जाता था। इस शीत युद्ध के वातावरण ने गुटनिरपेक्षता के नीति के उद्भव के लिए एक सशक्त आधर प्रस्तुत किया, क्योंकि इसी नीति के माध्यम से आसानी से विश्वशान्ति के लक्ष्य को पूरा किया जा सकता था। विशेषक कर यह एशिया और अफ्रिका के नवोदित स्वतंत्र देशों के लिए ज्यादा उपयोगी था क्योंकि इसके माध्यम से वे संघर्ष से दुर रहकर, विकास के मार्ग को अपना सकते थे।

IV.शक्ति के राजनीति का विरोध - गुटनिरपेक्षता शक्ति राजनिति के स्थान पर प्रभाव राजनीति का विकल्प प्रस्तुत करता है जो कि शांति, न्याय और विकास जैसे मुद्दो को अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का मुख्य लक्ष्य मानता है।

V.अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति की स्थापना - शीत युद्ध ने अनावश्यक रूप से विश्व में आंतक और अशांति का वातावरण उत्पन्न कर दिया था। गुटनिरपेक्षता की नीति का मुख्य दर्शन यह है कि शक्ति के माध्यम से किसी भी समस्या का हल नही प्रस्तुत किया जा सकता बल्कि इससे समस्या और गंभीर हो जाती है। जबकि अन्तराष्ट्रीय शांति के माध्यम में विश्व में व्यापत गरीबी तथा अविकास जैसे मुद्दों का आसानी से हल प्रस्तुत किया जा सकता है।

VI.स्वतंत्र विदेश नीति का पालन - किसी भी गुट में शामिल न होकर कोई भी देश स्वतंत्र विदेश नीति का पालन कर सकता है तथा अपनी सम्प्रभुता एवं राष्ट्रीय हित का संरक्षण एवं संवर्द्धन कर सकता है।

VII.गुटनिरपेक्षता क्रियात्मकता आधारित नीति है न कि अलगाववाद आधारित- गुटनिरपेक्षता की नीति अलगाववाद की नीति का विरोध करती है। अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में तटस्थता एक प्रकार से अन्याय का समर्थन ही होता है। इसके विपरीत गुटनिरपेक्षता की नीति, अन्तर्राष्ट्रीय मामलों मे पूर्ण भागीदारी तथा निरंतर सहयोग के लिए तत्परता की नीति है।

VIII.दोहरी गुट की नीति नहीं - गुटनिरपेक्षता एक आन्दोलन है न कि संगठन जिसे किसे औपचारिक संगठन के समर्थन की आवश्यकता है। निर्गुट आन्दोलन देशों का कोई तीसरा गुट नहीं है। वास्तव में गुटनिरपेक्षता शांति और विकास के मार्ग पर चलने की एक वैक्लपिक व्यवस्था है।

IX.विकास का अपना प्रतिरूप - गुटनिरपेक्षता की नीति अपने पर थोपे गये किसी भी तरह के विकास के प्रतिरूप का पुर-जोर विरोध करती है। यह नीति गुटनिरपेक्ष देशों को अपने आर्थिक, राजनीतिक और समाजिक व्यवस्था को आकार देने के लिए स्वयं का अपना प्रतिरूप और दृष्टिकोण अपनाने पर जोर देती है। इसके लिए अर्न्राष्ट्रीय स्तर पर अन्तराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था का नवनिर्माण करने का प्रयास करती है।

X.नवीन अन्तर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का निर्माण - नवीन अन्तराष्ट्रीय विश्व अर्थव्यवस्था की मागँ, गुटनिरपेक्षता की नीति को एक नवीन आयाम देती है। इसी के साथ या विश्व राजनीति को भी पूर्नपरिभाषित करती है। अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सम्बधों के सन्दर्भ में ''यथास्थितिवाद'' का विरोध करती है।

इस प्रकार भारतीय गुटनिरपेक्षता की नीति तात्पर्य उपनिवेशवाद, सामाज्यवाद प्रजातीवाद तथा आधुनिक सन्दर्भ में नव-उपनिवेशवाद के विरोध से है। यह महाशक्तियों के वर्चस्व का विरोध करती है। यह सभी देशों के समान सम्प्रभुता तथा उनमें मित्रवत सम्बन्ध को बढ़ावा देने में विश्वास करती है। यह अर्न्राष्ट्रीय विवादो के शांति पूर्ण समाधान में विश्वासकरती है। तथा शक्ति द्वारा किसी भी तरह के समाधान का सर्वथा विरोध करती है। यह संयुक्त राष्ट्र संघ व्यवस्था तथा निःशास्त्रीकरण के प्रक्रिया का समर्थन करती है। सबसे महत्वपूर्ण भारत की गुटनिरपेक्षता की नीति सामाजिक और आर्थिक मुद्दो को प्राथमिकमता देती है। भारत नवीन आर्थिक अन्तराष्ट्रीय व्यवस्था का पूर्ण समर्थन करता है, जिससे विश्व में अन्यायपूर्ण एवं अंसतुलीत आर्थिक व्यवस्था के जगह न्यायपूर्ण व्यवस्था की स्थापना हो सके।

5.5 गुटनिरपेक्ष की नीति अपनाने का कारण

भारत द्वारा गुटनिरेक्ष की नीति अपनाने के पिछे निम्न कारण थे-

नाकारात्मक तत्व

I.शीत युद्ध - भारत को अपने विकास की चुनौति से निपटने के लिए दोनों गुटों के सहायता की आवश्यकता थी। अतः भारत ने दोनां गुटों स दुरी बनाये रख, दोनों से मित्रतापूर्ण संबंध रखने का प्रयास किया।

II.सैनिक सगंठन-नाटो, सीटो, सेंटो, वारसा पैक्ट जैसे सैन्य संगठन शीत युद्ध के देन थे। इनमें से किसी संगठन में शामिल होना, विपक्षी गठबंधन से शत्रुता लेना था। साथ ही ये सैन्य संगठन अन्तर्राष्ट्रीय शांति के लिए खतरा और शस्त्र होड़ को बढ़ाने वाले थे।

III.साम्राज्यवाद और उपनिवेशाद का विरोध - शीत युद्ध के समय हो रहे विचारधारात्मक और प्रसारवादी संघर्ष एक तरह उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद के पर्नावृति का प्रयास था अतः इनका विरोध गुटनिरपेक्षता की नीति के पालन से आसानी से सम्भव था।

सकारात्मक तत्व

I.प्रबल राष्ट्रवाद - सभी सम्प्रभु राष्ट्रो की तरह भारत भी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में स्वतत्रं भागीदारी चाहता था। गुटनिरपेक्ष की नीति इसके लिए सर्वथा उपयुक्त प्लेटफार्म था।

II.राष्ट्रीय हित - गुटनिरपेक्ष की नीति को अपनाने के पश्चात् भारत के पास सभी तरह के विकल्प खुले थे, जोकि किसी एक गुट के साथ होने पर सभंव नहीं था।

III.आर्थिक विकास की आवश्यकता - गुटनिरपेक्षता के नीति के साथ भारत दोनों गुटों से आर्थिक सहायता प्राप्त करने में सक्षम था।

IV.शान्ति की स्थापना - गुटनिरपेक्षता की अवधारणा और भारत के पारम्परिक विश्वासों शांति, अहिंसा, सहिष्णुता इत्यादि में बिल्कुल अनूरपता है। अतः गुटनिरपेक्षता के माध्यम से भारत अपने स्वाभाविक शांतिवाद विकास के मार्ग पर चल सकता था।

V.विश्व राजनिति में सक्रिय भूमिका - भारत जैसा विशाल देश विश्व राजनिति में किसी विशेष गुट का पिछलग्गु बन कर नही रह सकता था। उसे सारे गुटो से हटकर अर्न्राष्ट्रीय राजनीति को एक साकारात्मक आयाम देना था। गुटनिरपेक्षता की नीति निश्चय ही इसके लिए उचीत मंच था।

VI.भू-राजनीति तत्त्व - भारत विश्व को दो सबसे बड़े साम्यवादी देशों चीन और सोवियत संघ रूस का पड़ोशी था। राजनीतिक रूप से एक लोकतांत्रिक देश होने के चलते भारत पश्चिम के नजदीक था, जबकि भौगोलिक रूप से पूर्व के नजदीक। इस स्थिति भारत का किसी एक गुट के साथ जाना उचित नही था।

स्पष्ट है कि गुटनिरपेक्ष की नीति अपनाने के पिछे अनेक कारण उत्तरदायी थे। 5-12 जुन 1961 में काहिरा में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के प्रथम सम्मेलन के तैयारियो के लिए हुए मीटिगं में गुटनिरपेक्षता के लिए पाँच शर्त्ते तय की गई। ये शर्ते निम्न लिखित है-

I.देशों को स्वतंत्र विदेश नीति अपनाना होगा, जो कि विभिन्न राजनीतिक एवं सामाजिक व्यवस्था वाले देशो के साथ शांतिपूर्ण सह अस्तिव पर आधारित होनी चाहिए। इन राज्यों की विदेश नीति गुटनिरपेक्षता पर आधारित होनी चाहिए।

II.इन देशों को विभिन्न देशों में चल रहे राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलनो को समर्थन देना चाहिए।

III.गुटनिरपेक्ष देशो को महाशक्तियों में चल रहे संघर्ष हेतु स्थापित बहुपक्षिय सैनिक सगठनों का भाग नही होना चाहिए।

IV.यदि किसी देश का किसी महाशक्ति के साथ द्विपक्षीय सैनिक गठंबधन है या वह किसी क्षेत्रीय सुरक्षा संधि का सदस्य है, तो ये गठजोड़ जानबुझकर शीत युद्व के सन्दर्भ वाले नही होने चाहिए।

V.यदि कोइ गुटनिरपेक्ष देश किसी विदेशी शक्ति को अपने यहाँ सैनिक अड्डा बनाने की सहमति देता है तो यह आवश्यक रूप से महाशक्तियों के शक्ति संघर्ष के सन्दर्भ में नही होना चाहिए।

5.6 भारतीय गुटनिरपेक्ष नीति के विकास के विभिन्न चरण

भारतीय गुटनिरपेक्ष नीति के इतिहास को निम्न चरणों में विभाजित यिा जा सकता हैं

I. 1946-1954 यह चरण गुटनिरपेक्ष आन्दोलन का शुरूआती निर्माण काल था। सितम्बर 1946 में अतरिंम सरकार में शामिल होने के तुरतं बाद जवाहरलाल नेहरू ने यह स्पष्ट किया था कि, भारत की अर्न्राष्ट्रीय राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका होगी तथा भारत एक स्वतंत्र विदेश नीति का अनुसरण करेगा जो कि इसके राष्ट्रीय हित में होगी। इस स्वतंत्र विदेश नीति का तात्पर्य होगा कि भारत किसी भी गुट में शामिल नही होगा। परन्तु कुछ विश्लेषक ऐसा मानते है कि भारतीय गुटनिरपेक्षता अपने आरभिंक दैर में पश्चिम की तरफ झुका हुआ था विशेषकर अमेरिका की तरफ। इसके कुछ महत्वपूर्ण कारण थें-

i.भारत सुरक्षा उपकरणों के लिए मुख्यतः ब्रिटेन पर निर्भर था। हमारी सेना ब्रिटीश स्वरूप पर आधारित थी।

ii.भारतीय प्रबृद्ध जनमानस तथा नेतृत्व शासन के वेस्टमिनिस्टर स्वरूप से अत्यन्त प्रभावति था

iii. हमारे व्यापार सबधं मुख्यतः पशिचमी देशों के साथ थे।

iv.तथा अतं में उस समय सोवियत नीति विकासशील देशों के पक्ष में नहीं थी तथा गैर साम्यवादी देश को साम्यवाद विरोधी देश माना जाता था।

लेकिन भारत के पश्चिम की ओर झुकाव के बावजूद, पश्चिम ओर पूर्व के बीच एक तरह का सेतु बनने का काम किया। जैसे भारत ने सयुंक्त राष्ट्र के इस निर्णय को स्वीकार किया था कि उत्तरी कोरिया आक्रमण कारी है, परन्तु सयुंक्त राष्ट्र सघं सेना के उत्तरी कोरिया में प्रवेश का विरोध किया था। कोरिया संकट के समाधन में भारत की अत्यन्त ही महत्वपूर्ण भूमिका थी। भारत ने 1949 में सर्वप्रथम साम्यवादी चीन को मान्यता दी। इस समय तक सोवियत रूस से भारत का कोई विशेष सम्बन्ध नही था। परन्तु जब भारत ने दक्षिण पूर्वी एशियाई संधि सगंठन (सीटों) में शामिल होने के अमेरिकी प्रस्ताव को ठुकराया, तब से सोवियत संघ गुट भारत के साथ सहयोगी संबध स्थापित करने का प्रयास करने लगा था।

II. 1954-62- गुटनिरपेक्षता के इस चरण में 1954 में भारत ने सर्वप्रथम चीन के तिब्बत पर अधिपत्य को स्वीकार किया। भारत और चीन ने भारत और तिब्बत के बीच व्यापार संबधी सुवधाओं के लिए मसौदा तैयार किया। इस मसौदे का प्रस्तावना पंचशील सिद्धान्त के नाम से प्रसिद्ध है जो कि शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व पर आधारित है। यह तय किया गया कि दोंनो देश आपसी संबधों को पंचशील के आधार पर ही विकसीत करेगे इस चरण में एफ्रो-एशियाई देशों का वांडुंग सम्मेलन हुआ, जो कि गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की आधार शिला थी। यह सम्मेलन वांडुंग में 18-24 अप्रैल 1955 के दौरान सम्पन्न हुआ इस सम्मेलन में एशिया और अफ्रीका दोंनों महाद्विपों के 29 देशों के राज्यध्यक्षों ने भाग लिया जो कि इन देशों की पहली उत्तर-औपनिवेशिक नेतृत्व की पिढ़ी थी तथा जिनका उद्देश विश्व मुद्दों पर विचार-विमर्श कर उनके समाधान के लिए सामुहिक नीतियो का निर्माण एवं कार्यन्वयन था। बांडुग सम्मेलन के छः वर्षो बाद 1-6 दिसम्बर 1961 के दौरान गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के पहले सम्मेलन का आयोजन हुआ। इस सम्मेलन का भोगोलिक आधार वांडुंग से ज्यादा व्यापक था। इसमें 25 देशो के राज्याध्यक्षो ने भाग लिया था।

III.1962-71 - इस चरण में सर्वप्रथम भारत और चीन के मध्य हुए सीमा विवाद के कारण 1962 में दोनों देशों के बीच युद्ध छीड़ गया। युद्ध के दौरन नेहरू ने अमेरिका से सैन्य सहायता लेने का प्रयास किया जो कि आलोचको के निर्गुट राज्य के रूप में भारत की स्थिति पर सवाल उठाने के लिए पर्याप्त था। इसके अलावा भारत चीन सीमा विवाद ने भारत के सैन्य तैयारियों और कमजोर सुरक्षा व्यवस्था पर भी प्रश्न चिन्ह खड़ा कर दिया था। आलोचको का मानना था कि विदेश नीति, सुरक्षा नीति द्वारा समर्थित होती है और युद्ध मे भारत की असफलता भारतीय विदेश नीति की विफलता को दर्शाता है। परन्तु यह धरणा सुरक्षा नीति के संकुचित अवधारणा पर आधारित थी। भारतीय गुटनिरपेक्षता जिस तरीके से संचालित हो रही थी, सोवियत रूस ने वही रूख अपनाया। उसने युद्ध में बजाय कम्युनिस्ट भाई और एक गैर पूँजीवादी मित्र (भारत) में से किसी एक से चुनने में तटस्थता की नीति अपनाई, और दोनों देशों को प्रत्यक्ष वार्ता के माध्यम से युद्ध अतं करने का सलाह दिया। गुटनिरपेक्षता की नीति इतनी लचीली थी। कि भारत युद्ध के दौरान अमेरिका से सहायता प्राप्त कर सकता था। भारत ने पहली बार इतने बड़े पैमाने पर सैन्य सहायता की माँग की थी। दुसरी तरफ नेहरू के शब्दों मे गुटनिरपेक्षता की नीति भारत के राष्ट्रीय हितों के सुरक्षा का एक साधन थी। विशेषकर जब भारत की सुरक्षा हित खतरे में हो तब गुटनिरपेक्षता का तंत्र खतरे के हटाने के लिए भारत को महाशक्तियों से सैन्य सहायता प्राप्त करने का स्पष्ट रूप से सुविधा मुहैया कराता था। संक्षेप में महाशक्तियों में से एक से सैन्य सहायता प्राप्त कर भारत उपमहाद्विप में शान्ति बहाल करने में सक्षम हुआ। युद्ध में हारने के बावजुद, बिना गुटनिरपेक्षता के मूल को त्याग किये भारत ने इस प्रक्रिया को पुरा किया। 1964 में नेहरू के निधन के बाद उनके उत्तराधिकारी लाल बहादुर शास्.त्री ने अधिक दृढ़ता से गुटनिरपेक्षता की नीति का पालन किया। यहाँ तक की 1964 में चीन के प्रथम परमाणु परीक्षण करने के बावजूद शास्त्री जी ने परमाणु परीक्षण करने के लिए किसी भी तत्काल भारतीय योजना से इकारं किया। उसी समय भारत में लगभग 18 महिनो की खाद्यान की कमी हुई थी। अमेरिका ने वियतनाम युद्ध में भारत के समर्थन के शर्त पर भारत को सहायता की पेशकश किया। लेकिन भारत ने इस शर्त्त को स्वीकार नहीं किया 1965 के भारत-पाक युद्ध में अमेरिका और चीन दोनों ने पाकिस्तान को मदद दिया। दुसरे तरफ भारत को सोवियत संघ ने हथियारों की सहायता प्रदान किया। भारत ने इस युद्ध को जीत करके अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा प्राप्त किया। दुर्भाग्य से लाल बहादुर शास्त्री जी का ताशकंद समझौता होने के बाद निधन हो गया। इसके बाद इदिंरा गाँधी भारत की प्रधानमंत्री बनी। जिन्होने पूनः एफ्रो-एशियन देशो के सगंठन को बढ़ावा देने का प्रयास किया।

IV. 1971-1990 - इस दौर में भारतीय गुटनिरपेक्षता की नीति को एक और चुनौति भारत-पाक के बीच 1971 के युद्ध के द्वारा मिला जो कि अतंतः बाग्लादेश के जन्म का कारण भी बना। भारत की मदद से बाग्लादेश एक सम्प्रभु राष्ट्र बना। इसी दौरान 1971 में भारत ने सोवियत संघ के साथ मैत्री और सहयोग का समझौता किया। यह संधि अमेरिका के युद्ध में पाकिस्तान के पक्ष में शामिल होने के भारत को दिये गये धमकी के निवारक क रूप में किया गया था। दूसरी तरफ सोवियत सघं ने भी भारत के गुटनिरपेक्ष की नीति का समर्थन करते हुए इस संधि को अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा के लिए उपयोगी बताया। अतः इस संधी को गुटनिरपेक्षता की नीति विरूद्ध बताना सही नही है। भारत जैसा देश उस समय इस उपमहाद्धीप में हो रहे घटनाओं के प्रति निष्क्रीय नही बना रह सकता था।

भारत द्वारा निभाया गया यह सक्रिय भूमिका वास्तव में गुटनिरपेक्षता के आदर्श का पालन था, क्योंकि इसके द्वारा जहाँ भारत ने अपनी क्षेत्रीय अखण्डता और एकता को सुरक्षित किया वही दुसरी तरफ मानवता खिलाफ हो रहे अन्याय का सशक्त विरोध किया। आगे चलकर जनता पार्टी सरकार ने ''वास्तविक गुटनिरपेक्षता '' का नारा दिया जो कि महाशक्तियों से समान दुरी बनाये रखने के सिद्धान्त पर आधारित थी। यद्यपि कुछ आलोचको मानना था कि जनता सरकार के काल में भारत-सोवियत संघ संबंध थोड़ा ठड़ा पड़ा, जबकि भारत-अमेरिका संबधों में सुधार

हुआ। लेकिन कुछ भी हो जनता सरकार भी सोवियत संघ के विरूद्ध नही गया। इस सरकार ने चीन और पाकिस्तान से भी संबधों में सुधार किया। इसी दौरान भारत ने अमेरिका के दबाव की अवहेलना करते हुए परमाणु अप्रसार संधी पर हस्ताक्षर करने से मना कर दिया। 1980 से 1990 तक के काल में भारत और सोवियत संघ के सबंध अपने ऊँचाई पर थे। परन्तु भारत अपने गुटनिरपेक्ष नीति का लगातार बढ़ावा देता रहा। भारत ने इसी समय 1983 में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के साँतवें बैठक की मेजबानी किया। 1990 तक आते-आते शीत युद्ध की समाप्ती की घोषणा हो गई।

V. 1991 से अब तक - सोवियत संघ के बिखराव के बाद शीत युद्ध के समाप्ति की घोषणा हुई तथा इस घटना ने गुटनिरपेक्षता के प्रासंगिकता को सबसे बड़ी चुनौति दिया। अनेक आलोचको का मानना था कि गुटनिरपेक्षता का अर्थ, महत्व और प्रासंगिकता, शीत युद्ध के कारण ही था। परन्तु अब जबकि सोवियत गुट पुरी तरह टुट गया था, देशों द्वारा गुटनिरपेक्षता के नीति को अपनाने का कोई अर्थ नहीं था। लेकिन इसी समय अपने पाँचवें चरण में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन ने उभरते हुए नवीन विश्व व्यवस्था के सन्दर्भ में नया स्वरूप धरण किया। अब भारतीय गुटनिरपेक्षता का प्रमुख मुद्दा आर्थिक, साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद का विरोध करना हो गया। आगे चलकर नरसिम्हा राव सरकार ने अमेरिका के व्यापक परमाणु अप्रसार निषेध संधि ;ब्ज्ठज्द्ध का समर्थन किया जो कि नेहरूवादी निःशस्त्री करण नीति की पूर्नावृत्ति थी। आगे चलकर इन्द्र कुमार गुजराल और देवगौड़ा के नेतृत्व में भी भारत ने उत्तर शीत युद्ध काल के दौरान भारतीय विदेश नीति के आधार के रूप में गुटनिरपेक्षता के महत्व को स्वीकारा और इस नीति का लगातार समर्थन करते रहे। भारत, इजिप्ट और क्यूबा के नेताओं ने गुटनिरपेक्ष आदोलन के कार्टेगना (1996) और डरबन (1998) सम्मेलनों में दक्षिण-दक्षिण संवाद पर जोर दिया तथा पर्यावरण के मुद्दा को पृथ्वी के अस्तीत्व के लिए सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा बताया। क्वालालम्पुर में 2003 के गुटनिरपेक्षता आन्दोलन के 13 वें सम्मेलन में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के पुनरोद्धार का प्रयास किया गया। इस सम्मेलन में एकलवादी वर्चस्व की आलोचना की गई तथा गुटनिरपेक्ष आन्दोलन को और सशक्त बनाने पर जोर दिया। भारत ने गुटनिरपेक्ष देशों के मध्य अधिक से अधिक व्यापारिक सहयोग बढ़ाने पर जोर दिया। भारत ने शुरू से ही गुटनिरपेक्षता की नीति को विकासशील देशों के द्वारा अपने आर्थिक स्थिति को सुधारने का एक मचं के तौर पर देखा है। गुटनिरपेक्ष आन्दोलन ने अनेकों सघर्षों का शांतीवादी ढ़ग से सुलझाने का प्रयास किया। गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के 14वें सम्मेलन में भारत के तात्कालिन प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के बदलते भूमिका और प्रांसगिकता पर जोर देते हुए, समावेशी भूमण्डलीकरण, पश्चिम एशिया के लिए उच्च स्तरीय समुह का निर्माण, ऊर्जा चुनौति से निपटने के लिए ऊर्जा सुरक्षा का गुटनिरपेक्ष देशों की समीति बनाने इत्यादि का आह्वान किया। इजिप्ट में हुए 15 वें गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के सम्मेलन में भारतीय प्रधानमंत्री ने आतंकवाद को वैश्विक शांति के लिए खतरा बताया और उससे निपटने के लिए पुरे विश्व को एक होने की माँग की। तेहरान में हुए 16 वें सम्मेलन में भी भारतीय प्रधानमंत्री ने गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के सामुहिक लक्ष्य, शांति और समृद्धि को साकार करने के प्रयास पर जोर दिया। इस प्रकार हम कह सकते है कि उत्तर शीत युद्ध काल में भी भारत गुटनिरपेक्षता की नीति को लगातार समर्थन और सवर्द्धन करने का प्रयास कर रहा है।

16.5 अभी तक संपन्न गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के सम्मलेन

स्थान	वर्ष	भाग लेने वाले	मुद्दा

		देशो की संख्या	
1.बेलग्रेद (यूगोस्लाविया)	1961	25	गुटनिरपेक्ष आंदोलन का औपचारिक शुभारंभ,प्रतिभागियों को द्वारा आंदोलन को पहचान करने के लिए शब्द "तटस्थ" को अस्वीकार कर दिया। भले ही उसके आगे "सकारात्मक" उपसर्ग का ही प्रोयोग क्यो ना हो |
2.काहिरा (मिस्र)	1964	47	इसमे उस समय के तीसरी दुनिया के लिए चिंता का विषयों जैसे उपनिवेशवाद के समापन, नस्लीय भेदभाव, आत्मनिर्णय, निरस्त्रीकरण, सैन्य गठबंधन, और आर्थिक विकास इत्यादि मुख्य रूप से राजनीतिक मुद्दों पर चर्चा हुई।
3.लुसाका(ज़ाम्बिया)	1970	54	शिखर सम्मेलन में आंदोलन का प्रारंभिक उद्देश्य- आर्थिक मुद्दो को वरीयता दी गई**a**। शिखर सम्मेलन ने अंतरराष्ट्रीय संबंधों को लोकतांत्रिक बनाने तथा एक अनिवार्य आवश्यकता के रूप में, स्वतंत्रता विकास और सहयोग जैसे मुद्दो को साथ इस प्रक्रिया को जोड़ने की बात की गई।
4.अल्जीयर्स (अल्जीरिया)	1973	76	एकनवीन आर्थिक विश्व व्यवस्था बनाने का आह्वान किया गया और इसके लिए संयुक्त राष्ट्र महासभा मे एक प्रस्ताव लाने की बात की गई**l**
5.कोलंबो (श्रीलंका)	1976	87	एशियाई महाद्वीप में आयोजित होने वाला पहला शिखर सम्मेलन **l** यह उस समय हुआ था जब पूरे विश्व मे राजनीतिक और आर्थिक स्वतंत्रताओं, शांति और प्रगति, दुनिया के सभी लोगों के लिए आत्मनिर्णय का अधिकार तथा शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व के लिए लोगों द्वारा संघर्ष किया जा रहा था|
6. हवाना (क्यूबा)	1979	100	लैटिन अमेरिका में आयोजित होने वाले इस पहले शिखर सम्मेलन में इस क्षेत्र की समस्याओं के समाधान की शुरुआत की बात की गई। साथ हीं वैश्विक परिदृश्य पर संघर्ष की संख्या की वृद्धि पर भी चर्चा हुई। शिखर सम्मेलन मे आत्मनिर्णय के अधिकार और मानव स्वतंत्रता पर एक तदर्थ घोषणा भी जारी किया गया।
7.नई दिल्ली (भारत)	1983	101	इसमे सुपर शक्तियों के बीच बढ़ रही बेलगाम आयुध होड़ और विकसित और विकासशील देशों के बीच तेजी से बढ़ती आर्थिक खाई को समकालीन अंतरराष्ट्रीय राजनीति के दो बुनियादी मुद्दों के रूप में पहचान की गई।
8. हरारे (जिम्बाब्वे)	1986	101	इस शिखर सम्मेलन में रंगभेद और नस्लीय भेदभाव का स्पष्ट शब्दों में निंदा की गई
9.बेलग्रेद (यूगोस्लाविया)	1989	103	शिखर सम्मेलन मे कई मुद्दों की समीक्षा की गई जैसे; फिलीस्तीन लेबनान और अफगानिस्तान में स्थिति; ईरानी-

			इराक सबंध, पश्चमी सहारा, साइप्रस और कोरिया के घटनाक्रम; रंगभेद नीति; दक्षिणी अफ्रीका की स्थिति, अंतरराष्ट्रीय सुरक्षा और निरस्त्रीकरण की स्थिति; आदि |इसके अलावा विकास में महिलओं का प्रश्न, पर्यावरण की भूमिका, अंतरराष्ट्रीय व्यापार, खाद्य और कृषि, विकासशील देशों के बीच आर्थिक सहयोग इत्यादि की भी चर्चा हुई	
10.जकार्ता (इंडोनेशिया)	1992	108	शिखर सम्मेलन मे कई मुद्दों पर चर्चा की गई जैसे; शीत युद्ध के बाद के युग में गुटनिरपेक्ष आंदोलन के लिए एक नई भूमिका के लिए खोज, समानता, न्याय और लोकतंत्र के आधार पर एक नई विश्व व्यवस्था के निर्माण की समस्या; ऋणग्रस्तता की समस्या; अंतरराष्ट्रीय आर्थिक सहयोग, निरस्त्रीकरण; मानव अधिकार; फिलीस्तीनी मुद्दा और सोमाली संकट।
11.कार्टागेना (कोलम्बिया)	1995	113	शिखर सम्मेलन विकासशील देशों के समग्र विकास लिए, और अधिक अंतरराष्ट्रीय सहयोग और एक नए विश्व व्यवस्था के निर्माण का आह्वान किया गया ।शीत युद्ध के बाद के युग में विकासशील देशों के प्रवक्ता के रूप में आंदोलन की भूमिका बढ़ाने का निश्चय किया गया। शिखर सम्मेलन में संयुक्त राष्ट्र के पुनर्गठन, विकासशील देशों मे मानव अधिकार, पर्यावरण संरक्षण और आतंकवाद मे वृद्धि इत्यादि मुद्दो पर भी चर्चा की गयी।
12.डरबन (दक्षिण अफ्रीका)	1998	115	यह शिखर सम्मेलन अपने समय और जारी किए गए प्रस्तावों की महत्ता से इसके अत्यंत उल्लेखनीय है। उत्तर-शीत-युद्ध युग के नये चुनौतियों का सामना करने के लिए रणनीतियों का निर्माण किस प्रकार हो, यह प्रमुख मुद्दा था। इसके लिए आंदोलन के सदस्य-राज्यों ने नई सहस्राब्दी में आंदोलन का दृष्टिकोण, पहचान, भूमिका और नीति विस्तृत करने के लिए अवसरो के तलाश पर ज़ोर दिया **।**
13.कुआलालंपुर (मलेशिया)	2003	116	शिखर सम्मेलन मे कई मुद्दो पर सदस्य देशों के बीच मतभेदों को देखा गया**।** जिनमें से शीर्ष पर इराक, दक्षिण कोरिया और तथाकथित आतंकवाद के मुद्दे थे**।** । वास्तव में शिखर सम्मेलन ने राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक स्तर पर अंतरराष्ट्रीय घटनाक्रमो को समझने तथा उनके निदान की बात की गई ,इसमे अमेरिका द्वारा इराक मामले में हस्तक्षेप सबसे आगे आया ।
14. हवाना (क्यूबा)	2006	118	सम्मेलन अच्छा या बुरा के रूप में राज्यों के वर्गीकरण की निंदा किया गया	सावधानी के पहले हमला करने का सिद्धांत

			जिसमेपरमाणु हथियारों से हमले भी शामिल थे की भी आलोचना हुई |निरस्त्रीकरण के मुद्दे पर, परमाणु अप्रसार के लिए प्रयासों को, परमाणु निरस्त्रीकरण के समान होना चाहिए माना गया | इस संबंध में, शिखर सम्मेलन मे परमाणु निरस्त्रीकरण के लिए एक चरणबद्ध कार्यक्रम पर सहमती के लिए एक अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन को आयोजित करने का आह्वान किया गया
15. शर्म अल शेख (मिस्र)	2009	118	गुटनिरपेक्ष आंदोलन के नेताओं ने उनके निरंतर परमाणु हथियारों के उन्मूलन, परमाणु हथियार मुक्त क्षेत्र के लिए सरकार का समर्थन करने के लिए, विशेष रूप से मध्य पूर्व में, प्रतिबद्धता को दोहराई, और शांतिपूर्ण परमाणु ऊर्जा के उपयोग की घोषणा भी की |
१६ .तेहरान (ईरान)	2012	120	शिखर सम्मेलन का शिर्षक "संयुक्त वैश्विक शासन के माध्यम से स्थायी शांति" था | शिखर सम्मेलन का मुख्य दस्तावेज मे शांति पर जोर दिया गया | प्रतिभागीयों ने दुनिया में वैश्विक शासन में मौलिक परिवर्तन और शांति स्थापित करने की पूर्व शर्त के रूप में दुनिया के सामूहिक प्रबंधन और दुनिया को संघर्ष से बचने का आह्वान दिया |

5.8 गुटनिरपेक्ष आन्दोलन की प्रासंगिकता

गुट निरपेक्ष आन्दोलन का 16वाँ सम्मेलन इरान के तेहरान में 30-31 अगस्त 2012 को सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ। यह सम्मेलन पिछले पाँच दशकों में सबसे बड़ा अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन था कि जैसा कि इसमें 120 देशों के राज्याध्यक्षो ने भाग लिया और 17 देशों के प्रतिनिधियों ने समीक्षक के रूप में सम्मेलन में भाग लिया।

गुटनिरपेक्ष आन्दोलन संयुक्त राष्ट्र संघ जैसा अनिवार्य सदस्यता वाला संगठन नही है। यह एक एच्छिक सदस्यता वाला संगठन है, फिर भी बेलग्रेद (1961) के पहले सम्मेलन के 25 सदस्य संख्या वाला यह संगठन आज 120 सदस्यों वाले बड़े आन्दोलन में परिवर्तित हो चुका है, जिसमें विभिन्न इतिहास संस्कृति और राजनीतिक व्यवस्था वाले देश एकजुट होकर वैशविक मुद्दों पर सामुहिक शांतिपूर्ण समाधान पर पँहुचने का प्रयास करते है। आखिर ऐसा क्या था कि इतनी में संख्या में विभिन्न देशों ने इसकी सदस्यता ली, जबकि इस संगठन के पास अपने निर्णयो को मनवाने के लिए कोई बाध्यकारी शक्ति नही है। सदस्य देशों का ऐसे संगठन में शामिल होने का क्या फायदा है? ऐसा कहा जा सकता है कि 1950 के दशक में साझा औपनिवेशीक सघर्षों के अनुभवों वाले कुछ देशों ने अपनी सापेक्षिक स्वायत्ता और मार्मिक राष्ट्रीय हित की महाशक्तियों के हस्तक्षेप से रक्षा हेतु गुटनिरपेक्ष आन्दोलन जैसे मंच की स्थापना किया। यह एक तरह से वैश्विक मामलों में स्वतत्रं रूप से निर्णय लेने की इच्छा थी जिसने की भारत, इण्डोनेशिया, इजिप्ट युगोस्लावियां (भूतपूर्व), चीन इत्यादि देशों को एक मंच पर ला कर खड़ा कर दिया तथा इन्ही कारणें से या आन्दोलन लगातार बढ़ता रहा। शीतयुद्ध काल में इसने दों विपक्षी महाशक्तियों के दबाव को सफलतापूर्वक झेला। जब शीत युद्ध खत्म हो गया तो आलोचको नें कहना शुरू किया कि गुटनिरपेक्षता का अब समय पूरा हो चुका है, क्योंकि शीत युद्ध काल के द्विधुरवीय विश्व के स्थान पर अब बहुधुरविय व्यवस्था आ

गई है। परतुं आज जो नये प्रकार के आर्थिक, राजनीतिक और सैनिक अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था का उद्भव हो रहा है, उसमें गुटनिरपेक्षता की नीति की भूमिका और अधिक बढ़ गई है। वास्तव में आज के सन्दर्भ में विश्व, अमेरिका के एकलवादी नीतियों के वर्चस्व में है तथा सारे देशों को इन नीतियों का समना करना पड़ रहा है। अगर हम पिछले पाँच दशको के गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के इतिहास पर जाये तो हम पायेंगे कि अमेरिका ने सदैव गुटनिरपेक्षता का विरोध किया है। अमेरिका ने हमेशा गुटनिरपेक्ष देशों द्वारा नव उपनिवेशवाद और नव साम्राज्यवाद के विरोध को दबाने का प्रयास किया है। जब भी गुटनिरपेक्ष आन्दोलन ने एशिया, अफ्रिका या लैटिन अमेरिका के नव स्वतंत्र राष्ट्रों के आर्थिक और राजनीति स्वतंत्रता का समर्थन किया तो वह अमेरिका की सहायता से बुरी तरह से दबा दिया गया। अमेरिका का गुटनिरपेक्षता के सन्दर्भ में यह मानना था कि जो हमारे साथ नहीं है वह हमारे विरूद्ध है। अमेरिका के नेतृत्व में नाटों द्वारा विश्व के कई देशों में शासन परिर्वतित कर, उसके नव उपनिवेशवाद नीतियों के समर्थन वाली कठपुतली सरकार स्थापित करना उत्तर शीत युद्ध काल में गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के प्रासंगिकता को पुरी तरह से न्यायोचित ठहराता है। अमेरिका द्वारा युगोस्लाविया, अफगानिस्तान, इराक, लीबिया में जो एक तरफा सैन्य कार्यवाहीयाँ की गई वह अपने आप में वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था की कमजोरी को दर्शाती है। अतः इस तरह के अव्यवस्था के विरोध के लिए गुटनिरपेक्ष आन्दोलन जैसे बड़े मंच की आवश्यकता और बढ़ जाती है। वर्तमान विश्व पूनः उन पुराने उपनिवेशवादी शक्तियों द्वारा नवउपनिवेशवादी नीतियों के प्रसार के खतरे से ग्रस्त है। अतः इन नवउपनिवेशवादी शक्तियों का प्रतिरोध गुटनिरपेक्ष आन्दोलन जैसे मंच से ही संभव है। जैसा कि हम देख सकते है कि अभी हाल में ही तेहरान में हुए गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के सम्मेलन का अमेरिका ने विरोध किया था। स्पष्ट है कि एक महाशक्ति के टुटने से वैश्विक समस्याओं का अंत नही हो जाता। आज के नये भू-राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में जहाँ विश्व, आतंकवाद, प्रजातिवाद, अविकास शस्त्र होड़, खाद्यान संकट, जलवायु परिवर्तन, विभिन्न महामहारियाँ के प्रसार इत्यादि समस्याओं से जुझ रहा है, वहाँ गुटनिरपेक्ष आन्दोलन जैसे साकारात्मक उदेश्य वाले अन्तर्राष्ट्रीय मंच की प्रासंगिकता और बढ़ जाती है। अतः गुटनिरपेक्षता की नीति इस एक ध्रुवीय विश्व में प्रांसगिक और भविष्य में आने वाले बहुध्रुवीय विश्व में भी प्रासगिक रहेगा।

गुटनिरपेक्ष का आधारभूत सिद्धान्त- निःशस्त्रीकरण, दुसरे देशों के आन्तरिक मामलो में अहस्तक्षेप, समान आर्थिक और राजनितिक व्यवस्था की मागँ तथा संयुक्त राष्ट्र संघ व्यवस्था को मजबुत बनाना इत्यादि पूरे विश्व के लोगों के जीवन को सुधारने के लिए पर्याप्त है। संयुक्त राष्ट्र के सुरक्षा परिषद में सुधार की माँग गुटनिरपेक्ष आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य रहा है। आन्दोलन द्वारा सुरक्षा परिषद के विस्तार की माँग एक तरह से सयुक्त राष्ट्र को बहुपक्षीय बनाने का प्रयास है। गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के 15वें सम्मेलन में संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के प्रति विश्वास को दोहराया गया। गुटनिरपेक्ष आन्दोलन अनेको वैश्विक सुधारों की माँग और समर्थन करता रहा है। जैसे नव अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था (1974), पृथ्वी सम्मेलन एजेण्डा - 21 (1992) तथा रियो घोषणा पत्र। 15वें सम्मेलन में सर्वसमती से सभी सदस्यो ने अमिर और गरीब देशों के मध्य असमानता को कम करने की प्रतिबद्वता को दोहराया। अमेरिका के विरोध के बावजुद तेहरान में सम्पन्न हुआ गुटनिरपेक्ष आन्दोलन का 16वाँ सम्मेलन इसके प्रांसगिकता के औचित्य को सही ठहराता है। इस सम्मेलन में भारतीय प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने सुरक्षा परिषद्, विश्व बैंक तथा अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एवं वैश्विक व्यापार, क्ति और निवेश में सुधार का आह्वाहन किया। उन्होंनें वैश्विक शासन व्यवस्था में सुधार की माँग किया। सिरीया में चल रहे गृह युद्ध को इंगित करते हुए उन्होंने ने यह माँग कि, यह समस्या सिरिया के लोगों द्वारा सुलझाया जाना चाहिए। सिरिया में लोकतंत्र का समर्थन, उस पर सैन्य कार्यवाही के माध्य से नहीं होनी चाहिए। शुरू से ही गुटनिरपेक्षता की नीति देशों के स्वतंत्र विदेश नीति की माँग करती रही है और कोई भी देश महाशक्तियों के हाथ में कठपुतली न बने इसका प्रयास करती रही है। आन्दोलन के अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दों के सन्दर्भ में तीन प्रमुख माँग रहे है। - स्वतंत्र निर्णय लेने का अधिकार, सामाज्यवाद एवं नव

उपनिवेशवाद का विरोध तथा सभी महाशक्तियों के साथ मित्रवत संबधं। यह आज भी उतना ही प्रासंगिक है। इसके अलाँवा आज के सन्दर्भ में इसका मुख्य उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था का पुनर्गठन करना हो गया। है।

5.9 भारत की भूमिका

भारत के विदेश नीति के आधार के रूप में गुटनिरपेक्षता की नीति इस एक धुरवीय विश्व में कहाँ तक प्रासंगिक है, प्रश्न भारतीय विदेश नीति के सन्दर्भ में 1990 के बाद सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न रहा है। आलोचको का मनना है यदि भारत केवल गुटनिरपेक्षता की नीति का पालन करता रहता तो शायद अपने राष्ट्रीय हितो का सफलता पूर्वक वहन न कर पाता तथा शायद आज की तरह उभरती हुई शक्ति के रूप मे न पहचाना जाता। भारत गुटनिरपेक्षता का संस्थापक देश था। इसने 1983 में गुटनिरपेक्षता के सम्मेलन की मेजबानी की और इसी ने सर्वप्रथम गुटनिरपेक्षता नियमों से सबसे ज्यादा दुरी भी बनाया। आलोचकों के अनुसार 1998 में भारत द्वारा परमाणु परीक्षण करने के बाद तथा उसके पश्चात भारत-अमेरिका परमाणु समझौता जैसे कदमों ने अनेंको गुटनिरपेक्ष देशों को यह सोचने पर मजबुर कर दिया कि भारत गुटनिरपेक्षता के आधारभूत सिद्वान्त से भटक गया है। और भारतीय विदेश नीति में इसकी कोई प्रासंगिक नही रही है। भारत-अमेरिका परमाणु समझौता का विशेषकर इरान ने विरोध किया और भारत पर आरोप लगाया कि वह अपने परम्परागत गुटनिरपेक्षता के मार्ग से भटक गया है। परन्तु ये सारे निर्णय कही से गुटनिरपेक्षता के नीति से भटकाव नहीं है। गुटनिरपेक्षता का सिद्वान्त किसी देश को उसके राष्ट्रीय हित का सवर्द्धन और इस उद्देश्य के लिए महाशक्तियों से मित्रवत सम्बन्ध बनाये रखने पर प्रतिबंध नही लगाती। भारत का परमाणु परीक्षण भी शांतिवाद उद्देश्य तथा प्रथम बार प्रयोग न करने के सिद्धान्त पर आधारित है। भारतीय राष्ट्रीय हित के सुरक्षा के सन्दर्भ में परमाणु परीक्षण आवश्यक था। अपनी विदेश नीति में गुटनिरपेक्षता के मूल्यों के प्रति भारत का प्रबल समर्थन इस बात से स्पष्ट हो जाता है कि भारत ने कभी भी अमेरिका का पिछलग्गु बनना स्वीकार नही किया। जब अमेरिका के तात्कालीन विदेश मंत्री ने 2007 में भारत को गुटनिरपेक्षता की नीति को छोड़ने का सलाह दिया तो भारत में इसका कड़ा विरोध हुआ। बाद में भारत में तात्कालीन अमेरिकी राजदुत डेविड सी मलफोर्ड को यह कहना पड़ा कि भारत गुटनिरपेक्षता की नीति का महत्वपूर्ण रूप से पालन कर रहा है। 16 वें गुटनिरपेक्ष सम्मेलन का अमेरिका द्वारा किये जाने वाले विरोध के बावजूद भारत ने इसमें भाग लिया। भारत के इस सम्मेलन में भागीदारी ने भारत के गुटनिरपेक्षता के प्रति आस्था गहराई से प्रकट करता है। इस सम्मेलन में भारतीय प्रधानमंत्री के भाषण ने भारत की पश्चिम एशिया के प्रति नीति को स्पष्ट कर दिया जिसमें भारत ने अपनी पुरानी प्रतिबद्धता को दोहराते हुए इस बात पर बल दिया कि बाह्य राष्ट्रों को किसी भी देश के सम्प्रभुता का उल्लंघन नही करना चाहिए। भारत ने सिरिया और फिलिस्तीन मुद्दो के भी शांतिपूर्ण समाधान पर जोर दिया तथा यह विश्व से यह सुनिश्चित करने का आह्वान किया कि लंबे समय से कष्ट झेल रहे लोगों को राहत पहुँचना चाहिए। भारत लगातार गुटनिरपेक्ष आन्दोलन को समसामायिक वैश्विक मुद्दों में सक्रिय भूमिका निभाने पर जोर दे रहा है - जैसे - वैश्विक आतंकवाद मानवाधिकार, विकास एवं नारी उन्मुक्ति,पर्यावरण संरक्षण इत्यादि।

5.10 गुटनिरपेक्ष नीति

बदलते हुए नये वैश्विक परिदृश्य के सन्दर्भ में गुटनिरपेक्ष की नीति को नया स्वरूप देना का प्रयास करते हुए कुछ विद्वान, विश्लेषको, पूर्व अधिकारियों द्वारा गुटनिरपेक्षता 2.0 नामक प्रपत्र तैयार किया गया है जो कि दिल्ली स्थित शोध संस्थान सेंटर फार पॉलिसी रिसर्च द्वारा प्रकाशित किया गया है। इसमें लेखकों ने स्टेªटजिक ऑटोनॉमी (रणनीतिक स्वायतत) शब्द का प्रयोग करके गुटनिरपेक्ष को और अधिक प्रभाही बनाने का प्रयास किया गया है। इसमें भारत को उभरती अर्थव्यवस्थाओं के साथ सबधं सुधारने का नीतिगत सुझाव दिया गया है। इसमें यह सुझाव दिया गया है कि भारत चीन से लगे अपने उत्तरी सीमाओं पर दृढ़ता का रूख अपनाये। इसमें देश के अन्दर

शासन के कमियों की तरफ भी ध्यान दिलाया गया है। इस प्रपत्र में यह ध्यान दिलाया गया है कि विश्व आज जिन समस्याओं का सामना कर रहा है उससे निपटने के लिए भारत को अपनी नेतृत्व क्षमता दिखानी चाहिए। इस रिर्पोट का शिर्षक महत्वपूर्ण रूप से इस बात को इंगित कर रहा है कि गुटनिरपेक्षता भारतीय कुट नीति का एक गम्भीर एवं खास हिस्सा अभी भी है।

संक्षेप में हम यह कह सकते है कि भारत के विदेश नीति के आधार के रूप में गुटनिरपेक्षता की नीति अब भी प्रासंगिक है। भारत के सुरक्षा परिषद् के सदस्य बनने का लक्ष्य बिना गुटनिरपेक्ष आन्दोलन जैसे बड़े मंच के सहायता के संभव नही हैं साथ ही भारत को पाँच महाशक्तियों के साथ भी सबधं अच्छे बनाकर रखने होगें। भारत का गुटनिरपेक्ष आन्दोलन को और अधिक प्रभावी बनाने का प्रयास भी करना चाहिए। इसके लिए वह गुटनिरपेक्षता की नीति के लिए नया रोडमैप बना सकता है। साथ ही सदस्यों देशों के आन्तरिक मतभेदों को दुर करने के प्रयास भी कर सकता है। भारत को सदस्यों देशों का वैश्विक शासन से जुड़े हुए मुद्दों तथा मतभेदों को दुर करने का प्रयास करना चाहिए। साथ ही भारत को गुटनिरपेक्ष आन्दोलन के गरीबी उन्मुलन, शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, आपदा प्रबंधन जैसे प्रोजेक्टों को आर्थिक मद्द भी मुहैया करानी चाहिए। भारत इतना सशक्त है कि वह गुटनिरपेक्ष आन्दोलन को और अधिक प्रभावी बना सके। यह भारत के राष्ट्रीय हित के अभिवृद्वि में सहायक भी होगा।

16.**9**. अभ्यास प्रश्न

भारतीय विदेश नीति मे गुटनिरपेक्षता नीति का तात्पर्य –

A. राष्ट्रों के बीच एक मध्यस्थ के रूप में कार्य करना **B**. महशक्तियों के गुट राजनीति में गैर-भागीदारी

C. पड़ोसी देशो के साथ सहयोग **D**. सारे देशो का पक्ष लेना

पंचशील समझौता किन देशो के बीच हुआ था

A. भारत और म्यांमार **B**. भारत और पाकिस्तान **C**. भारत और चीन **D**. भारत और नेपाल

पहला गुटनिरपेक्ष शिखर सम्मेलन किस शहर में आयोजित किया गया था-

A.हवाना **B**.जकार्ता **C**.बेलग्रेड **D**.नई दिल्ली

पहला गुटनिरपेक्ष शिखर सम्मेलन कब आयोजित किया गया था

A.1961 **B**.1964 **C**.1970 **D**.1973

5.11 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अंतर्गत हम लोगो ने गुटनिरपेक्षता की नीति की अवधारणाए इसके एक आंदोलन के रूप मे जन्म के कारण तथा इसके विकास के विभिन्न चरणो का अध्यन किया स साथ ही हमने भारत के विदेश नीति के एक आवश्यक पहलू के रूप मे इस अवधारणा का विश्लेषण भी किया स गुटनिरपेक्ष आंदोलन दो वैश्विक घटनाक्रम के संदर्भ में उभरा था. पहला तीसरी दुनिया के देशो का उपनिवेशवादी शासन से मुक्त होना और विश्व के दो माहाशक्तियों के अमेरिका और सोवियत संघ के बीच शीत युद्ध का होना स इसी संदर्भ मे गुटनिरपेक्षता का अर्थ एवं उद्देश्य भी स्पष्ट हो जाता है क्योकि गुटनिरपेक्षता की नीति शीत युद्ध और उससे उपजे गुटो की राजनीति से दूर रहते हुए अपनी विदेश नीति का स्वतन्त्र रूप से पालन करने के नजरिए को दर्शाता है। दूसरे शब्दो मे गुटनिरपेक्षता का जन्म विशिष्ट राजनीतिकए आर्थिक सामरिक तथा स्थानीय प्रस्थित्यों के संदर्भ मे हुआ था। गुटनिरपेक्षता की नीति ने अपने शुरवाती दौर मे अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाईएविशेषकर संयुक्त राष्ट्र संघ मे। आगे चलकर शीतयुद्ध के समाप्ति और एक ध्रुवीय विश्व व्यवस्था के कारण आलोचको ने इसे अप्रासंगिक बताना शुरू कर दिया स परंतु यह विचार उचित नहीं है क्योकि निःसन्देह शीतयुद्ध का संदर्भ परिवर्तित हो गया है लेकिन आज भी विश्व

गरीब और अमीर दो भागो मे विभाजित है स ऐसे अनेकों कारण आज भी विद्यमान है जिनके लिए गुटनिरपेक्षता की नीति का पालन अपरिहार्य है। उदाहरणस्वरूप संयुक्त राष्ट्र संघ का लोकतांत्रिकरणए वैश्विक आतंकवादएमानवाधिकारएविकास एवंम नारी उन्मुक्तिए पर्यावरण संरक्षण इत्यादि स और इसी कारण भारत आज भी इस आंदोलन का प्रबल समर्थन कर रहा है स आवश्यकता इस बात की है इस आंदोलन को बदलते वैश्विक संदर्भ पुनः परिभाषित की जाय ताकि वैश्विक न्याय के इसके लक्ष्य को साकार किया जा सके |

5.12 शब्दावली

प्रस्तावना- परिचय,भूमिका इत्यादि

सामरिक- युद्ध.नीति.विषयकए रणनीति.संबंधी

उपनिवेशवाद- इसका अभिप्राय उस स्थिति से हैंए जिसमें कोई राष्ट्र अपनी राजनीतिक एवं सैनिक शक्ति का विस्तार अन्य राष्ट्रों पर कर नियंत्रण स्थापित कर वहां के संसाधनों का अपने हित में शोषण करता है स

तटस्थ- उदासीन

5.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.B, 2.C, 3.C 4.A

5.14 संदर्भ ग्रन्थ

1. Arun Mohanty (2012), "Nam's Relevance in the Emerging Multipolar World and India", *Mainstream*, 50(37).

2.J.Bandyopadhyaya (2003), *The Making of India's Foreign Policy-Determinants, Institutions, Processes and Personalities*, New Delhi: Allied Publishers Pvt. Limited.

3.Muhammad Badiul Alam (Fall 1977),"The Concept of Non - Alignment: A Critical Analysis", *World Affairs*, 140(2): 166-185

4.Palmer and Parkins (2005), *International Relations-The World Community in Transition*, New Delhi: A.I.T.B.S. Publishers and Distributers.

5. Rao, P.V. Narasimha (2009), "Nehru and Non-alignment", *Mainstream*, 47(24).

5.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.Dixit, J. N.(200),*India's Foreign Policy*, New Delhi: Picus Books

2.Rajan, M.S.(1990), *Non-alignment and Non-aligned Movement: Retrospect and Prospect*, New Delhi : Vikas Publishing House Pvt Ltd.

3.Appadorai, A., M.S. Rajan (1985), *India's Foreign Policy and Relations*, New Delhi: South Asian Publishers.

5.16 निबंधात्मक प्रश्न

1.भारत की गुटनिरपेक्षता की नीति का आलोचनात्मक समीक्षा करें।

2.शीत युद्ध के पश्चात भारत की गुटनिरपेक्षता की नीति की प्रासंगिकता का परीक्षण करें।

इकाई – 06 : भारत की विदेश नीति

इकाई की संरचना

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 विदेश नीति की अवधारणा

6.4 भारतीय विदेश नीति की अवधारणा

6.5 विदेश नीति के निर्धारक तत्व

6.5.1 राष्ट्र का आकर

6.5.2 भूगौलिक तत्व:

6.5.3 आर्थिक विकास

6.5.4 तकनीकी विकास

6.5.5वैचारिक तत्व

6.5.6 इतिहास और परम्परा

6.5.7 राष्ट्रीय हित

6.5.8 सैनिक तत्व

6.5.9 नेतृत्व-व्यक्तित्व

6.5.10 भारतीय समाज

6.6 भारतीय विदेश नीति की विशेषताए

6.6.1 गुट निरपेक्षता की नीति

6.6.2 विश्व शांति की नीति

6.6.3 पंचशील सिद्धांत

6.6.4 साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद का विरोध

6.6.5 प्रजातीय विभेद का विरोध

6.6.6 सयुक्त राष्ट्र संघ में भारत का विश्वास

6.7 भारत एक उभरती शक्ति के रूप में

6.7.1 भौगोलिक कारक

6.7.2 आर्थिक कारक

6.7.3 सैनिक कारक

6.7.4 विज्ञान एवं टेक्नोलॉजी

6.7.5 ऊर्जा

6.8 सारांश

6.9 शब्दावली

6.10 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

6.11 संदर्भ ग्रन्थ

6.12 सहायक - उपयोगी पाठ्य सामग्री

6.13 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

भारत विश्व में एक विस्तृत भूभाग और विशाल जनसख्या वाला देश है | अत : इसकी विदेश नीति का विश्व की राजनीति पर गहरा प्रभाव पड़ता है | स्वतंत्रता से पूर्व भारत की कोई विदेश नीति नही थी क्योकि भारत ब्रिटिश सत्ता के अधीन था, परन्तु विश्व मामलों में भारत की एक सुदीर्घ परम्परा रही है | इसका सांस्कृतिक अतीत अत्यन्त गौरवमय रहा है | न केवल पड़ोसी देशो के साथ, अपितु दूर - दूर के देशो के साथ भी भारत का सांस्कृतिक एवं व्यापारिक आदान-प्रदान होता रहा है | आज भी अनेक पड़ोसी देशो पर उसकी सांस्कृतक छाप स्पष्ट दिखायी पड़ती है | भारत 15 अगस्त 1947 को स्वतंत्रता हुआ और अपनी स्वतंत्रता के साथ ही विश्व का सबसे बड़ा प्रजातांत्रिक देश बन गया |

6.2 उद्देश्य

इस इकाई के अंतर्गत हम मुख्यत: विदेश नीति की अवधरणा, इसका अर्थ, भारतीय विदेश नीति के निर्धारक तत्व और बदलते परिवेश में भारतीय विदेश नीति पर पड़ने वाले प्रभावों तथा विदेश नीति को प्रभावित करने वाले बाह्य कारको का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे, वैश्वीकरण के दौर में भारतीय विदेश नीति कहा तक सफल रही है यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है |

इस इकाई को पढ़ने और समझने के पश्चात हम :-

- विदेश नीति की अवधारणा से परिचीत हो सकेंगे |
- बदलते परिवेश में भारतीय विदेश नीति कहा तक सफल रही है से परिचय हो पाएंगे |
- भारतीय विदेश नीति को प्रभावित करने वाले कारको को जान सकेंगे |
- भारतीय विदेश नीति की मूलभूत विशेषताओ के महत्व को समझ सकेंगे |

6.3 विदेश नीति की अवधारणा

अंतर्राष्ट्रीय संबंधो का निर्धारण प्राय: विदेश नीति के आधार पर होता है | प्रत्येक देश पहले अपने राष्ट्रीय हितों की समीक्षा करता है और फिर उन सिध्दांतों को निश्चित करता है जिन पर उसकी विदेश नीति आधारित होगी | किसी भी देश की विदेश नीति उसके राजनीतिक उद्देश्यों और महत्वपूर्ण कारको पर अधारित होती है जो यह स्पष्ट करता है कि कोइ देश विश्व के अन्य देशों और अन्य गैर - राजकीय संस्थाओं के साथ किस तरह के सम्बन्ध स्थापित करेगा | देश की विदेश नीति को प्रभावित करने वाले ये कारक घरेलु और बाह्य दोनों तरह के होते है| विदेश नीति का निर्माण प्राय: किसी देश के राष्ट्रीय हितों, राष्ट्रीय सुरक्षा, विचारधारा तथा आर्थिक विकास को सुरक्षित करने के लिए किया जाता है | सामान्यता: विदेश नीति के निर्माण का उत्तरदायित्व सरकार के अध्यक्ष एवम विदेश मंत्री का होता है परन्तु इसकी निर्माण प्रक्रिया में कई प्रकार के आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक समूहों वर्गो अथवा वर्ग हितो के दबाव कार्य कर रहे होते है |

6.4 भारतीय विदेश नीति की अवधारणा

जनसंख्या की दृष्टि से भारत संसार का दूसरे नंबर का सबसे बड़ा देश है जिसमे भिन्न - भिन्न जाति, धर्मो और भाषाओ वाले लोग रहते है | ऐसी व्यापक विभिन्नता वाले देश में एकता लाना और इसे प्रजातांत्रिक तरीके से प्रबंधित करना अपने आप में एक उपलब्धि है | 1947 के बाद, अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में भारत एक स्वतंत्र देश के रूप में उभरा और अपनी स्वतंत्रता के साथ ही भारत ने अपनी स्वतंत्र विदेश नीति का निर्माण किया| भारतीय विदेश नीति पर भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू की गहरी छाप है | उनके द्वारा निर्धारित विदेश नीति के मूलभूत सिद्धान्त आज भी उतने ही महत्वपूर्ण है | भारत की विदेश नीति की रूप रेखा को स्पष्ट करते हुए जवाहर लाल नेहरू ने सितम्बर 1946 में यह कहते हुए उद्घोष किया था कि "विदेशिक संबंधों के क्षेत्र में भारत एक स्वतंत्र नीति का अनुसरण करेगा और गुटो की खींचतान से दूर रहते हुए संसार के समस्त पराधीन देशों को आत्म निर्णय का अधिकार प्रदान करने तथा जातीय भेदभाव की नीति का दृढ़तापूर्वक उन्मूलन करने का प्रयत्न करेगा |" नेहरू का यह कथन आज भी भारत की विदेश नीति एक आधार स्तम्भ है | शीत युद्ध युध्द के समय भारत ने गुट - निरपेक्षता की नीति अपनाई तथा दोनों महाशक्तियों के संदर्भ में जहाँ तक हो सका राष्ट्रीय हितों के अनुरूप अपनी स्वायत विदेश नीति का अनुसरण किया |

भारत की विदेश नीति की मूल बातों का समावेश हमारे संविधान के अनुच्छेद 51 में कर दिया गया है जिसके अनुसार राज्ये अन्तर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा को बढ़ावा देगा, राज्य राष्ट्रों के मध्ये न्याय और सम्मान पूर्वक संबंधो को बनाये रखने का प्रयास करेगा, राज्य अन्तर्राष्ट्रीय कानूनो तथा संधियों का सम्मान करेगा तथा राज्य अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ो को पंच फैसलों द्वारा निपटाने की नीति को बढ़ावा देगा |

परन्तु बदलते परिवेश एवं समय के साथ भारतीय विदेश नीति में बहुत से बदलाव आये है | जिसके आधार पर भारत की विदेश नीति को तीन अलग - अलग ऐतिहासिक चरणो में बांटा जा सकता है। पहला चरण 1947 से 1962 तक, दूसरा चरण 1962 से 1991 तक और तीसरा 1991 से वर्तमान समय तक | पहली अवधि में भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू के संरक्षण के अंतर्गत भारतीय विदेश नीति के सबसे आदर्शवादी चरण का गठन हुआ।

दूसरा चरण, (1962) भारत-चीन सीमा युद्ध में भारत की विनाशकारी हार के साथ शुरू हुआ, और इसके साथ ही भारतीय विदेश नीति में क्रमिक बदलाव आना शुरू हो गया था |

तीसरे चरण में शीत युद्ध के अंत और यथार्थवाद के सिद्धांतों को बारीकी से तराश कर एक और अधिक व्यावहारिक विदेश नीति की गोद लेने के साथ शुरू हुआ।

जब भारत स्वतंत्र हुआ उस समय विश्व परिदृश्य काफी बदल चूका था | यह समय शीत युद्ध का था और विश्व दो शक्ति गुटो में विभाजित हो गया था | पहला गुट पूंजीवादी विचारधारा से प्रभावित था जिसकी अध्यक्षता अमेरिका कर रहा था और दूसरा गुट साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित था और इसका अध्यक्ष सोवियत रूस था | भारत के प्रधान मंत्री नेहरू जी किसी भी गुट में शामिल नही होना चाहते थे जिसकी वजह से उन्होंने एक नई नीति अपनायी जिसे गुट - निरपेक्षता के नाम से जाना जाता है | गुट - निरपेक्षता भारतीय विदेश नीति की सबसे बड़ी विशेषता है इसका उद्देश्य बाहरी हस्ताक्षेप से राष्ट्रिय स्वतंत्रता को मुक्त रखना था | गुट - निरपेक्षता का अर्थ न तो तटस्थता न गैर-भागीदारी है और न ही पृथकतावाद था यह एक गतिशील अवधारणा थी जिसका मतलब अंतर्राष्ट्रीय मुद्दो पर स्वतंत्र रूप से खड़ा होना था |

परन्तु बदलते समय के साथ भारतीय विदेश नीति में कई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आये जैसे 1954-55 में पकिस्तान ने अमेरिका के प्रतिनिधित्व वाले सैनिक गठबंधन केंद्रीय संधि सहयोग की सदस्यता स्वीकार की तो भारत को सोवियत संघ की ओर रुख करना पड़ा। दूसरी तरफ पाकिस्तान में अमेरिका के अड्डो ने सोवियत संघ की चिता बड़ा दी जिसके परिणामस्वरूप सोवियत संघ की भारत में रुचि बढ़ने लगी | इसके साथ ही अमेरिका और पाकिस्तान के संबंधो में मजबूतिया आई और दूसरी तरफ पाकिस्तान और चीन के बीच सैनिक और राजनैतिक सन्धियां हुई जिससे पकिस्तान, 1965 के भारत - पाक युद्ध में चीन की सहायता प्राप्त करने में सफल रहा | वियतनाम युद्ध में व्यस्त होने की वजह से अमेरिका दोनों देशो के बीच कोई समझौता नही करवा पाया जिसका फायदा सोवियत संघ ने ताशकंद में भारत और पाकिस्तान के बीच समझौता करवा के शांति स्थापित करने का श्रेय प्राप्त किया | एक तरफ 1971 में भारत और सोवियत संघ के बीच एक मैत्री समझौता हुआ जिसके तहत भारत को न केवल सैनिक और तकनीकी सहायता मिली बल्कि भविष्य में होने वाले भारत पाक युद्ध में पूर्ण रानीतिक समर्थन भी मिला |

दूसरी तरफ अमेरिका ने 1971 के युद्ध में न केवल पाकिस्तान का साथ दिया बल्कि, भारत को चेतावनी दी और अपने 17वा फ्लीट के समुंद्री बड़े को बंगाल की खाड़ी की तरफ भेज दिया जो की भारत के लिए खतरा बन सकता था | परन्तु सोवियत संघ की मदद से भारत को इस युद्ध में भी विजय प्राप्त हुई | वास्तव में कश्मीर का मुद्दा तथा अमेरिका का पाक समर्थित दृष्टिकोण, भारत की गुट - निरपेक्ष नीति, भारत का सोवियत संघ के साथ नजदीकी संबंध, और भ्रारत का एन पी टी तथा सी टी बी टी पर हस्ताक्ष न करना ये कुछ ऐसे मुद्दे थे जिनके चलते भारत एवं अमेरिका में नजदीकी संबंध विकसित नही हो सके |

1991 में सोवियत संघ के विघटन से भारत ने सयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में बड़ी शक्ति रखने वाला अपना एक विश्वसनीय दोस्त खो दिया इसके साथ ही सोवियत यूनियन से मिलने वाली आधुनिक सैनिक टेक्नोलॉजी गारंटी भी समाप्त हो गई| सोवियत संघ के पतन से भारत की राज्य निर्देशित आर्थिक विकास की नीति को भी जबरदस्त धक्का लगा जिससे विदेश नीति के संदर्भ में भी गम्भीर खतरा उत्पन हो सकता था | भारत ने अपने आंतरिक आर्थिक संकट के कारण उदारीकरण तथा निजीकरण की नीति अपनाई | जिससे भारत का झुकाव पश्चिमी देशो की तरफ बढ़ाने लगा | 1999 का कारगिल युद्ध और 2001 में 9/11 की घटना के उपरांत अमेरिका में आतंकवाद के विरुद्ध भारत और अमेरिका का रुख| मार्च 2006 में हुआ भारत-अमेरिका परमाणु समझौता | यह सबित करता है की भारत का झुकाव पश्चिमी देशो की तरफ ज्यादा रहा | परन्तु इसके बावजूद भी भारतीय विदेश नीति में कोई

विशेष परिवर्तन नहीं आया और यह कहना की भारत का झुकाव पश्चिमी देशो की तरफ रहा है यह पूरी तरह सही नही है क्योंकि आज भी भारत और रूस का संबंध उतना ही मजबूत है जितना पहले था, दिसम्बर 2014 में राष्ट्रपति पुतिन द्वारा की गई भारत यात्रा और संधि समझौते इस बात का प्रमाण है कि भारत, अमेरिका तथा रूस दोनों देशो से आर्थिक सहायता प्राप्त करने का इच्छुक है |

6.5 विदेश नीति के निर्धारक तत्व

भारतीय विदेश नीति को निर्धारित करने वाले निम्नलिखित कारक है :-

6.5.1 राष्ट्र का आकर

राष्ट्र का आकार विदेश नीति का एक महत्वपूर्ण तत्त्व होता है | आकार, उस मनोवैज्ञानिक तथा परिचालक वातावरण को प्रभावित करता है जिसमें नीति - निर्माताओं तथा लोगों ने प्रतिक्रिया करनी होती है | बड़े आकार वाले राज्य से छोटे आकार वाले राज्य की विदेश नीति भिन्न होती है | बड़े आकार वाले राज्य की विदेश नीति निश्चय ही अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में बड़ी शक्ति बनने की इच्छा द्वारा संचालित होती है | अमरीका, रूस, जर्मनी, फ्रांस, चीन, भारत तथा अन्य सभी राज्यों की विदेश नीतियों में आकार एक महत्वपूर्ण तत्व है | बड़े आकार वाले राज्य सदैव सक्रिय विदेश नीति बनाते है, जिसके द्वारा अंतर्राष्ट्रीय संबंधो में प्रमुख भूमिका निभने का प्रयास करते है |

भारत अपने आकार के कारण दक्षिण एशिया का सबसे बड़ा देश है | भारत की केवल अफगानिस्तान को छोड़कर सार्क के सभी देशो के साथ साझी सीमाएँ हैं और अपने आकार एवं आबादी की दृष्टि से यह इन सभी देशो में अपनी महत्वपूर्ण स्थिति का लाभ उठा रहा है | इसके आलावा, भारत की विश्व के सभी देशो में एक विशिष्ट स्थिति है | क्योकि यह सबसे बड़ा लोकतान्त्रिक देश है | यह क्षेत्र की दृष्टि से विश्व का सातवा बड़ा देश है और विभिन्न भाषाओ एवं प्रादेशिक विविधताओं वाला विश्व में दूसरा सबसे अधिक आबादी वाला देश है | ये सभी विशेषताएँ वैशिवक शक्तियों द्वारा भारत को भी इसमें शामिल करने के लिए उन्हें प्रभावित करती हैं |

6.5.2 भूगौलिक तत्व:

किसी भी विदेश नीति के निर्माण में उस देश की भौगोलिक परिस्थितियां प्रंमुख और निणार्यक भुमिका निभाती है| **के. एम. पणिक्कर** के अनुसार, "जब नीतियों का लक्ष्य प्रादेशिक सुरक्षा होता है तो उसका निर्धारण मुख्य रूप से भौगोलिक तत्व से हुआ करता है | **नेपोलियन बोनापार्ट** ने भी कहा था "की किसी देश की विदेश नीति उसके भूगोल द्वारा निर्धारित होती है |" **डा. एयर्स** का मत भी है की "समझोते तोड़े जा सकते है, सन्धियां भी एक तरफा समाप्त की जा सकती है, परन्तु भूगोल अपने शिकार को कसकर पकड़े रहता है |" भारत के संदर्भ में उपर्युक्त बाते सही है | भारत की विदेश नीति के निर्धारण में भारत के आकार, एशिया में उसकी विशेष स्थिति तथा दूर - दूर तक फैली हुई भारत की सामुद्रिक और पर्वतीय सीमाओ का महत्वपूर्ण योगदान रहा है | नेहरू g ने 1949 में कहा था की भारत की स्थिति अत्यंत महत्वपूर्ण है जिसके कारण कोई भी देश भारत की उपेक्षा नही कर सकता | भारत उत्तर में साम्यवादी गुट के दो प्रमुख देशो - पूर्व सोवियत संघ और चीन के बिलकुल समीप है | भारत के एक छोर पर पाकिस्तान है तो दूसरे छोर पर उसकी सीमा समुद्रो से घिरी हुई है | स्वतंत्रता - प्राप्ति के बाद अपनी लम्बी सीमाओ की सुरक्षा भारत के लिए मुख्ये चिंता का विषय था | यदि भारत साम्यवादी गुट में सम्मिलित हो जाता तो उसकी समुद्री सीमा पर खतरा उत्पन्न हो जाता, क्योकि पश्चिमी गुट का अपनी नौ-शक्ति के कारण हिन्द महासागर

पर दबदबा था | यदि भारत पश्चिमी गुट में सम्मिलित होता तो उत्तरी सीमा पर साम्यवादी राष्ट्र उसके लिए स्थिायी खतरा उत्पन्न कर सकते थे | इन भौगोलिक परिस्थितियों में विदेश नीति की दृष्टि से भारत के लिए यह उचित है की वह दक्षिण में समुद्री सीमा सुरक्षित बनाये रखने के लिए ब्रिटेन से मैत्री सम्बन्ध बनाये रखे और उत्तर में अपनी स्थिति सुरक्षित रखने के लिए साम्यवादी देशो से अनुकूल संबंध बनाये रखने की चेष्टा करे |

हिमालय और हिन्द महासागर दोनों ही भारत की सुरक्षा में बहुत बड़ी भूमिका अदा करते है | हिमालय को भारत का प्रकृतिक सुरक्षा पहरी के रूप में देखा जाता है और दूसरी ओर हिन्द महासागर से जुडी लगभग 3500 कि. मी. की समुंद्री सीमा कि सुरक्षा के लिए नई और मजबूत नौ सेना की जरूरत है | ताकि वह महाशक्तियों की प्रतिस्पर्धा को हिन्द महासागर में रोक सके | हिन्द महासागर में भारत का सबसे बड़ा हित यह है कि वह 'स्वतंत्रता एवं शांति का क्षेत्र' बना रहे | अतः भारत ने डियागो गार्शिया में अमरीकी सैनिक अड्डो का उतना ही विरोध किया जितना की वह इस क्षेत्र में बढ़ते हुए सोवियत प्रभाव का विरोधी रहा है | भारत की धारणा है कि इस क्षेत्र में महाशक्तियों की गतिविधिया बढ़ जाने से उसकी सीमाओं एवं व्यापार को खतरा उत्पन्न हो सकता है |

6.5.3 आर्थिक विकास

किसी भी देश की विदेश नीति में आर्थिक तत्व महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है | भारत की आर्थिक उन्नति तभी संभव थी जब अंतर्राष्ट्रीय शांति बनी रहे | आर्थिक दृष्टि से भारत का अधिकांश व्यापार पाश्चात्ये देशो के साथ था और पाश्चात्ये देश भारत का शोषण कर सकते थे | भारत अपने विकास के लिए अधिकतम विदेश सहायता का भी इच्छुक था | इस दृष्टिकोण से भारत के लिए सभी देशो के साथ मैत्री का बर्ताव रखना आवश्यक था और वह किसी भी एक गुट से बंध नही सकता था | गुटबंदी से अलग रहने के कारण उसे दोनों ही गुटो से आर्थिक सहायता मिलती रही, क्योकि कोई भी गुट नहीं चाहता था की भारत दूसरे गुट के प्रभाव - क्षेत्र में आ जाए |

स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय विदेश नीति के ये मुख्ये निर्धारक रहे जिसका विवेचन निम्नलिखित रूपों से किया जा सकता है :-

1.भारत ने गुटनिरपेक्षता की नीति अपनायी ताकि शांति को प्रोत्साहन देते हुए वह दोनों गुटो से आर्थिक सहायता प्राप्त करता रहे |
2.भारत जैसे विशाल और महान देश के लिए यह स्वभाविक था की वह ऐसी विदेश नीति का अनुसरण करता जिससे स्वयं के निर्णय शक्ति पर कोई विपरीत प्रभाव न पड़ सके |
3.भारत के नीति - निर्माताओं ने यह भली-भांति समझ लिया की उनका देश विश्व के पूंजीवादी और साम्यवादी शिविरों के साथ मित्रता स्थपित करके दोनों को अपनी और आकर्षित कर सकता है |

6.5.4 तकनीकी विकास

स्वतंत्रता के समय भारत एक पिछड़ा हुआ देश होने के साथ अविकसित प्रौद्योगिकी और निम्न स्तर का औद्योगीकरण था , जिसकी वजह से भारत तकनीकी विकास और औद्योगीकरण के लिए विकसित राष्ट्रों के आयात पर निर्भर करता था | परन्तु बाद में भारत ने धीरे -धीरे तकनीकी और औधोगिक विकास किया, भारतीय वैज्ञानिको ने तकनीकी में सफलता प्राप्त कर ली है | आज भारत तीसरी दुनिया के देशो में अपनी नई तकनीक और औधोगिक मॉल निर्यात कर रहा है | राकेट टेक्नोलॉजी, सैटेलाइट टेक्नोलॉजी, एटॉमिक टेक्नोलॉजी और बढ़ता हुआ औधोगिक उत्पादन इन सभी ने भारत की भूमिका को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर और ज्यादा बढ़ा दिया है | भारत

और विकसित राष्ट्रों के बीच आज भी बहुत बढ़ा अंतर है भारत आज भी विकासशील राष्ट्र है जो अपने विकास के लिए विकसित राष्ट्रों पर निर्भर करता है | अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संस्थाओ पर भारत की लगातार बढ़ती निर्भरता उसकी विदेश नीति की सफलता में एक बड़ा खतरा बन सकती है |

6.5.5 वैचारिक तत्व

भारत की विदेश नीति के निर्धारण में शांति और अहिंसा पर आधारित गाँधीवादी विचारधारा का भी गहरा प्रभाव दिखाई देता है | इस विचारधारा से प्रभावित होकर ही संविधान के अनुच्छेद ५१ में विश्व शांति की चर्चा की गई है | भारत के द्वारा हमेशा ही विश्व शांति और शांतिपूर्ण सह - जीवन का समर्थन तथा साम्राज्यवाद और प्रजातीय विभेद का घोर विरोध किया गया है | भारत ने लोकतान्त्रिक समाजवाद को अपनी शासन व्यवस्था का आधार बनाया है | भारत की विदेश नीति की नींव डालने वाले पं. जवाहरलाल नेहरू पाश्चात्य लोकतंत्रीय परम्परा से बहुत प्रभावित थे | वे पशिचमी लोकतंत्रवाद और साम्यवाद दोनों की अच्छाइयों को पसंद करते थे | इस प्रकार की समन्वयकारी विचारधारा ने गुट निरपेक्षता की नीति के विकास में योगदान दिया |

6.5.6 इतिहास और परम्परा

भारत की विदेश नीति के निर्धारण में ऐतिहासिक परम्पराओं का भी बडा योगदान रहा है | प्राचीनकाल से ही भारत की पहचान एक सहिष्णु और शांतिप्रिये देश के रूप में रही है | भारत ब्रिटिश उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद का शिकार हुआ लेकिन उसने स्वयं कभी भी किसी भी देश पर प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयत्न नही किया | भारत की यह परम्परा विदेश नीति में स्पष्ट दिखायी देती है |

हिन्दू सभ्यता का चरित्र और उसकी विशेषताए ; जैसे - शांति , समन्वय और सहिष्णुता की भावनाए हमारी विदेश नीति का बहुत बड़ा आधार है | 190 वर्षो के अंग्रेजी शासन का भी हमारी विदेश नीति के निर्धारण में बहुत बडा योगदान रहा है | देश में संसदीय प्रणाली, उदारवाद, अंग्रेजी भाषा का प्रयोग, प्रशासनिक ढाचा, आदि इसके प्रमाण है | ब्रिटिश साम्राज्यवाद का हमारा कटु अनुभव इसके मूल में है | भारत का शुरु से ही पाकिस्तान के साथ शत्रुतापूर्ण सम्बन्ध रहा | पाकिस्तान ने भारत पर एक के बाद एक आक्रमण किए और प्रतेक युद्ध में भारत ने पाक को हराया लेकिन भारत ने कभी भी उस पर अपनी शर्ते आरोपित नहीं की | साम्यवादी चीन ने भारत के प्रति शत्रुतापूर्ण रवैया अपनाया और १९६२ में भारत पर आक्रमण करके इसके विशाल भू - भाग पर अधिकार कर लिया इसके बावजूद भारत चीन के साथ सम्बन्ध सुधारने के लिए प्रयत्नशील है | इसके साथ ही दक्षिण - पूर्व एशियाई राष्ट्रों के साथ सांस्कृतिक व आध्यात्मिक सम्बन्ध भी ऐतिहासिक अनुभवों के परिणाम है |

6.5.7 राष्ट्रीय हित

किसी भी देश की विदेश नीति प्राय: राष्ट्रीय हित को ध्यान में रख कर निर्धारित होती है स्वयं नेहरू ने भी संविधान सभा में कहा था की "किसी भी देश की विदेश नीति की आधारशीला उसके राष्ट्रीय हित की सुरक्षा होती है और भारत की विदेश नीति का ध्येय यही है" | भारत के भी अपने राष्ट्रीय हित है जिनकी छाप भारत की विदेश नीति पर स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है | भारत के दो प्रकार के राष्ट्रीय हित है स्थायी हित जैसे की अखंडता और सुरक्षा तथा दूसरा अस्थायी राष्ट्रीय हित जैसे खाधान्न, विदेश पूंजी, तकनीकी विकास आदि |

यदा - कदा भारत की विदेश नीति में विरोधाभास दिखाई देता है, यह इस बात को सिध्द करता है की भारत की विदेश नीति में राष्ट्रीय हितो का सबसे बड़ा स्थान है | राष्ट्रीय हितो के सन्दर्भ में ही भारत ने पशिचमी एशिया के

संकट में इजरायल के बजाय अरब राष्ट्रों का सदैव समर्थन किया | गुट - निरपेक्ष होते हुए भी ९ अगस्त 1971 को सोवियत संघ के साथ एक 20 वर्षीय संधि की | भारत की विदेश नीति दूसरे देशो के आतंरिक मामलो से हस्तक्षेप के विरूद्ध है, परन्तु अपने राष्ट्रीय हितो को ध्यान में रखते हुए ही भारत ने अफगानिस्तान में सोवियत हस्तक्षेप की भर्त्सना नहीं की| भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ के १४ जनवरी १९८० के उस प्रस्ताव के मतदान में हिस्सा ही नहीं लिया जिसमे अफगानिस्तान से विदेशी सेनाओं तत्काल बिना शर्त और पूर्ण वापसी की बात कही गयी थी | भारत ने ५ जून, 1987 को मानवीय आधात पर श्रीलंका में जाफना की पीड़ित जनता का लिए हवाई मार्ग से रहत सामग्री पहुंचायी | स्वतंत्रता के बाद के इतिहास में यह पहला अवसर था जब भारत ने किसी देश की अंतर्राष्ट्रीय सीमा का उल्ल्ंघन किया | निशस्त्रीकरण का प्रबल समर्थक होते हुए भी भारत ने अणु अप्रसार संधि (N.P.T.) तथा व्यापक परीक्षण प्रतिबंध संधि (CTBT) पर हस्ताक्षर करने से साफ इंकार कर दिया क्योकि भारत का नाभिकीय विकल्प राष्ट्रीय सुरक्षा का एक अंग है |

6.5.8 सैनिक तत्व

नवोदित भारत सैनिक दृष्टि से निर्बल था अतः विदेशी नीति के निर्धारकों ने यह उपयुक्त समझा की दोनों गुटो की सहानुभूति अर्जित की जाये | यह तभी संभव था जब गुटनिरपेक्षता और सह - अस्तित्व की नीति अपनाई जाती | अपनी रक्षा के लिए अनेक दृष्टियों से वह पूरी तरह विदेशो पर निर्भर था | भारत की दुर्बल सैनिक स्थिति उसे इस बात के लिए बाध्य करती रही की विश्व की सभी महत्वपूर्ण शक्तियों के साथ मैत्री बनाये राखी जाये | प्रारम्भ से ही भारत राष्ट्रमण्डल का सदस्य बना रहा, उसका भी यही राज था कि सैनिक दृष्टि से भारत ब्रिटेन पर ही निर्भर था |

6.5.9 नेतृत्व-व्यक्तित्व

भारत की विदेश नीति पर वैयक्तिक तत्वों का विशेषकर पंडित नेहरू के व्यक्तित्व का व्यापक प्रभाव रहा | पंडित जवाहरलाल नेहरू न केवल भारत के प्रधान मंत्री थे, अपितु विदेश मंत्री भी थे उनक उनके व्यक्तित्व की छाप विदेश नीति के हर पहलू पर झलकती है | वे साम्राज्यवाद, उपनिवेशवाद, और फासीवाद के प्रबल विरोधी तथा अंतर्राष्ट्रीय विवादों के शांतिपूर्ण समाधान के प्रबल समर्थक थे | वे मैत्री, सहयोग और सहअस्तित्व की विचारधारा के पक्ष पाती थे | नेहरू जी महाशक्ति के संघर्ष में भारत के लिए ही नही अपितु विश्व के समस्त नवस्वाधीन राष्ट्रों के लिए असंलग्नता की नीति को सर्वोत्तम मानते थे | अपने इन्ही विचारो के अनुरूप उन्होंने भारत की विदेश नीति को ढाला और आज इसका जो कुछ भी रूप है वह पंडित नेहरू के विचरो का ही मूर्त रूप है |

लेकिन स्वयं नेहरू इसे नहीं मानते थे | उन्होंने एक बार कहा था की "भारत की विदेश नीति को नेहरू नीति कहना सर्वथा भ्रांतिपूर्ण है | यह इसलिए गलत है की मैंने केवल इस नीति का शब्दों में प्रतिपादन किया है, मैंने इसका अविष्कार नहीं किया | यह भारतीय परिस्थितियों की उपज है | वैयक्तिक रूप से मेरा यह विश्वास है की भारत के वैदेशिक मामलो की बागडोर यदि किसी अन्य व्यक्ति या दल के हाथ में होती तो उसकी नीति वर्तमान नीति से बहुत भिन्न न होती |" पंडित नेहरू के अतिरिक्त राष्ट्रपति डॉ. राधाकृष्णन, विदेश मंत्री वी. के. कृष्ण मेनन और के. एम. पणिक्कर भी उन विशिष्ट व्यक्तियों में थे जिन्होंने भारत की विदेश नीति को प्रभावित किया |

6.5.10 भारतीय समाज

सामाजिक स्तर पर भारत एक बहुलवादी समाज रहा है जिसमें, बिभिन्न जातियां, उपजातियां, वर्ग, विचारधारायें, भाषायें, धर्म, नस्लों आदि का सम्मिश्रण रहा है | राजनीतिक आर्थिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक सभी दृष्टिकोणों

से यह भिन्नता का देश रहा है | अत: भारत की इस बिभिन्नता में एकता बनाये रखने के लिए भारत को ऐसी विदेश नीति अपनाने की आवश्यकता थी जो सभी राष्ट्रीयताओं अथवा उप - राष्ट्रीयताओं को संतुष्ट कर सके | परिणामस्वरूप राष्ट्रीय हिट को ध्यान में रखते हुए भारत ने अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर बिभिन्न राज्यों में समझौता, तालमेल तथा सहयोग की नीति अपनाने में जोर दिया | जहा भारत पश्चिम की उदारवादी प्रजातांत्रिक परम्पराओं से प्रभावित हुआ, वह यह मार्क्सवादी समाज की उपलब्धियों का भी प्रशंसक रहा और अपनी समझौतावादी नीति के अनुरूप दोनों को उचित सम्मान दिया |

6.6 भारतीय विदेश नीति की विशेषताए

किसी भी देश की विदेश नीति के निर्माण में अनेक तत्वों का योगदान होता है| भारत की विदेश नीति के निर्माण में भी अनेक तत्वों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है | ये तत्व या कारक आंतरिक वातावरण और अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों, दोनों से संबंधित है जिनका विस्तृत वर्णन उपर्युक्त किया जा चूका है | भारत के नीति निर्माताओं ने कुछ विदेश नीति से संबधित कुछ सिद्धांतों एवं उद्देश्यों को भी निशिचत किया जिन पर भारत के अंतर्राष्ट्रीय संबंध आधारित थे |भारत की विदेश नीति का विश्लेषण करने पर निम्नलिखित विशेषताए भारतीय विदेश नीति में दिखाई पड़ती है |

6.6.1 गुट निरपेक्षता की नीति

विश्व राजनीति में भारतीय दृष्टिकोण मुख्यत गुट निरपेक्षता का रहा है | इसे भारतीय विदेश नीति का सार कहा जाता है | राष्ट्र के रूप में भारत का जन्म हुआ | स्वतंत्र भारत के समक्ष यह विकट समस्या थी की वह किस गुट में शामिल हो और किसमे नहीं? भारत के समक्ष दो मार्ग थे - या तो किसी एक गुट के साथ मिलकर संसार के संघर्ष क्षेत्र को और अधिक व्यापक करने में अपना योगदान दे या फिर गुटबन्दियों से दूर रहकर दो विरोधी गुटों में मेल मिलाप कराने का यत्न करे | बहुत विचार विमर्श के पश्चात भारत ने किसी गुट में शामिल न होना स्वीकार किया, गुटबंदी में शामिल होना न तो भारत के हित में था और न ही संसार के, अत: भारत ने दोनों गुटो से अलग रहने की जो नीति अपनाई उसे गुट निरपेक्षता की नीति के नाम से जाना जाने लगा जिसके अंतर्गत भारत अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के प्रश्नो पर गुट निरपेक्षता की नीति का अनुसरण करते हुए उनकी वास्तविकता का ध्यान रखते हुए स्वतंत्रता रूप से सभी प्रश्नो पर अपना निर्णय देता है | स्वतंत्रता से लेकर आज तक भारत गुट निरपेक्षता की नीति का अनुसरण करता आ रहा है |

6.6.2 विश्व शांति की नीति

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात विश्व शांति की स्थापना के लिए सदातत्पर रहना और इस महान कार्य में योगदान करना भारतीय विदेश नीति का एक मूल तत्व बन गया है भारत ने इस तरह अपनी विदेश नीति का निर्धारण करना शुरू किया जिनसे विश्व की शांति सुरक्षित रहे इसी उद्देश्य से प्रेरित हो कर उस ने गुट निरपेक्षता की नीति का अनुसरण किया क्योकि गुटबंदी और हथियारों की होर को बढ़ावा देना विश्व शांति के लिए बहुत अधिक खतरनाक है विश्व शांति के लिए ही भारत ने निशस्त्रीकरण का जबरजस्त समर्थन किया क्योकि खतरनाक आणविक हथियारों का अस्तित्व तीसरे विश्व युद्ध का कारण बन सकता है इसलिए 1953 में जब आणविक परीक्षण रोक संधि हुई तो भारत वह पहला देश था जिसने अविलम्ब इस संधि पर हस्ताक्षर किये आज भी इस दृष्टिकोण में कोई परिवर्तन नही आया है भारत ने हर उस निर्णय की आलोचना की जो की विश्व शांति के लिए खतरा उत्पन्न कर सकता है |

6.6.3 पंचशील सिद्धांत

पंचशील सिध्दांतों को भारत की विदेश नीति की आधारशिला कहा जाता है २९ जून १९५४ को अपनाये गए सिध्दान्त ने भारतीय विदेश नीति को एक नई दिशा प्रदान की ये सिद्धांतनिम्नलिखित है :-

1.एक दूसरे की प्रादेशिक अखण्डता और संप्रभुता का सम्मान करे

2.एक - दूसरे राज्य पर अनाक्रमण

3.अहस्तक्षेप की नीति

4.पारस्परिक सहयोग और समानता का व्यवहार

5.शांतिपूर्ण सहअस्तित्व

इन सिध्दांतों का निर्धारण तिब्बत के संबंध में भारत और चीन के बीच हुए एक समझोते में किया गया था जिसमे चीन और भारत ने आपसी संबंधो के संचालन के लिए इन पांच सिध्दांतों के पालन का निश्चय किया, की वे एशिया तथा विश्व के अन्य देशो के साथ अपने संबंधो में भी इनका अनुसरण करेगा |

6.6.4 साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवाद का विरोध

भारत स्वयं एक लम्बे अरसे तक उपनिवेशवाद का शिकार रहा यही कारण था की विश्व में जहां कहीं भी राष्ट्रवादी आंदोलन विदेशी सत्ता से मुक्ति पाने के लिए हुए भारत ने खुल कर उसका समर्थन किया साम्राज्यवादी राष्ट्रों की कटु आलोचना की | इण्डोनेशिया पर जब हॉलैण्ड ने दूरसे विश्व युद्ध के बाद पुनः अपनी सत्ता स्थापित करने का प्रयास किया तो भारत ने इसका घोर विरोध किया | इसके साथ - साथ भारत सयुक्त राष्ट्र संघ में भी उपनिवेशवाद के विरुद्ध बराबर आवाज उठाता रहा है | भारत इस बात पर भी जोर देता रहा है की स्वशासन करने वाले देशो का शासन राष्ट्र संघ के चार्टर के सिध्दांतों के अनुसार किया जाना चाहिए इसमें कोई संदेह नही है की साम्राज्यवाद को जड़ से हिलाने में भारत बहुमूल्य योगदान रहा है |

6.6.5 प्रजातीय विभेद का विरोध

भारत सभी लोगो को समान मानता है तथा उनमे रंगभेद के आधार पर भेदभाव का पूर्ण विरोध करता है | अपनी इसी वैदेशिक नीति के शिध्दांत के आधार पर ही भारत ने दक्षिण अफ्रीका के नस्लवादी शासन की कड़ी आलोचना की जहा पर लोगो के मध्य गोर और काले का विभेद मौजूद था | इसके विरोध में भारत ने न केवल दक्षिण अफ्रीका के विरुद्ध कुछ प्रतिबंध लगाये बल्कि कूटनीतिक संबंधो का विच्छेद भी किया | भारत के प्रयास के फलस्वरूप ही सयुक्त राष्ट्र संघ और विश्व के अन्य राष्ट्रों ने दक्षिण अफ्रीका की सरकार को इस नीति को छोड़ने के लिए बाध्य किया|

6.6.6 सयुक्त राष्ट्र संघ में भारत का विश्वास

भारत शुरू से ही सयुक्त राष्ट्र संघ का प्रबल समर्थक रहा है | सयुक्त राष्ट्र संघ की विचारधारा का समर्थन करने तथा इसके क्रियाकलापों में सक्रियता, सकारात्मक तथा रचनात्मक रूप में भाग लेना भारतीय विदेश नीति का महत्वपूर्ण सिद्धांतरहा है | भारत ने अंतराष्ट्रीय झगड़ो का निपटारा हमेशा ही सयुक्त राष्ट्र के तत्वाधान में करने की नीति अपनायी | इसकी संबंध संस्थाओ में भी भारत की सक्रिय भागीदारी रही है | अंतर्राष्ट्रीय श्रम संघ तथा सयुक्त राष्ट्र आर्थिक, वैज्ञानिक एवं सांस्कृतक संगठनो के कार्यो में उसकी विशेष रूचि रही है | इस प्रकार भारत सयुक्त राष्ट्र संघ का समर्थक है यह भारतीय विदेश नीति का महत्वपूर्ण पहलु है |

इस प्रकार भारत की विदेश नीति के विभिन्न पहलुओ पर विचार करने से ही स्पष्ट होता है की अंतर्राष्ट्रीय जगत में भारत की प्रतिष्ठा इसकी विदेश नीति के करण ही है क्योकि इसमें विश्व शांति, सहअस्तित्व और सयुक्त राष्ट्र संघ में एवं सिद्धांतहै जिन्होंने अंतर्राष्ट्रीय जगत में भारत को एक नई पहचान दी है|

6.7 भारत एक उभरती शक्ति के रूप में

6.7.1 भौगोलिक कारक

भारत अपने भौगोलिक आकार और जनसंख्या के कारण विश्व स्तर पर सातवे नंबर का सबसे बड़ा देश हैI भारत 8°4 'और 37° 6' उत्तरी अक्षांश और 68°7 'और 97 ° 25' पूर्वी देशांतर के बीच भूमध्य रेखा के उत्तर में स्थित हैI भारत का कुल क्षेत्रफल 3,166,414 वर्ग किलोमीटर है I और यह हिन्द महासागर के उत्तर में स्थित है | जिससे यूरोप और एशिया बहुत से रास्ते भारत के समुंद्री क्षेत्र से होकर गुजरते है | उत्तर और उत्तर पूर्व में हिमालये न सिर्फ इसे कड़ाकेदार शर्दी से बचाता है बल्कि मानसून की हवाओं को संरक्षित रखने में भी सहायता करता है | भारत में आवश्यक खाधान्न एवं जल संसाधन भरपूर मात्रा में उपलब्ध है, जो भारत के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है | प्रचुर मात्रा में संसाधनो के होने से यह विकसित राष्ट्रों का आकर्षक केंद्र है और इसके साथ ही भारत विश्व का सबसे बड़ा बाजार है जिसमे उत्पादित वस्तुओ की खपत आसानी से हो जाती है जो अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत के महत्व को बढ़ा देती है

6.7.2 आर्थिक कारक

भारत का अर्थव्यवस्था की दृष्टि से विश्व स्तर में अमेरिका, चीन जापान के बाद चौथा स्थान है | सबसे महत्वपूर्ण बात यह है की भारत की विकास दर दिन प्रति बढ़ती जा रही है 1989 में भारत की विकास दर 1.9 billion थी, 1990 में यह बढ़कर 7.1 billion हो गयी और 2003 में 10.4 % था | 2004 से 2014 तक भारत की विकास दर 721.6 से बढ़कर 1876.8 हो गई जो की अन्य उभरती अर्थव्यवस्थाओं में सर्वोच्य है | वास्तव में यह वृध्दित्व विकास दर ही भारत को एक महाशक्ति के रूप में उभरने के लिए परिपक्व कर रही है |

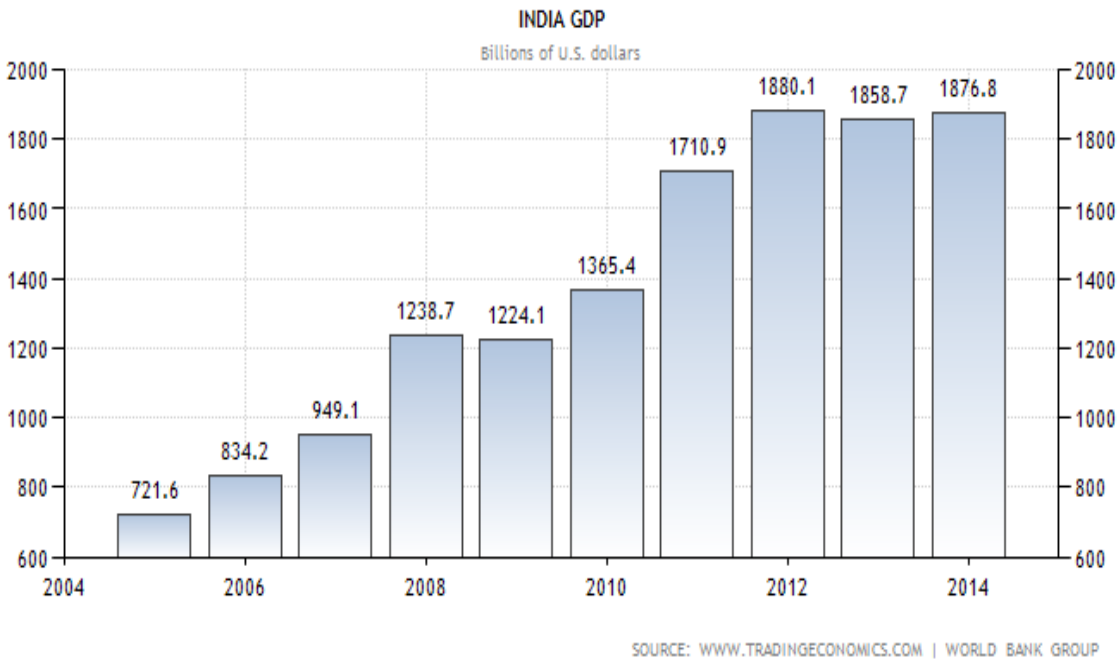

6.7.3 सैनिक कारक

भारतीय सैन्य शक्ति विश्व में अमेरिका और चीन के बाद तीसरे नंबर की सबसे बड़ी सैन्य शक्ति है जिसकी संख्या 24 लाख से ऊपर है | भारत ने अमेरिक, रशिया,, इजराइल तथा यूरोपियन यूनियन के साथ सैनिक तकनीक हस्तांतरण समझोते किये हुए है | भारतीय सेनाय न केवल भारतीय सीमाओ की रक्षा करती है बल्कि सयुक्त राष्ट्र की शांति सेना में भी यह अहम भूमिका निभा रही है | भारत सयुक्त राष्ट्र प्रजातान्त्रिक निधि का सबसे बड़ा अंशदाता है जिसमे अमेरिका का अनुदान न के बराबर है |

6.7.4 विज्ञान एवं टेक्नोलॉजी

भारत ने विज्ञान एवं टेक्नोलॉजी में भी काफी सफलता प्राप्त की है | 2002-03 में भारत ने 3.7 बिलियन यु स $ विज्ञान एवं टेक्नोलॉजी में निवेश किया है| 31विकासशील देशो में से सिर्फ भारत,चीन, ईरान, दक्षिण अफ्रीका और ब्राजील देशो ने सफलता प्राप्त की है | दुनिया के कुल वैज्ञानिक उत्पादकता में 97.5% इन विकासशील देशों का योगदान हैं, शेष 162 विकासशील देशों का योगदान 2.5% रहा है | इसके साथ -2 भारत में अधिक से अधिक शोध एवं विकास केंद्र खुलते जा रहे है जिससे भारत जिसकी वजह से भारत विज्ञान एवं टेक्नोलॉजी में धीरे -धीरे सफलता प्राप्त कर रहा है | और इसके साथ ही भारतीय राष्ट्रीय अंतरिक्ष एजेंसी आई. एस. आर. ओ जिसे अमेरिका के बाद भारत में ही लगाया गया है जो की भारत के वैज्ञानिक प्रयत्नो का सबसे बड़ा उदाहरण है | भारत अंतरिक्ष में सेटलाइट भेजने वाला तीसरा नंबर का सबसे बढ़ा देश है |

6.7.5 ऊर्जा

भारत पेट्रोलियम के बड़े आयातकों में से एक है भारत ने अपने इस ऊर्जा संकट को कम करने के लिए अमेरिका के साथ 2006 परमाणु समझौता किया और दिसम्बर २०१४ रूस के साथ संधि की जिससे भारत को भविष्य में होने वाले ऊर्जा संकट से राहत मिलेगी | और अपने इस ऊर्जा संकट को कम करने के लिए भारत, नागरिक परमाणु एक्टयर तथा जल ऊर्जा केन्द्रो का निर्माण कर रहा है |

अभ्यास प्रश्न

1.भारत की विदेश नीति के मूल तत्व कौन से है ?

A.गुटनिरपेक्षता की नीति B. साम्राज्यवाद और प्रजातीय भेदभाव का विरोध

C.शांति की विदेश नीति D.उपर्युक्त सभी

2. भारत ने किस देश की रंगभेद नीति का विरोध किया

A.नेपाल B. पाकिस्तान

C.दक्षिण अफ्रीका D.घाना

3. ताशकंद समझौते के लिए किसने मध्यस्थता की ?

A.अमेरिका B. सोवियत संघ

C.फ्रांस D.चीन

4. १९९७ में भारत के किस प्रधानमंत्री ने नेपाल की ?

A.देवगौड़ा B. अटल बिहारी वाजपेयी

C.विश्वनाथ प्रतापसिंह D.श्री इंद्र कुमार गुजराल

6.8 सारांश

प्रस्तुत इकाई के अंतर्गत हमने, "विदेश नीति का अर्थ, भारतीय विदेश नीति की अवधारणा, बदलते परिवेश में भारतीय विदेश नीति के महत्व और भारतीय विदेश नीति के निर्धारक तत्वों का अध्ययन किया है | 1947 के बाद भारत ने अपनी स्वतंत्र विदेश नीति का निर्माण, भारत के पहले प्रधान मंत्री जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में किया जिसकी आधारशिला गुट-निरपेक्षता थी| भारतीय विदेश नीति की रुपरेखा आज भी उतनी ही सफल है जितनी की पहले थी परन्तु बदलते परिवेश में भारत को कई उत्तार चढ़ाव का सामना करना पड़ा जिससे विदेश नीति में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन आये परन्तु इसके वावजूद भी भारत ने गुट – निरपेक्षता की नीति का त्याग नही किया | भारत की विदेश नीति का विश्व के सिद्धान्तो में अपना विशेष महत्व है | आज भारत विश्व में विकशित देशो के बराबर है और अगले 20 सालो में भारत एक महाशक्ति के रूप में उभर कर विश्व के एक विकसित देश के रूप में अपनी पहचान बनाएगा|

6.9 शब्दावली

प्रस्तावना - परिचय, भूमिका, इत्यादि

साम्राज्यवाद - किसी अन्य देश पर राजनीतिक नियंत्रण स्थापित कर लेना

उपनिवेशवाद - किसी देश द्वारा अपने आर्थिक लाभ के लिए दूसरे देश में उपनिवेश स्थापित करना |

गुट – निरपेक्षता - किसी भी शक्ति गुट में शामिल न होना, स्वतंत्र रूप से निर्णय लेना |

निःशस्त्रीकरण - एक ऐसा अधिनियम जिसके द्वारा हथियारों की होड़ को कम करना

6.10 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

1.A, 2. .C. 3. .B. 4.D

6.11 संदर्भ ग्रन्थ

Appadorai A (1981), "*India's Foreign Policy*", Oxford University Press, New Delhi.

Dixit, J. N.(200),*India's Foreign Policy*, New Delhi: Picus Books

Appadorai, A., M.S. Rajan (1985), *India's Foreign Policy and Relations*, New Delhi: South Asian Publishers.

J.Bandyopadhyaya (2003), *The Making of India's Foreign Policy-Determinants, Institutions, Processes and Personalities*, New Delhi: Allied Publishers Pvt. Limited.

आर. सी. वरमानी (2012), समकालीन अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, गीतांजलि पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली।

6.12 सहायक - उपयोगी पाठ्य सामग्री

Rajan, M.S. (1990), *Non-alignment and Non-aligned Movement: Retrospect and Prospect*, New Delhi: Vikas Publishing House Pvt Ltd.

Kissinger Henry (1994), Diplomacy, New York, Simon and Schuster.

Waltz Kenneth (1979), Theory of International Politics, New York, McGraw Hills.

6.13 निबंधात्मक प्रश्न

भारतीय विदेश नीति और बदलते समय में उस पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करो ?

गुटनिरपेक्षता भारतीय विदेश नीति की प्रमुख विशेषता है विवेचन करो ?

क्या भारतीय विदेश नीति अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल रही है ?

भारतीय विदेश नीति की मुलभुत विशेषताओं का अध्ययन करो ?

ईकाई 7 : भारत व रूस

ईकाई की संरचना

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 भारत-रूस
7.3.1 आर्थिक तथा व्यापारिक सहयोग
7.3.2 रक्षा तथा रणनीतिक क्षेत्र में सहयोग
7.3.4 ऊर्जा सहयोग
7.3.5 अंतरिक्ष सहयोग
7.3.6 विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी
7.3.7 सांस्कृतिक संबंध
7.4 आतंकवाद पर साझा दृष्टिकोण
7.5 भारत-रूस-चीन त्रिकोण
7.6 सारांश
7.7 शब्दावली
7.8 अभ्यास प्रश्न के उत्तर
7.9 सन्दर्भ ग्रन्थ
7.10 सहायक /उपयोगी पाठ्य सामग्री
7.11 निबन्धात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

अंतर्राष्ट्रीय जगत में द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् एक महत्वपूर्ण परिवर्तन सामने आया, जिसके अंतर्गत विश्व दो गुटों में विभाजित था। जहॉ एक खेमा का नेतृत्व संयुक्त राज्य अमेरिका कर रहा था, वहीं दूसरे खेमें का नेतृत्व सोवियत संघ कर रहा था। द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति से लेकर 1991 तक, दोनों गुटों के बीच शीत युद्ध चलता रहा। यह विशेषतः अस्त्र-शस्त्रों की जगह वैचारिक और मानसिक तौर पर लड़ा जाने वाला युद्ध था। किन्तु 1991 में एक महाशक्ति सोवियत संघ का विघटन हो गया, जिससे वैश्विक मानचित्र पर पन्द्रह नये राज्यों का उदय हुआ। सोवियत संघ के विघटन के कारण विश्व द्विध्रुवीय की जगह एक धुरवीय हो गया और विश्व में केवल एक मात्र महाशक्ति संयुक्त राज्य अमेरिका रह गया।

भारत रूस की मित्रता, भारत के स्वतंत्र (1947) होने के पश्चात् से ही प्रगाढ़ता की ओर बढ़ रहा था। चूंकि भारत एक पूंजीवादी शक्ति के अधिपत्य के कड़े अनुभवों से मुक्त हुआ था, अतः वह रूस की समाजवादी व्यवस्था से प्रभावित था, जिसमें गरीबों और मजदूरों के कल्याण की बात की जाती थी। भारत तथा रूस राजनीतिक, आर्थिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक विचारधारात्मक दृष्टि से भिन्न होते हुए भी लम्बे समय से अच्छे मित्र रहे हैं। भारत की स्वतंत्रता के बाद के आरंभिक वर्षों में भारत और रूस के संबंध घनिष्ठ नहीं थे, किन्तु 1954 में स्टालिन की मृत्यु के बाद रूस की राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्थिति में ऐसे बदलाव आये जिससे दोनों एक-दूसरे के काफी निकट आ गये। भारत की स्वतंत्रता के तत्काल पश्चात्, पाकिस्तान द्वारा कबिलाई आक्रमण के तहत कश्मीर को हड़पने का प्रयास किया गया। जिससे यह मुद्दा अंतर्राष्ट्रीय मंच पर पहुंचने के बाद रूस ने इस पर भारत के पक्ष में खुला समर्थन किया। अतः इससे दोनों देशों के बीच मैत्रीपूर्ण संबंधों का सूत्रपात हुआ। जिसका चरमोत्कर्ष बंग्लादेश के स्वतंत्रता युद्ध के पूर्व अगस्त 1971 में सम्पन्न भारत-सोवियत मैत्री सहयोग संधि के रूप में देखने को मिला।

1954 में ख्रुश्चेव के द्वारा सत्ता सांभालते ही भारत-सोवियत मैत्री का सही आरंभ हुआ। ख्रुश्चेव ने शांतिपूर्ण सह अस्तित्व वाले राजनय का प्रतिपादन किया, जिसके अंतर्गत गैर समाजवादी देशों के साथ भी विशेष मैत्रीपूर्ण संबंध विकसित करने का प्रत्यन किया गया। पश्चिमी देशों के साथ भारत का मोह भंग हो चुका था, क्योंकि भारत द्वारा राष्ट्रमंडल की सदस्यता लेने के बावजूद भी नेहरू सरकार ब्रिटेन से अपेक्षित सहायता जुटा पाने में असमर्थ रहे। जबकि सोवियत संघ ने भारत को प्रत्येक क्षेत्र में सहयोग देने को तैयार था। दूसरी तरफ दोनों देशों के नेताओं की यात्राओं ने इनके संबंधों को मजबूती प्रदान की। जून 1955 में नेहरू का सोवियत द्वारा और इसके बाद नवंबर-दिसंबर 1955 में प्रधान मंत्री एवं महासचिव निकिताख्रुश्चेव का भारतीय दौरा दोनों देशों को एक-दूसरे के नजदीक लाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। नेहरू सरकार के समय तक भारत रूस संबंध निरंतर प्रगाढ़ता की ओर बढ़े किन्तु उनकी मृत्यु के पश्चात् अर्थात् जब श्री लाल बहादुर शास्त्री ने सत्ता संभाली तथा सोवियत संघ और अमेरिका के बीच तनाव शैथिल्य ;देतान्त हो जाने के कारण भारत और सोवियत संघ के संबंधों में थोड़ी शिथिलता आई। जिसका अनुभव 1965 के भारत पाक युद्ध के पश्चात् सोवियत संघ द्वारा मध्यस्था के समय पाकिस्तान और अमेरिका के पक्ष में झुकाव के रूप में देखा जा सकता है। इंदिरा गांधी के समय में बैंकों का राष्ट्रीयकरण, प्रीवीपर्स की समाप्ति और गरीबी हटाओं का नारा आदि नीतियों में सोवियत समाजवाद की स्पष्ट झलक दिखाई देती है। जिससे एक बार पुनः भारत-रूस संबंध निकट होने लगे। इस निकटता के परिणामस्वरूप दोनों देशों ने 9 अगस्त 1971 को भारत सोवियत सहयोग संधि पर हस्ताक्षर किया। इस संधि में उल्लेख किया गया था कि संकट काल में सूचना का आदान-प्रदान करना तथा पारस्परिक सलाह के बाद कोई कदम उठाना। यह संधि सैनिक संधि न होकर मनोवैज्ञानिक लाभ उठाने की संधि थी। इंदिरा गांधी की सरकार के बाद, जनता पार्टी सरकार के कार्यकाल में भी भारत और रूस की आपसकी निकटता बनी रही जिससे ये बात स्पष्ट होती है कि भारत और रूस संबंध केवल दलगत आधार पर नहीं, अपितु हितों के आपसी सामंजस्य पर आधारित थे। ये संबंध निरंतर राजीव गांधी, वीपी

सिंह, चन्द्रशेखर, पी0वी0 नरसिम्हा राव, अटल बिहारी वाजपेयी, मनमोहन सिंह और वर्तमान में नरेन्द्र मोदी के समय में भी सौहार्द्रपूर्ण ढंग से गतिशील है।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद द्विध्रुवीय विश्व व्यवस्था जो वैश्विक परिदृश्य में आयी थी उसका 1991 में सोवियत संघ के विखंडन के पश्चात् पतन हो गया था और विश्व एक ध्रुवीय हो गया। जिसमें एकमात्र महाशक्ति अमेरिका बचा। सोवियत संघ का उत्तराधिकारी रूस अस्तित्व में आया। सोवियत संघ के उत्तराधिकारी रूस को संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में पुराने सोवियत संघ का स्थान प्रदान किया गया। रूस ने अमेरिका तथा पश्चिमी देशों के साथ अपनी आर्थिक पुनर्निर्माण के लिए निकटता बढ़ाई। किंतु उसे अपेक्षित सहयोग नहीं मिला। जिससे उसे शीघ्र ही आभास हो गया कि उसके साथ अमेरिका और पश्चिम देश दोयम दर्जे का व्यवहार कर रहे हैं। इसी बीच भारत भी अमेरिक और पश्चिमी देशों के साथ संबंध सुधारने में अपेक्षित सफलता प्राप्त की तथा एक आर्थिक शक्ति के रूप में उभरा। दूसरी तरफ रूस भी पुनः एक महाशक्ति के रूप में उभर रहा है। सोवियत संघ के विघटन के पश्चात् कुछ वर्षों तक भारत-रूस संबंध शिथिल रहे किंतु बाद में पुनः साकारात्मक गतिशिलता की ओर बढ़ रहे हैं।

7.2 उद्देश्य

इस ईकाई के अंतर्गत भारत-रूस की ऐतिहासिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, रक्षा तथा ऊर्जा संबंधों का विस्तारपूर्वक विवेचन करेंगे। इस ईकाई में सोवियत संघ के साथ संबंध तथा उसके विखंडन के बाद रूस के साथ उतार-चढ़ाव भरे संबंधों पर दृष्टिपात करेंगे। साथ ही साथ भारत-रूस-चीन त्रिकोण तथ इस त्रिकोण द्वारा एक धुरवीय व्यवस्था को किस प्रकार संतुलित किया जाने का प्रयास किया जा रहा है उसका विस्तार पूर्वक अध्ययन करेंगे। इस ईकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आपः-

- भारत-रूस संबंध के ऐतिहासिक महत्व को समझ सकेंगे।
- भारत-रूस के सोवियतकालीन समय के संबंधों के उतार-चढ़ाव को समझ सकेंगे,
- भारत-रूस द्वारा एक दूसरे के निकट संबंधों का विस्तृत वर्णन कर सकेंगे।
- सोवियत संघ के विखंडन के बाद भारत रूस संबंधों सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सामरिक क्षेत्र में आए बदलावों का विस्तृत वर्णन कर सकेंगे।

7.3 भारत-रूस

विदेश मंत्रालय की वार्षिक रिपोर्ट से यह स्वतः स्पष्ट पता चलता है कि भारत और रूस के संबंध निरंतरता, विश्वास, गतिशीलता और पारस्परिक सूझ-बूझ पर आधारित रहा है। दोनों देशों ने अपनी विदेश नीति निर्माण में एक-दूसरे के साथ घनिष्ठ और मैत्रीपूर्ण संबंध कायम करने को अपनी प्राथमिकता माना है। सहयोग के विभिन्न क्षेत्रों में अनेक दृष्टिकोणों से भारत-रूस संबंध तो प्रगति से विकसित हो रहे हैं। सोवियत संघ के अप्रत्याशित उथल-पुथल और विघटन के कारण भारत और रूस के आपसी संबंधों में कुछ दूरियॉ बढ़ी लेकिन विघटन के पश्चात् भी भारत-रूस संबंधों को सौहार्दपूर्ण बनाये जाने की कोशित की गई।

गोर्बाच्योव ने अपने कार्यकाल में दिल्ली यात्रा के दौरान भारत को आर्थिक, रक्षा, परमाणु और ऊर्जा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण सहायता देने की पेशकश की थी लेकिन अपनी आंतरिक कमजोरियों के कारण सोवियत व्यवस्था चरमराने लगी और भारत को दिये गये अश्वासन पूरे नहीं किए जा सके।

सोवियत संघ के विघटन के पश्चात् रूस के राष्ट्रपति येल्तसिन बने। उनके सामने प्रमुख चुनौती रूसी विदेश नीति का नये स्थिति के अनुसार निर्धारण करना था। सोवियत संघ के विखंडन के संबंध में महान विद्वान फ्रांसिस फुकुयामा ने कहा है कि ''साम्यवादी रूस पर पश्चिम की जीत ने पश्चिमी उदारवादी प्रजातांत्रिक संस्थाओं की सार्वभौमिक वैधता को प्रमाणित कर दिया है।'' वहीं विदेश मंत्री आन्द्रेई कोजीरेव साम्यवादी व्यवस्था की असफलता और साम्यवादी विचारधारा पर आधारित विदेश नीति को सोवियत संघ के विघटन के लिए जिम्मेदार माना। रूस के राष्ट्रपति येल्तसिन तथा विदेश मंत्री आन्द्रेई कोजी रेव ने रूस को संकट से निकालने के लिए पश्चिम की ओर देखना शुरू किया।

रूसी अर्थव्यवस्था में परिवर्तन के लिए राष्ट्रपति येल्तसिन तथा विदेश मंत्री कोजीरेव ने पश्चिमी देशों, विशेषतः अमेरिका से बहुत अधिक सहायता की उम्मीद की थी, इस हेतु वो रूस के पुराने रवैये को छोड़ने के लिए भी तैयार थे। जो अन्य देशों हेतु रूस अपनी राजनीतिक और आर्थिक सहायता प्रदान करता था। भारत के संदर्भ में अतित ने तीन महत्वपूर्ण समस्याओं को हल करने के लिए छोड़ा था- रूबल के लगातार अवमूल्यन के कारण भारत पर रूस की सोवियत देन-दारी का निस्तारण, भारत-सोवियत संधि का भविष्य तथा क्रायोजेनिक रॉकेट इंजन एवं राकेट टैक्नोलॉजी की बिक्री के लिए हुए समझौते को पूरा करना। जहां तक रूबल के लगातार अवमूल्यन के कारण भारत पर रूस की सोवियत देनदारी के निस्तारण का प्रश्न है इस संबंध में यह पहले से ही ज्ञात है कि मास्को तथा नई दिल्ली 1978 में रूबल-रूपया के विनिमय को सुनिश्चित करते हुए एक समझौता किया। समय बितने के साथ ही भारत पर रूस की देनदारी बढ़कर 36000 करोड़ रूपए हो गई थी। रूबल की तेजी से गिरती कीमत के मद्देनजर 1978 की दर पर देनदारी चुकाने से भारत को बहुत नुकसान होता। अतः फरवरी 1993 में येल्ससिन की भारत यात्रा के समय रूस आपसी सहमति से दो निश्चित दरों पर देनदारी के निस्तारण के लिए राजी हो गया। जिसके अंतर्गत पहले 12 वर्ष तक 19.9 प्रति रूबल की दर से तथा शेष देनदारी को अगले 20 वर्ष तक 39 रू0 प्रति रूबल की दर से निश्चित किया गया। ये दरें उस समय निश्चित की गई थी जब रूबल की विनिमय दर एक-चौथाई रूपए के आस-पास थी। भारत को देनदारी देश के प्रतिष्ठित राष्ट्रीयकृत बैंकों में रूस के खातों में रूपये में जमा करनी थी। रूस को इस रकम का इस्तेमाल भारतीय वाणिज्यिक वस्तुओं की खरीददारी में करना था। इस प्रकार भारत-रूस के बीच वस्तु विनिमय की व्यवस्था हमेशा के लिए खत्म हो गई। इसके बाद दोनों देश अपना कारोबार परिवर्तनीय मुद्राओं में करने लगे।

जहां तक भारत-सोवियत संधि 1971 के भविष्य का प्रश्न था इस संदर्भ में पुरानी भारत-सोवियत संध के नवीनीकरण में कुछ समस्याएं आयीं। क्योंकि यह संधि भारत के लिए केवल सांकेतिक महत्व की रह गई थी। 1971 में भारत-पाक युद्ध में चीनी हस्तक्षेप की संभावना को खत्म करने में इस संधि ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई

थी। किंतु जब 1993 के प्रारंभ में येल्तसिन की भारत दौरा के समय एक नई मैत्री संधि करने पर राजी हुए, जिसमें 1971 के संधि के समान सुरक्षा की कोई ठोस प्रतिबद्धता नहीं थी इसमें केवल मित्रता, सहयोग और नियमित रूप से आपसी विचार विमर्श करने की बात की गई थी।

जहां तक उपरोक्त दोनों समस्याएं बिना किसी विवाद के सम्पन्न हो गया, वहीं क्रायोजेनिक इंजन तथा रॉकेट टेक्नॉलाजी की बिक्री का प्रश्न गंभीर मुद्दा बन गया। येल्तसिन ने अमेरिका के दबाव में क्रायोजेनिक टेक्नोलॉजी बेचने का समझौता रद्द कर दिया जिससे भारत को बहुत आघात लगा तथा संबंधों में एक नया मोड़ आया। दिसंबर 1998 में रूस के प्रधान मंत्री प्रिमाकोव ने भारत की राजकीय यात्रा की। इस यात्रा के दौरान दोनों देशों ने अपने संबंध क्षेत्रों में मित्रता एवं सहयोग को बढ़ाने के लिए कई समझौतों पर हस्ताक्षर किये। पी-5 देशों में से रूसी प्रधान मंत्री ही वह पहले नेता थे जिन्होंने पोखरण-।। परमाणु परीक्षण तथा उस पर तीव्र वैश्विक प्रतिक्रिया के बाद वातावरण में उभर रही अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में आर्थिक और राजनीतिक संबंधों में स्थिरता लाने की पहल की। रूस-भारत ने यह घोषणा की कि अगली शिखर वार्ता में एक सामरिक भागीदारी की घोषणा करेंगे। जो भारत रूस भागीदारी को निर्देशित करेगी तथा संबंधों में प्रगाढ़ता लाएगी। रूस ने भारत की संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद की स्थाई सदस्यता की दावेदारी का समर्थन किया। 29 अक्तूबर, 1999 को भारत तथा रूस ने इलेक्ट्रॉनिक कम्प्यूटर तथा सूचना टेक्नोलॉजी के क्षेत्र में आपसी सहयोग पर एक आचरण पर हस्ताक्षर किया गया। अप्रैल 1999 में रूस ने भारत को 30 लड़ाकू हवाई जहाज की दूसरी खेप भेजी। कारगिल मसले पर रूस ने पाकिस्तान को स्पष्ट रूप से चेतावनी देते हुए कहा कि वास्तविक नियंत्रण रेखा बदलने के उसके गहरे परिणाम हो सकते हैं तथा पाक घुसपैठियों को निंदा करते हुए भारत की सैनिक कार्यवाही को आवश्यक माना।

जनवरी 2000 में येल्तसिन ने अपना उत्तराधिकारी पुतिन को घोषित किया। अप्रैल 2000 में हुए चुनावों में श्री पुतिन विधिवत रूप से रूस के राष्ट्रपति निर्वाचित हुए तथा भारत-रूस संबंधों को एक नया आयाम देने की कोशिश की। पुतिन ने भारत-रूस संबंध को व्यापक रूप से विकसित करने तथा दोनों देशों में परम्परागत मित्रता तथा सहयोग को पुनः एक नये दृष्टिकोण से स्थापित करने का प्रयास किया।

7.3.1 आर्थिक तथा व्यापारिक सहयोग

भारत अपनी स्वतंत्रता के पश्चात् रूस के साथ सभी क्षेत्रों में अपने संबंधों को घनिष्ठता के साथ बढ़ाने का प्रयास करता रहा है। भारत तथा रूस दोनों देश आर्थिक तथा व्यापारिक सहयोग बढ़ाने पर बल देते रहे हैं। भारत 1991 तक अपने कुल निर्यातों का 18 प्रतिशत भाग सोवियत संघ तथा उसके सहयोगी राष्ट्रों को भेजता था। किंतु सोवियत संघ के विखंडन के पश्चात् भारत-रूस संबंधों में शिथिलता आ गई। लेकिन हाल ही के वर्षों में द्विपक्षीय आर्थिक संबंधों में गति देखने के मिली है। जहां सन् 2000 में कुल द्विपक्षीय व्यापार 1.6 अरब डॉलर था, जो बढ़कर वर्ष 2011 में 8.8 अरब डॉलर व तथा 2013 में 10.1 अरब डॉलर हो गया जो पिछले वर्ष के मुकाबले 1 अरब डॉलर कम रहा है। किंतु पुतिन के 15वीं शिखर सम्मेलन दिसंबर, 2014 में दो दिवसीय भारत यात्रा के दौरान आर्थिक एवं व्यापारिक संबंधों को मजबूत करने के साकारात्मक प्रयास किये गये। 2013 के 10.1 अरब डॉलर के व्यापार में जहां रूस को भारत का निर्यात 3.1 अरब डॉलर था वहीं भारत में रूसी आयात 7 अरब डॉलर था। इस तरह हम देख सकते हैं कि व्यापार संतुलन रूस के पक्ष में झुका हुआ है। सन् 2000 में दोनों राष्ट्रों ने 2015 तक द्विपक्षीय व्यापार को 20 अरब डॉलर तक पहुंचाने का लक्ष्य रखा। दोनों देशों के नेताओं ने 2013 में पुनर्गठित मुख्य कार्यपाल अधिकारी परिषद की दो बैठकों का भी स्वागत किया। जिसने बेहतर कारोबारी सहयोग हेतु नये क्षेत्रों और अवसरों की पहचान करता है। दोनों पक्षों ने तेल और गैस, फार्मास्यूटिकल्स और मेडिकल उद्योग, आधारभूत अवसंरचना, खनन, ऑटोमोबाइल, उर्वरक, नागर विमानन तथा देशों में स्थित औद्योगिक सुविधाओं

के आधुनिकीकरण में सहयोग के लिए मौजूदा गुंजाइश को भी रेखांकित किया। आर्थिक तथा निवेश क्षेत्रों में द्विपक्षीय बात-चीत को बढ़ावा देने के लिए मुख्य तौर के बतौर व्यापार, आर्थिक सहयोग पर भारत-रूस अंतरसरकारी आयोग की महत्ता को भी उजागर किया गया। मास्कों में 4 अक्तूबर, 2013 को आयोजित अंतर सरकारी आयोग के 19वें सत्र के सकारात्मक परिणामों का भी स्वागत किया गया। दोनों पक्ष भारत तथा बेलारूस कस्टम यूनियम, कजाखस्तान तथा रूसी फेडरेशन के मध्य व्यापक आर्थिक सहयोग समझौते पर हस्ताक्षर करने की सम्भाव्यता के अध्ययन हेतु संयुक्त अध्ययन समूह के सृजन की दिशा में कार्य करने के लिए सहमत हुए। दोनों देश ''व्यापक आर्थिक सहयोग समझौता'' के माध्यम से वस्तुओं, सेवाओं के मुक्त व्यापार पर बल दिया है। साथ ही निवेश को बढ़ावा दिया जा रहा है तथा दोनों देशों में श्रमिकों के आवाजाही को सरल बनाया जा रहा है। स्मरणीय है कि अभी यह मामला यूरेशियन इकोनॉमिक कमिशन (म्म्ब्) के विचारार्थ लंबित है।

निवेश के क्षेत्र में रूस में भारतीय निवेश 7 अरब डॉलर का है तथा यह विशेषतः ऊर्जा क्षेत्र में है, वहीं भारत में रूसी निवेश 3 अरब डॉलर का है तथा यह मुख्यतः दूर संचार क्षेत्र में है। भारत रूस आर्थिक संबंधों को प्रगाढ़ करने में निम्नलिखित मंचों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है- भारत-रूस आर्थिक, व्यापारिक, वैज्ञानिक सहयोग आयोग , भारत-रूस व्यापार व निवेश मंचः तथा भारत-रूस सीईओ परिषद। इस प्रकार दोनों पक्षों के आर्थिक संबंधों में भी मजबूती लाने के लिए कई साकारात्मक प्रयास किये जा रहे हैं।

7.3.2 रक्षा तथा रणनीतिक क्षेत्र में सहयोग

प्रांरभ से ही भारत और रूस के आपसी सहयोग क्षेत्र में रक्षा संबंधी सहयोग को प्राथमिकता दी गई है। भारत-रूस रक्षा सहयोग क्रेता-विक्रेता से भी आगे बढ़कर प्रगाढ़ और मौलिक हो गया है और इस संरचना में अनेक व्यापक सहयोग तथा भविष्य के लिए सामरिक दृष्टिकोण के लिए एक नई दिशा मिल सकती है। इस तरह के बदलाव से दोनों देशों के संबंधों में असिमित नये अवसर खुलेंगे। भारत और रूस सामरिक संबंधों में तमाम उतार-चढ़ाव आये लेकिन दोनों की सहभागिता हमेशा बरकरार रही है। रक्षा, एवं सन्य उपकरणों के उत्पादन और विपणन में भी दोनों देशों की उत्साहबर्द्धक सहभागिता रही है। 'ब्रम्होस' प्रेक्षेपास्त्र प्रणाली इस प्रकार के संयुक्त उद्यम का अच्छा उदाहरण है।

आजादी के बाद भारत में सोवियत संघ तथा पश्चिमी देशों से काफी मात्रा में उपकरणों को आयात किया। विशेषतः 60 और 70 के दशक में भारत ने सोवियत संघ से अपने अधिकतर हथियारों की पूर्ति किया। पाकिस्तान की नियत के देखते हुए भारत ने अपनी खुद की सुरक्षा के लिए फ्रांस से मिराज 2000, सोवियत संघ से मिग-29 प्राप्त किया। शीत युद्ध के दौरान भारत ओर सोवियत संघ के मध्य बहुत ही गहरा रक्षा सहयोग था। 1991 में भारत के सेना आयुद्ध का 70 प्रतिशत वायु सना के हथियारों का 80 प्रतिशत और नौ सेना आयुद्ध का 85 प्रतिशत सोवियत संघ मेंबने थे। भारत ने लगभग 75 प्रतिशत हथियार 1993 से 2002 के बीच रूस से लिए थे। डीजाइन, विकास और वैज्ञानिक अनुसंधान के क्षेत्र में भारत तथा रूस के संबंध अब खरीददार विक्रेता से सहनिर्माता के स्तर पर पहुंच गया है। ऐसे संयुक्त परियोजनाओं में भारतीय नौसेना हेतु विक्रमादित्य विमानवाहक पोत का आधुनिकीकरण भारत में टी-90 टैंकों के लाइसेंस प्राप्त निर्माण के लिए प्रौद्योगिकी के हस्तांतरण, ब्रम्होस मिसाइल के उत्पादन शामिल है। इसके अतिरिक्त, पांचवी पीढ़ी की लड़ाकू विमान ;थ्ळथ्।द्ध भारत की रक्षा क्षेत्र हेतु एक महत्वपूर्ण रूसी परियोजना है। ब्रह्मोस सुपरसोनिक क्रूज मिसाइल के डिजाइन विकास, उत्पादन तथा बाजार-विक्रय की जिम्मेदारी रूस की संघीय राज्य विश्वविद्यालय एंटरप्राइज एनपीओ माशिनोस्टोयेनिया और भारत के रक्षा अनुसंधान और विकास संगठन ;क्त्क्वद्ध के बीच एक महत्वपूर्ण संयुक्त उद्यम है। दोनों देशों के संयुक्त उद्यम में रूसी कम्पनियों

द्वारा 72 मिलियन डालर निवेश किया गया है। ब्रह्मोस अनिवार्य रूप से एक एंटीशिप मिसाइल है, जिसे जहाज, पनडुब्बी तथा जमीन से दागा जा सकता है।

नई सदी के साथ ही रूस व अन्य देश अमेरिकी एक-ध्रुवीय व्यवस्था को बहुध्रुवीय व्यवस्था में बदलने हेतु प्रयासरत होने लगे। वर्ष 2009 में भारत व रूस के संबंधों में रक्षा तथा तकनीकी क्षेत्र में एक नये मुकाम की ओर अग्रसर हुए, जो शीतयुद्ध के दौर में गलतफहमियॉं तथा भाव शून्यता उत्पन्न हो गया था। यहां यह महत्वपूर्ण है कि विश्व में महामंदी के बावजूद भारत तथा रूस के बीच व्यापार में 8 प्रतिशत की बढ़ोरी हुई, जो दोनों के संबंधों में एक शुभ संकेत है, क्योंकि महामंदी ने ब्रिक अर्थव्यवस्था में रूस को सबसे ज्यादा प्रभावित किया। फलतः रूस को एशिया में विशेषतः भारत में आर्थिक गठबंधन के लिए मजबूर किया। दूसरी तरफ अमेरिका भी भारत को अरबों डालर का हथियार बेचने का प्रयास किया किंतु भारत ने मास्को को वरीयता दी।

सन् 2000 में राष्ट्रपति पुतिन की भारत यात्रा के दौरान भारत तथा रूस ने कई अन्य दस्तावेजों के साथ सामरिक भागीदारी की घोषणा पर हस्ताक्षर किए। जैसे भारी विमान वाहक ढउमिरल गोशर्कोव टी-90 टैंकों आदि पर भारत के लिए आपूर्ति के एक प्रोटोकॉल पर हस्ताक्षर किए गए। इसी क्रम में आगे वर्ष 2013 में आईएनएस सिंधुरक्षक भारतीय नौसेना की डीजल इलेक्ट्रिक पनडुब्बी है जिसका रूस के सवारोहिस्क स्थित ज्वेज्दोच्का शिपयार्ड पर अंतरिम मरम्मत और आधुनिकीकरण किया गया। आईएनएस सिन्धु रक्षक 877 ई के एम परियोजना की पांचवी पीढ़ी की पनडुब्बी है जो रूस में निर्मित आधुनिकीकृत हुई है। आईएनएस सिंधुरक्षक भारतीय नौसेना के लिए संत पीट्सबर्ग एडमिरल तेइस्की वेर्फी शिपयार्ड द्वारा 1997 में बना एक डीजल इलेक्ट्रिक पनडुब्बी है। उसी डिजाईन पर बने आईएनएस सिंधुवीर की सेवेरोद्विन्सक में मध्यस्तरीय मरम्मत की गई। आईएनएस सिन्धुरत्न, आईएनएस सिंधुघोष, आईएनएस सिंधु विजय तीन से चार वर्ष के अंतराल पर आए। ये पनडुब्बियॉं दुश्मन की पनडुब्बियों एवं सतह पर चलने वाले पोतों का मुकाबला करने, तटीय एवं समुद्री संचार, गुप्तचरी एवं पेट्रोलिंग जैसे काम करने के लिए बनाई गई है। 14वीं शिखर सम्मेलन, अक्तूबर 2013 में दोनों पक्षों ने भारत को रूस में निर्मित पोत त्रिकंड की सुपुदर्गी के साथ एसयू-30 डज्ञप् विमान तथा टी-90 एस के लाइसेंसयुक्त निर्माण का स्वागत किया। साथ ही विक्रमादित्य की जांच सफलतापूर्वक पूर्ण होने पर खुशी जाहिर की। रूस में एडमिरल गोर्शकोव के नाम से मशहूर विमानवाहक पोत को भारत की नौसैनिक क्षमता बढ़ाने के उद्देश्य से आईएनएस विक्रमादित्य के नाम से सुपुर्द किया गया। दोनों देश की संयुक्त सैन्य सहयोग को बढ़ावा देने के लिए 'इन्द्र संयुक्त सैन्य अभ्यास किया गया। 15वीं शिखर सम्मेलन दिसंबर, 2014 में दोनों देशों ने पांचवी पीढ़ी की रूस के लड़ाकू हेलीकॉप्टर और उसके द्वारा निर्यात किये जाने वाले साजो समान अब भारत में बनाये जाने पर समझौता की ओर बढ़े।

हाल ही भारत ने इजरायली फालकन एयरबोर्न वार्निंग एंड कंट्रोल सिस्टम विमान (अवाक्स) के लिए मंच के रूप में इस्तेमाल किया जा सकने के लिए 230 एस यू 30 एम के आई बहुआयामी लड़ाकू विमान, आईएल-78 वायु-मध्य टैंकर विमान, आईएल-76 विमान के रूप में रूस से विभिन्न हथियार प्रणाली अनुबंधित की। एमआई-17 चतुर्थ सैन्य परिवहन हेलीकॉप्टरों, आर-77 हवा से हवा में मार करने वाली मिसाइल, किलो वर्ग। प्रकार 877 ई पनडुब्बियों, फ्रिगेट, के ए-31 हेलिक्स हवाई पूर्व चेतावनी हेलीकॉप्टर विमान वाहक एडमिरल गोर्शकोव, मिग-29 के वाहक विमान और केए-31 हेलीकॉप्टरों, अन्य मिश्रित सैन्य प्रणालियों और उपकरणों के अलावा टी-90 टैंको, अग्नि नियंत्रण रडार, हवा और समुद्र निगरानी रडार, लड़ाकू रडारों, विमान रडार, एंटी और शिपरोधी मिसाइलों आदि।

7.3.4 ऊर्जा सहयोग

भारत और रूस संबंध सामरिक साझेदार से आगे बढ़कर ऊर्जा सुरक्षा आदि क्षेत्रों को भी सुनिश्चित करने का प्रयास किया जाता रहा है। जहां रूस एक ओर ऊर्जा सम्पन्न राष्ट्र है वहीं भारत में ऊर्जा का अभाव देखा जाता है। इसलिए भारत को अपना आर्थिक विकास और ऊर्जा जरूरतों को पूरा करने के लिए रूस के साथ तेल-गैस तथा परमाणु ऊर्जा सहयोग को बढ़ाने का प्रयास किया जा रहा है। अंतर्राष्ट्रीय ऊर्जा एजेंसी के अनुसार ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि अमेरिका तथा चीन के बाद भारत सन् 2025 तक दुनिया में तीसरा सबसे बड़ा ऊर्जा उपभोक्ता राष्ट्र होगा। इसलिए भारत तथा रूस ऊर्जा सहयोग को भविष्य में अधिक बढ़ावा मिलने की उम्मीद है। मास्को ने कई जल विद्युत स्टेशनों के निर्माण भारत के कोयला उद्योग के विकास तथा तेल खोजने के माध्यम से भारत के ऊर्जा क्षेत्र के निर्माण में महती भूमिका निभाई है। चूंकि रूस में ऊर्जा की अधिकता तथा भारत में ऊर्जा की न्यूनता है जिससे दोनों एक-दूसरे के करीब आते दिख रहे हैं क्योंकि इससे एक ओर जहां रूस को भारत से आर्थिक मुनाफा होगी वहीं भारत को अपनी ऊर्जा जरूरत को पूरी करने में सहूलियत होगी। यद्यपि दोनों देशों के बीच भौगोलिक निकटता तो नहीं है तथापि दोनों देशों के बीच ऊर्जा क्षेत्र में सहयोग के लिए कोई बाधा नहीं है क्योंकि अंतर्राष्ट्रीय तेल तथा गैस व्यापार निकटता पर आधारित नहीं है। भारत द्वारा रूस के हाईड्रोकार्बन दृष्टिकोण पर सावधानी से ध्यान दिया जा रहा है क्योंकि अब भारत रूस के व्यापक ऊर्जा के क्षेत्र में एक मजबूत उपस्थिति चाहता है। जिससे ऊर्जा सुरक्षा सुनिश्चित हो सके।

भारत की तेल उत्पादक कम्पनी ओएनजीसी ने अपना सबसे बड़ा निवेश सखालिन ।, ।।, ।।। में किया है। भारत तथा रूस हाइड्रोकार्बन क्षेत्र में मध्य एशिया में एक साझा योजना के तहत सहयोग पर बल दे रहे हैं। रूस ने 2005 भारत में तेल संकट के समय एक बार फिर सहायता किया तथा बाजार भाव से कम किमत पर भारत को तेल उपलब्ध कराया। रूस के सहयोग को देखते हुए भूतपूर्व पेट्रोलियम मंत्री मणी शंकर अय्यर ने अक्तूबर, 2004 में कहा था कि भारतीय स्वतंत्रता के आधी सदी तक रूस ने भारत की क्षेत्रीय एकता को गारंटी प्रदान किया और अब दूसरे आधी सदी में भारत की ऊर्जा सुरक्षा को गारंटी प्रदान कर रहा है। ऊर्जा सहयोग क्षेत्र में रूसी सरकार तथा भारत सरकार के बीच 21 दिसंबर, 2010 को तेल तथा गैस क्षेत्र में सहयोग को बढ़ावा देने के लिए बचनद्धता दर्शायी। दोनों देशों ने यह ध्यान रखा कि रूस से भारत को हाइड्रोकार्बन की दीर्घकालिक आपूर्ति की व्यवस्था सुनिश्चित की जाए। दोनों देश स्थल मार्ग के जरिए रूस से भारत को हाइड्रोकार्बन के प्रत्यक्ष परिवहन की संभावनाओं हेतु एक संयुक्त अध्ययन दल की स्थापना करने पर सहमति जताई। दोनों राष्ट्रों ने एक एफ एस बी ओ रूस ऊर्जा एजेंसी तथा भारत के ऊर्जा क्षमता ब्यूरों के बीच ऊर्जा क्षमता पर समझौता ज्ञापन पर हस्ताक्षर होने का भी स्वागत किया।

नई दिल्ली तथा मास्को को परमाणु सहयोग समझौता पर भी आगे बढ़े हैं। भारत रूस समझौता अमेरिकी समझौते से ज्यादा अनुकूल है क्योंकि रूस के साथ किये गये समझौते में भारत को प्रणाली पर खर्च किये जाने वाले ईंधन के प्रसंस्करण का अधिकार दिया गया है। अतः इसमें ईंधन के पुनर्संसाधन के बजाय उसके संवर्द्धन की प्रौद्योगिकी हासिल होगी। यह समझौता अमेरिकी समझौते 123 के विपरित है क्योंकि इसमें स्पष्टतः कहा गया है कि यदि रूस यह समझौता भंग भी कर दे तब भी संबंधित परियोजनाएं तथा ईंधन आपूर्ति बाधित नहीं होगी। जबकि अमेरिका समझौते से पीछे हटता है तो भारत को ईंधन और उपकरण दोनों ही लौटाने पड़ेंगे। परमाणु ऊर्जा के शांतिपूर्ण उपयोग पर भारत-रूस का अंतर्सरकारी समझौता 1988 के उस समझौते की जगह लेगा, जिसके तहत कुडनकुलम न्यूक्लीयर प्लांट तमिलनाडु में स्थापित हुआ था। कुडनकुलम परमाणु संयंत्र के लिए प्राथमिकता सामग्री तथा उपकरणों की आपूर्ति के लिए 12 अक्तूबर 2002 में एटॉमस्ट्रोएसपोर्ट और न्यूक्लियर पावर कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया लिमिटेड (एनपीसीआईएल) के बीच समझौता पर हस्ताक्षर किये गये। 15वें शिखर सम्मेलन दिसम्बर

2014 में भारत यात्रा के दौरान रूस के राष्ट्रपति पुतिन 2035 तक भारत में न्यूनतम 12 परमाणु रियेक्टर लगाने पर सहमति जताई। परमाणु क्षेत्र में सहयोग का जिक्र करते हुए भारतीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने कहा कि दोनों पक्षों ने परमाणु ऊर्जा के क्षेत्र में सहयोग का महत्वाकांक्षी दृष्टिकोण अपनाने का प्रयास किया है तथा इसमें कम से कम दस और परमाणु रियेक्टरों का निर्माण किया जाएगा। इन रियेक्टरों में सुरक्षा के विश्वस्तरीय उच्चतम मानक अपनाये जाएंगे इसमें उपकरणों और कल पूर्जों का भारत में निर्माण भी शामिल होगा। परमाणु सहयोग पर रणनीतिक दृष्टिकोण के दस्तावेज में कहा गया है कि दोनों पक्षों ने उन परमाणु बिजली घरों के तेजी से क्रियान्वयन का निर्णय किया है, जिन पर सहयोग की सहमति बनी है। दोनों पक्षों ने कुल बीस समझौते पर हस्ताक्षर किये, जिसमें परमाणु ऊर्जा, तेल व गैस स्वास्थ्य, निवेश, खनन मिडिया व पवन ऊर्जा समेत विभिन्न क्षेत्रों में सहयोग की बात कही गई है। साथ ही प्रधान मंत्री नरेन्द्र मोदी ने कहा कि दोनों देश तेल व प्राकृतिक गैस के क्षेत्र में सहयोग के लिए महत्वाकांक्षी एजेंडा तय करेंगे। भारत की एस्सार और रूस की रोजनेफट ने भी कच्चे तेल की दीर्घकालीन आपूर्ति के लिए समझौते किये। समझौते के तहत भारत 10 साल तक तेल खरीदेगा।

रूस के साथ परमाणु समझौते में भारत को परमाणु अप्रसार संधि पर हस्ताक्षर से इनकार करने के बावजूद असैन्य परमाणु प्रौद्योगिकी की अनुमति दी। रूस यह जानता है कि इस समय भारत को ऊर्जा की शख्त जरूरत है तथा यह परमाणु प्रौद्योगिकी वह रियेक्टर सौदे हेतु विश्व का बड़ा बाजार साबित हो सकता है, इससे दोनों देशों में अन्योन्याश्रय संबंध स्थापित होगा।

7.3.5 अंतरिक्ष सहयोग

ऐतिहासिक रूप से भारत और रूस अंतरिक्ष क्षेत्र में सहयोग प्रदान करते रहे हैं जैसा कि आर्यभट्ट जो भारत का प्रथम सेटेलाइट था इसको सोवितय यूनियन के द्वारा 19 अप्रैल 1975 को एक लॉच वेहिकल से छोड़ा गया। जब रूसी राष्ट्रपति पुतिन दिसंबर, 2004 में आए थे तब दो अंतरिक्ष से संबंधित द्विपक्षीय समझौते पर हस्ताक्षर किये गये थे- ' इंटर गवर्मेण्टल अम्ब्रेला एग्रीमेंट ऑन कोऑपरेशन इन द आउटर स्पेश फॉर पीसफुल परपज़ेज' तथा 'द इंटर स्पेश एजेंसी एग्रीमेंट ऑन कोऑपरेशन इन द एशियन सेटेलाइट नेविगेशन सिस्टम' से संबंधित बहुत सारे समझौते पर हस्ताक्षर किए गए। 2010 में उपग्रह नवहन रीसवर्स तथा भूतल समर्थक उपकरण आदि के संयुक्त उत्पादन के लिए इसके और संघीय अंतरीक्ष अभिकरण के बीच एक संयुक्त विज्ञाप्ति पर हस्ताक्षर हुआ है।

इसके अतिरिक्त भारत और रूस चन्द्रयान-2 जैसी परियोजनाओं पर सहयोग कर रहे हैं, जो एक भारतीय रोवस्काफ्ट तथा एक रूसी लैंडर-मोड्यूल, मानव अंतरिक्ष विमान परियोजना और यूथसैट परियोजना को चन्द्रमा पर स्थापित करेगा। 2011 में भारतीय तथा रूसी छात्रों द्वारा संयुक्त रूप से विकसित किया गया उपग्रह युथसैट को भारत द्वारा एक रॉकेट से सफलतापूर्वक प्रक्षेपित किया गया था। चंद्रयान-2 इंडियन स्पेश रिसर्च आर्गनाइजेशन तथा रसियन फेडरल स्पेश एजेंसी ; के द्वारा प्रस्तावित एक संयुक्त चंद्र अन्वेषण मिशन है। इस मिशन में प्रस्तावित किया गया है कि इसे जियो सिन्क्रोनस सेटेलाइट लॉच वेहिकल के द्वारा 2017 में प्रक्षेपित किया जाएगा।

7.3.6 विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी

भारत और रूस के द्वारा विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में 'द इंटीग्रेटेड लॉग-टर्म प्रोग्राम ;प्स्ज्च्द्ध के तहत किया गया सहयोग, अब तक का सबसे बड़ा सहयोग रहा है। आईएलटीपी पर भारत की तरफ से 'विज्ञान और प्रौद्योगिकी विभाग' तथा रूस की तरफ से 'रसियन एकेडमी ऑफ साइंसेज एंड रसियन मिनिस्टरी ऑफ इण्डसट्री एवं साइंस एंड टेक्नोलॉजी' द्वारा समन्वय स्थापित किया जा रहा है। आईएलटीपी के तहत सारस , डूएट एयरक्राफ्ट के विकास, सेमीकण्डक्टर प्रोडक्ट्स सुपर कम्प्यूटर, पॉली वैक्सीन्स, लेजन साइंसेज और प्रौद्योगिकी,

सिस्मोलॉजी, हाई प्योरटिी मैटैरियल्स, सॉफ्टवेयर, आईटी और आयुर्वेद के क्षेत्र में सहयोग को प्राथमिकता दी गई है। आईएलटीपी को वर्ष 2009 के आगे अग्रणी अभिनव प्रौद्योगिकी की विकास के नये आदेश के साथ 10 वर्षों के लिए एक अन्य स्तर प्रदान किया गया है। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी पर गणित कार्यदल के माध्यम से ; द्विपक्षीय सहयोग को समर्थन प्रदान करता है। साथ ही द्विपक्षीय वैज्ञानिक सहयोग की समीक्षा भी करता है।

7.3.7 सांस्कृतिक संबंध

रूसी लेखक पीसारेव कहते हैं ''भारतीय संस्कृति सोवियत जमाने से ही हमारे नजदीक एवं परिचित रही है। हमने भारतीय संगीत और भारतीय कला को स्वीकारा है क्योंकि भारतीय संस्कृति हमेशा से ही ग्राह्य है, किसी ने उसे हम पर थोपा नहीं है। हमारे बीच बहुत बड़ा धार्मिक अंतर भी नहीं है, क्योंकि हिन्दुत्व एक ऐसी आस्था है जो सभी को स्वीकारती है। भारतीयों को ईसाइयत से कोई समस्या नहीं है। रूस और भारत का इतिहास रूचिकर रहा है।'' ''कैथरीन द ग्रेट'' की राजाज्ञा से ''भगवद्गीता'' की प्रथम रसियन अनुवाद का 1788 में प्रकाशन हुआ। रसियन मार्गदर्शक जिसमें गरासीम लेबदेव का नाम महत्वपूर्ण है, ने भारत यात्रा कर भारतीय संस्कृति तथा प्राचीन भारतीय भाषाओं का अध्ययन किया। बाद में निकोलस रिओरिक ने भारतीय दर्शन का अध्ययन किया। रिओरिक रामकृष्ण और विवेकानन्द के दर्शन और रवीन्द्रनाथ टैगोर की कविताओं से प्रभावित थे। अक्तूबर 2004 में निकोलस रियोरिक की 130वीं जन्म तिथि तथा स्वेतस्लाव रिथोरिक की 100वीं जन्मतिथि को भारत में धूम-धाम से मनाया गया।

जाने माने रसियन इण्डियोलॉजिस्ट जैसे यूरी क्नोरोजोव, एलेक्जेंडर कोन्द्रातोव, निकिता गुरोव, वानमीनायेव ने अपने शोध में सिंधु लिपि, संस्कृत और भारतीय साहित्य को समझने में अपना ध्यान केंद्रित किया है। इसके अतिरिक्त रूस में भारतीय अध्ययन की एक सशक्त परम्परा विद्यमान है। राज-दूतावास का जवाहर लाल नेहरू सांस्कृतिक केन्द्र 6 रूसी संस्थाओं के साथ समीपता से जुड़ा हुआ है जिसमें दर्शनशास्त्र संस्थान, मास्को, जिसमें भारतीय दर्शन पर एक महात्मा गांधी केंद्र स्थापित पूर्वी अध्ययन संस्थान मॉस्को, मॉस्को राजकीय विश्वविद्यालय आदि सम्मिलित है। भारतीय संस्कृत संबंध परिषद रूस के अग्रणी विश्वविद्यालयों एवं स्थानों में आधुनिक भारतीय समकालीन अध्ययन केन्द्रों की स्थापना कर रही है। अग्रणी विश्वविद्यालय तथा विद्यालयों सहित लगभग 20 रूसी संस्थान पन्द्रह सौ से अधिक छात्र (रूसी) हिन्दी की शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। रूस के लोगों की भारतीय नृत्य संगीत तथा योग में रूचि देखी जाती है।

भारत तथा रूस के बीच जन-जन के सम्पर्कों को बढ़ावा देने के लिए अनेकों अन्य सांस्कृतिक पहल किये गये हैं। सन् 2008 को भारत में रूस वर्ष के रूप में मनाया गया था तथा 2011 में एक छोटे भारतीय सांस्कृतिक पर्व का आयोजन रूस में किया गया था। इसके अतिरिक्त रविन्द्रनाथ टैगोर के 125वीं जयंती के अवसर पर आयोजित समारोह के एक हिस्से के रूप में अनेकों सांस्कृतिक तथा शैक्षणिक सम्मेलनों का आयोजन किया गया था।

परम्परागत रूप से भारत तथा रूस के बीच सिनेमा क्षेत्र में भी मजबूत सहयोग रहा है। भारत और रूस के अनेक पीढ़ी एक-दूसरे देश की फिल्म देखकर ही बड़े हुए हैं। जैसे प्रमुख भारतीय फिल्म अवारा, बॉबी, बारूद और ममता रूस में प्रसिद्ध रहे हैं तथा रूसी कहानी पर आधारित फिल्म 'लकी नो टाइम फॉर लव' को रूस में बहुत किया गया। वर्तमान में केबल और सेटेलाइट चैनल के कारण रूसी लोग भारतीय फिल्म को प्रत्यक्ष देख पा रहे हैं। भूतपूर्व रसियन राष्ट्रपति दैमित्री मेदवेदव अपनी भारत यात्रा के दौरान यशराज स्टूडियो को भी देखा तथा वहां प्रमुख बॉलीवुड के अभिनेता और अभिनेत्रियों जैसे शाहरूख खान, यश चौपड़ा तथा करीना कपूर आदि से मिले। 15वीं शिखर सम्मेलन दिसंबर, 2014 में प्रैस ट्रस्ट ऑफ इंडिया और रूसी न्यूज एजेंसी तास ने भी एक समझौते

पर हस्ताक्षर किये जिसके तहत खबरों के आदान-प्रदान में सहयोग किया जाएगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रारंभ से लेकर अब तक भारत-रूस सांस्कृतिक सहयोग बहुत ही मजबूत रहे हैं।

7.4 आतंकवाद पर साझा दृष्टिकोण

भारत और रूस अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद पर साथ लड़ने के लिए वचनबद्ध है, चाहे आतंकवादी कहीं भी अस्तित्व में हो। रूस ने भारत के उस प्रारूप का समर्थन किया है जो अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद पर व्यापक सम्मेलन ;ब्ब्प्ज्.ब्वउचतमीमदेपअम ब्वदअमदजपवद वद प्दजमतदंजपवदंस ज्मततवतपेउद्ध संयुक्त राष्ट्र में हुआ था। दोनों राष्ट्रों ने दिसंबर, 2002 में आतंकवाद से लड़ने के लिए एमओयू पर हस्ताक्षर किये। अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद संयुक्त कार्यदल का समय-समय पर बैठक होती रहती है। इसकी चौथी बैठक नई दिल्ली में 24 अक्तूबर, 2006 को हुई थी। रूस और भारत दोनों आतंकवाद से ग्रस्त हैं जहां भारत कश्मीर में वहीं रूस चेचन्या में अतः दोनों देश एक-दूसरे को आतंकवाद के मुद्दे पर समर्थन देते रहते हैं।

1999 में कारगिल घुसपैठ पर भारत की कार्यवाही पर रूस ने समर्थन दिया साथ ही विश्व के अन्य राष्ट्रों ने भी भारतीय दृष्टिकोण का समर्थन किया। इस घटना से पाकिस्तान विश्व में आतंकवाद का पोषक राष्ट्र के रूप में उजागर हुआ। अक्तूबर, 2000 में राष्ट्रपति पुतिन ने भारत यात्रा के दौरान कहा कि रूस भारत के साथ संबंधों को अधिक वरीयता देता है और देता रहेगा तथा दोनों देश आपसी सहयोग तथा उच्चस्तरीय संयुक्त प्रयासों के द्वारा अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद, पार सीमा आतंकवाद तथा नसीली वस्तुओं की तश्करी पर आधारित आतंकवाद जिसकी जड़ अफगानिस्तान पाकिस्तान क्षेत्र में थी पर भारतीय दृष्टिकोण का समर्थन किया। इसके अतिरिक्त सितंबर 2001 में अमरीका पर तथा 13 दिसंबर, 2001 में भारतीय संसद के विरूद्ध हुए आतंकवादी हमलों से उत्पन्न हुए परिस्थितियों पर विचार-विमर्श करने के लिए प्रधानमंत्री कार्यालय के मुख्य सलाहकार तथा राष्ट्रीय सुरक्षा समिति के अध्यक्ष श्री ब्रजेश मिश्र तथा बाद में विदेश तथा रक्षा मंत्री श्री यशवंत सिंह ने रूस की यात्रा की तथा रूसी नेताओं से उच्च स्तरीय वार्तालाप की। दोनों देशों ने अंतर्राष्ट्रीय नीति तथा प्रोग्राम के अधीन अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद को नष्ट करने पर बल दिया। दोनों देश यह स्वीकार करते हैं कि अफगानिस्तान में विद्यमान तालीबान शासन आतंकवाद का संरक्षक तथा पोषक रहा है।

दिसंबर, 2002 में पुतिन ने दिल्ली घोषणापत्र में आतंकवाद की समाप्ति पर जोर देते हुए श्री बाजपेयी के साथ एक साझा बयान में कहा कि पाकिस्तान को सीमापार आतंकवाद तथा वास्तविक नियंत्रण रेखा से घुसपैठ रोकना चाहिए। इसके अतिरिक्त जब 2008 में पाकिस्तान प्रायोजित आतंकवादियों द्वारा जब मुंबई में हमला किया गया था तब रूस ने पाकिस्तान की निंदा की तथा भारत को हरसंभव मदद देने की पेशकश की। हाल ही में संपन्न 15वीं शिखर सम्मेलन में भारतीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के साथ संयुक्त बयान में जम्मू-कश्मीर तथा चेचन्या में आतंकवादी हमलों में मारे गये लोगों के प्रति सम्वेदना प्रकट की और उम्मीद जताई की बिना किसी देरी के आतंकवादियों के लिए सभी सुरक्षित पनाहगाह और शरणस्थलों को समाप्त किया जाएगा।

अफगानिस्तान में नाटो सैनिकों की वापसी के बाद की स्थिति को लेकर अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद को लेकर दोनों देशों की चिंताए समान हैं। अफगानिस्तान में 2014 में नाटो सैनिकों की वापसी के पश्चात् वहां की सुरक्षा तथा स्थायित्व को सबसे बड़ा खतरा आतंकवाद का है। साथ ही भारत-रूस में संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद द्वारा तालिबान के द्वारा लगाए गए प्रतिबंधों को आगे जारी रखने के प्रयास को आवश्यक माना है। अंतर्राष्ट्रीय मंचों के माध्यम से भी दोनों देश आतंकवाद को समाप्त करने का साझा प्रयास करते दिख रहे हैं।

7.5 भारत-रूस-चीन त्रिकोण

बदलते अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य में विश्व में शक्ति संतुलन स्थापित करते हुए अर्थात् सोवियत संघ के विखण्डन के बाद विश्व एक ध्रुवीय हो गया था उसको बहुध्रुवीय की ओर ले जाने के लिए 1998 में रूस के प्रधान मंत्री येवगेनी प्रिमाकोव भारत-रूस-चीन त्रिकोण का विचार दिया। प्रिमाकोव एक बहुत बड़े एकेमेडीसियन थे। उन्हें यह भली-भांति समझ आ गया था कि अमेरिकी दादागिरी को रोकने के लिए एक वैकल्पिक शक्ति की जरूरत है। कहीं न कहीं भारत तथा चीन भी अमेरिकी आधिपत्य से परेशान थे। अतः इन्हें भी प्रिमाकोव का यह विचार उतम लगा। भारत जहां 1998 में परमाणु परीक्षण के बाद विश्व परिदृश्य में अलग-थलग पड़ गया था तथा रूस भी चेचन्या में मानवाधिकार का उल्लंघन तथा प्रजातांत्रिक प्रणाली को स्थापित करने के मुद्दे पर पश्चिमी देशों के दबाव में था। वहीं दूसरी तरफ चीन मार्क्सवाद के प्रति अपनी वैचारिक प्रतिबद्धता के लिए पहले से ही अमेरिका तथा पश्चिम के निशाने पर रहा है तथा थियानमेन नरसंहार की घटना ने चीन को अंतर्राष्ट्रीय जगत में अस्पृश्य बना दिया था। साथ ही साथ ताइवान तथा तिब्बत के मसले पर भी अमेरिका तथा पश्चिम की हुड़की झेलनी पड़ी। अतः इस प्रकार की परिस्थितियों में भारत-रूस-चीन त्रिकोण बनाने में मदद किया ताकि वो अमेरिका तथा पश्चिमी देशों से मुकाबला कर सके।

भारत ने जब 1998 में दूसरी बार परमाणु परीक्षण किया था तो अमेरिका तथा पश्चिमी देशों ने भारत पर तरह-तरह के आर्थिक प्रतिबंध आरोपित किये। किंतु भारत का मित्र रूस ने किसी भी प्रकार का आर्थिक प्रतिबंध लगाने से इंकार कर दिया। उसी वर्ष रूसी प्रधानमंत्री येवगेनी प्रिमाकोव ने दिसंबर 1998 में भारत यात्रा कर गहरे सामरिक सहयोग की परिकल्पना के साथ ही साथ रूस-भारत-चीन के त्रिकोण का प्रस्ताव दिया। उन्होंने यह भी कहा कि यह त्रिकोण बनने में सफल रहता है तो बहुत अच्छा होगा जिससे न केवल स्थानीय स्तर पर बल्कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी स्थिरता लाया जा सकेगा। इस त्रिकोण संकल्पना पर जहां चीन का विचार सकारात्म्क था वहीं भारत का विचार बेहद संतुलित था क्योंकि भारत पश्चिमी देशों को भी यह संकेत नहीं देना चाहता था कि वह किसी गुट का हिस्सा बनने जा रहा है। भारत ने इस त्रिकोण के विचार के संबंध में कहा कि रूस तो हमेशा से भारत का दोस्त रहा है जबकि चीन के साथ रिश्ते सामान्य बनाने के लिए अनवरत प्रयास किया जा रहा है। भारत की तरफ से ठंडी प्रतिक्रिया को देखते हुए प्रिमाकोव ने मिडिया से कहा कि वो ये कहना चाहते हैं कि इस तरह की साझेदारी क्षेत्र तथा विश्व में सही मायने में स्थायित्व ला सकती है। भारत जहां पाक प्रायोजित आतंवाद, रूस चेचन्या आतंकवाद से तथा चीन जिंगजियांग इस्लामिक कट्टरपंथियों के अलगववाद का सामने कर रहे हैं। अतः तीनों देश इस बात पर साम्यता रखते हैं कि अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आतंकवाद से लड़ने का ठेका केवल अमेरिका का नहीं है बल्कि हम जैसे राष्ट्र भी इसका भार उठा सकता है। क्योंकि रूस-चीन-भारत इस बात पर सहमत है कि विश्व को बहुध्रुवीय होना चाहिए।

सन् 1998 से लेकर 2001 तक भारत-रूस-चीन त्रिकोण को महत्वपूर्ण बनाने हेतु ठोस प्रगति नहीं हुई। लेकिन अमेरिकी दादागिरी के बढ़ने से 2002 में तीनों राष्ट्रों ने इस त्रिकोण को ठोस रूप देने का प्रयास किया। संयुक्त राष्ट्र महासभा की बैठक के दौरान पहलीबार तीनों देशों के प्रधान मंत्रियों की मुलाकात हुई। जिसमें मीडिया को कोई ब्रिफिंग नहीं दी गई थी, किंतु 2003 की दूसरी बैठक में तीनों विदेश मंत्री प्रेस को ये बताने के लिए राजी थे कि ईराक के मसले पर वो एक साझा नतीजों पर पहुंचे हैं। उन्होंने कहा कि इराक में तत्काल राजनीतिक प्रक्रिया को प्रारंभ की जानी चाहिए तथा इराक की सम्प्रभुता इराकी लोगों को सौंप देनी चाहिए। इससे ये जाहिर होता है कि अमेरिका को यह एक कड़ा संदेश दिया गया था। 2004 में विदेश मंत्रियों की तीसरी बैठक कॉफिडेंस बिल्ड्ग मेज इन एशिया के तहत अल्माटी में 16 देशों के सम्मेलन के दौरान प्रेस ब्रिफिंग ने तीनों राष्ट्रों ने अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों पर सामुहिक रूप की एकता को आगे बढ़ाया। 2005 में रू के ब्लाडिवोस्टक में तीनों देशों के विदेशमंत्रियों की बैठक

में बड़ी तादाद में पश्चिमी देशों के पत्रकारों की मौजुदगी ने यह साबित कर दिया कि इनका प्रभाव पूरे विश्व पर पड़ रहा है जिससे यह त्रिकोण अपने उदय के साथ एक नये दौर में चली गई जो अंतर्राष्ट्रीय जगत में अपने विचारों को मजबूती के साथ रख सकते हैं।

भारत-रूस-चीन के 11वें चरण की बैठक 13 अप्रैल 2012 को मास्को में हुई, जिसमें प्रमुख एजेंडा एक पक्षीय ध्रुवीकरण का विरोध तथा अंतर्राष्ट्रीय जगत में लोकतांत्रिक बहुलवाद को बढ़ावा देना था। साथ ही तीनों राष्ट्रों ने कहा कि सभी खतरे केवल सैनिक शक्ति के जरिए नहीं हटाये जा सकते बल्कि इन्हें राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक नजरिये से भी देखने की आवश्यकता है। वर्तमान में भारत-रूस-चीन त्रिकोण को तीनों राष्ट्रों द्वारा और मजबूत बनाने का प्रयास किया जा रहा है।

निसंदेह वैश्विक परिदृश्य में रूस भारत तथा चीन एक महत्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय मंच की भूमिका निभा रहा है। सभी वैश्विक मुद्दों पर सहयोग और समान दृष्टिकोण अपनाने के लिए तथा विश्व शांति, संतुलन एवं स्थायित्व बनाये रखने के लिए रूस-भारत और चीन के समूह को मजबूत बनाना समय की मांग है। इस त्रिकोण को और व्यापक बनाते हुए ब्रिक (ब्राजील, रूस,भारत और चीन) तथा उसी का विस्तृत रूप ब्रिक्स (ब्राजील,रूस,भारत,चीन, दक्षिण अफ्रीका) का निर्माण किया गया। ब्रिक राष्ट्रों के राष्ट्राध्यक्षों की प्रथम शिखर बैठक 16 जून, 2009 को रूस के येकातेरिनबर्ग में सम्पन्न हुई, जिसमें वैश्विक खाद्य सुरक्षा पर बल दिया गया। दूसरी शिखर बैठक 15 अप्रैल 2010 को ब्राजील की राजधानी ब्राजीलिया में सम्पन्न हुआ, जिसमें विकास बैंकों के मध्य एक सहयोग ज्ञापन पर हस्ताक्षर हुए तथा ब्रिक सांख्यिकी प्रकाशन के प्रथम संस्करण का विमोचन किया गया। सितंबर, 2010 में दक्षिण अफ्रिका को सम्मिलित करने पर सहमति हुई जिसमें ब्रिक, ब्रिक्स बन गया। ब्रिक्स की तीसरी शिखर बैठक चीन के सान्या शहर में सम्पन्न हुई। वस्तुतः यह ब्रिक्स के रूप में प्रथम शिखर बैठक थी जिसमें संयुक्त घोषणा पत्र जारी किया गया तथा ब्रिक्स राष्ट्रों के केंद्रिय बैंकों द्वारा ''वित्तीय सहयोग पर रूप रेखा समझौते' पर हस्ताक्षर किए गए। चौथी शिखर बैठक 29 मार्च, 2012 को भारत की राजधानी नई दिल्ली में सम्पन्न हुई, जिसके दौरान 'दिल्ली घोषणा पत्र' जारी किया गया, जिसके अंतिम भाग में एक कार्ययोजना को भी रेखांकित किया गया था। ब्रिक्स सदस्य राष्ट्रों के विकास बैंकों के बीच पारस्परिक सहयोग तथा अंतक्षेत्रीय व्यापार को प्रोत्साहन देने वाले दो समझौतों पर भी हस्ताक्षर किये गए। ब्रिक्स की पांचवी शिखर बैठक दक्षिण अफ्रिका के शहर डरबन में 26-27 मार्च, 2013 को सम्पन्न हुआ जिसमें 'ई-थेक्विनी घोषणा पत्र' जारी किय गया, जिसके अंत में 18 सूत्री कार्ययोजना भी रेखांकित की गई। ब्रिक्स की छठवीं शिखर बैठक ब्राजील के फोर्टलेजा और ब्राजीलिया में 14-16 जुलाई, 2014 के मध्य सम्पन्न हुई। इस बैठक की मेजबानी ब्राजील की राष्ट्रपति डिल्मा रोसेफ ने की। छठवीं शिखर बैठक की थीम थी- 'समावेशी विकासः संपोषणीय समाधान'। इस बैठक में मेजबान राष्ट्र ब्राजील की राष्ट्रपति डिल्मा रोसेफ, रूसी राष्ट्रपति ब्लादिमिर पुतिन, भारतीय प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी चीनी राष्ट्रपति सीजिंगपिग तथा दक्षिण अफ्रीका के उपराष्ट्रपति जैकब जुमां ने प्रतिभाग किया। इस बैठक के अंत में घोषणा पत्र एवं कार्य योजना जारी की गई तथा एक नये विकास बैंक तथा आकस्मिक रिजर्व निधि पर समझौता हुआ। ब्रिक्स आकस्मिक आरक्षित व्यवस्थापन (ब्वदजपदहमदज त्मेमतअम ।ततंदहमउमदजरू ब्त्।) में 100 बिलियन अमेरिकी डॉलर की हिस्सेदारी इस प्रकार है- चीन 41 बिलियन डॉलर, ब्राजील रूस तथा भारत 18-18 बिलियन डॉलर तथा दक्षिण अफ्रीका 5 बिलियन डॉलर है।

इसके अतिरिक्त 'संघाई सहयोग संगठन' में रूस और चीन की स्थाई सदस्यता है, जबकि वहीं भारत एक पर्यवेक्षक की स्थिति में है। 'संघाई सहयोग संगठन' एक यूरेशियन क्षेत्रीय संगठन है। अतः रूस यूरेशियन क्षेत्र में भी संतुलन कायम करना चाहता है तथा विश्व को एक ध्रुवीयता के आधिपत्य से निकालना चाहता है। संघाई सहयोग संगठन को एक मजबूत अंतर्राष्ट्रीय संगठन के रूप में खड़ा करना चाहता है। अतः इस क्षेत्रीय संगठन में वह भारत

की स्थाई सदस्यता का पूर्ण रूप से समर्थन करना चाहता है। अन्य संगठनों जैसे एशिया-प्रशान्त आर्थिक सहयोग मंच) की भूमिका को एशिया प्रशांत क्षेत्र में आर्थिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण मंत्र बताते हुए रूस इस संगठन में भी भारत की सदस्यता को समर्थन कर रह है जिससे क्षेत्रीय तथा वैश्विक व्यापार के मुद्दे पर वार्तालाप का मार्ग प्रशस्त होगा। दोनों ने आसियान क्षेत्रीय मंच की ओर मजबूती हेतु अपनी प्रतिबद्धता व्यक्त की क्योंकि यह एशिया-प्रशांत क्षेत्र में शान्ति और स्थायित्व को बनाए रखने में व्यावहारिक तौर पर सहयोग का एक मुख्य साधन है। इससे आतंकवाद तथा अंतर्राष्ट्रीय अपराधों का सामना करने के प्रयासों में वैश्विक प्रयासों को बढ़ाने में मदद मिलती है। दूसरी तरफ रूस संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में भारत की स्थाई सदस्यता का बार-बार समर्थन करता है। चूंकि भारत एक आर्थिक शक्ति के रूप में वैश्विक परिदृश्य में उभर रहा है। अतः रूस अपनी मित्रता के प्रति बचनबद्ध होते हुए इस बात का प्रयास करता है कि भारत जिस चीज का हकदार है, वो उसे मिलना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न

1 सोवियत संघ विघटित कब हुआ था?

A. 1990 B. 1991 C. 1993 D. 1994

2. सोवियत संघ के विघटन से कितने स्वतंत्र राष्ट्र बनेघ्

A. 13 B. 14 C. 1 D. 16

3. भारत रुस सामरिक सहयोग संधि कब हुआ था?

A. 1970 B. 1971 C. 1972 D. 1973

4. भारत ने रुस के युद्धपोत गोर्शकोव को किस नाम से अपने बेड़े में शामिल किया?

A. विक्रामादित्य B. आदित्य C. आकाश D. विकाश

5. हाल ही मे पुतिन ने अपने भारत दौरे के समय कितने और परमाणु रिएक्टर लगाने की बात कीघ्

A. 9 B. 10 C. 11 D. 12

6. भारत.रुस आर्थिक व्यापार सहयोग 2015 तक कितने बिलियन पहुचने की सम्भावना हैघ्

A. 10 B. 15 C. 20 D. 25

7.6 सारांश

भारत रूस संबंध सोवियत संघ के समय से ही बहुत मजबूत रहा है। यद्यपि समय-समय पर दोनों राष्ट्रों के राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय हित के अनुसार संबंधों में उतार-चढ़ाव आते रहे हैं तथापि अधिकांश समय तक दोनों राष्ट्र मित्रतापूर्ण तथा सौहार्दपूर्ण संबंधों के साथ रहे हैं। वर्तमान में भारत तथा रूस एक-दूसरे को अच्छी तरह समझने लगे हैं। दोनों देशों के द्विपक्षीय संबंधों में रक्षा क्षेत्र का स्थान वरीयता में रहा है तथा व्यापार आदि के मुद्दे दूसरे पायदान पर रहे हैं। क्योंकि दोनों का आपसी व्यापार कमजोर रहा है। 2011 में रूस द्वारा विश्व व्यापार संगठन का सदस्य बनने से भारत तथा रूस के बीच व्यापार बढ़ने की संभावना है। दोनों देश सैनिक तथा तकनीकी सहयोग तथा परमाणु ऊर्जा सहयोग के क्षेत्र में बहुत प्रगति किए हैं। इसके अतिरिक्त हाईड्रोकार्बन तथा ऊर्जा क्षेत्र में उनके बीच बहुत संभावनाएं हैं। भारत-रूस आतंकवाद के उन्मूलन शांतिपूर्ण तथा स्थिर मध्य एशिया, संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में सुधार, ईरान के परमाणु मुद्दे और सिरिया मुद्दा आदि पर समान विचार रखते हैं। दोनों देशों के बीच सहयोग न केवल इनके बीच शांति सुरक्षा को मजबूत करता है अपितु संपूर्ण विश्व की सुरक्षा को भी सुनिश्चित करने का प्रयास करता है। इसी कड़ी में भारत-रूस-चीन त्रिकोण अपना महत्वपूर्ण उपस्थिति दर्ज करा रहा है। तथा विश्व में शक्ति संतुलन हेतु एक ध्रुवीय व्यवस्था को बहुध्रुवीय बनाने का प्रयास किया जा रहा है जिससे अमेरिकी वर्चस्व को रोका जा सके। अमेरिका, भारत रूस के बढ़ते संबंधों से चिंतित है। अमेरिका ने ही रूस को भारत हेतु

क्रायोजेनिक इंजन सप्लाई न करने का दबाव डाला था तथा रूस उस समय अमेरिकी दबाव में आकर भारत को क्रायोजेनिक इंजन न दे सका। इसी प्रकार का दबाव अमेरिका ने रूस द्वारा भारत को दो परमाणु रियेक्टर देने का विरोध किया था किंतु रूस इस बार दबाव में नहीं आया तथा भारत को इस क्षेत्र में सहयोग दिया। इससे यह पता चलता है कि भारत-रूस संबंध अब अंतर्राष्ट्रीय दबाव से आगे बढ़कर पुरानी मित्रता तथा सहयोग के विचार पर आगे बढ़ रहा है।

7.7 शब्दावली

अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति - विश्व के विभिन्न देशों के बीच होने वाली क्रियाविधि

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध - एक ऐसा अनुशासन जो दो या दो से अधिक राज्यों के सम्बन्धो का अध्ययन करता है।

पारस्परिक सम्बन्ध- एक दूसरे के साथ आपसी सम्बन्ध

कूटनीति - विदेश नीति के संचालन का तरीका

संयुक्त राष्ट्र संघ - एक अंतराष्ट्रीय संगठन

सोवियत संघ -भूतपूर्व रूस

एकध्रुवीय - विश्व में एक महाशक्ति का होना

द्विध्रुवी - विश्व में दो महाशक्ति का होना

बहुध्रुवीय . विश्व में दो से अधिक शक्तियों का होना

साम्यवाद . सोवियत संघ की विचारधारा

पूंजीवाद- अमेरिका की विचारधारा

7.8 अभ्यास प्रश्न के उत्तर

1.B, 2.C, 3.B, `4.A, 5.D, 6.C

7.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

1.खन्ना, वी. एन. एवं अरोड़ा, लिपाक्षी (2006) "भारत की विदेश नीति" विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि., नई दिल्ली।

2.दीक्षित जे. एन. (2004) "भारतीय विदेश नीति", प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली।

3.घई, यू. आर. एवं घई के. के. (2005) "अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति", न्यू एकेडमिक पब्लिशिंग कंपनी, जालंधर।

4.घई, यू. आर. एवं घई. वी. (2004) "भारतीय विदेश नीति", न्यू एकेडमिक पब्लिशिंग कंपनी, जालंधर।

5.वरमानी, आर. सी. (2007) "समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध", गीतांजलि पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

6.फड़िआ, बी. एल. (2013) "अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति", साहित्यिक भवन पब्लिकेशन, इलाहाबाद।

7.बीस्वाल, तपन (2010), "अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध", मैकमिलन पब्लिशर्स इंडिया लि., नई दिल्ली।

7.10 सहायक /उपयोगी पाठ्य सामग्री

1.भारतीय विदेश मंत्रालय की आधिकारिक वेबसाइट

2.द हिन्दू समाचार पत्र

3.जनसत्ता समाचार पत्र

7.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1.भारत रुस सम्बन्धो की ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को ध्यान मे रखते हुएए सामरिक तथा रणनीतिक सम्बन्धो पर प्रकाश डालिये।

इकाई 08 : भारत व अमेरिका

ईकाई की संरचना

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 भारत- अमेरिका
8.3.1 आर्थिक संबंध
8.3.2 रक्षा सहयोग
8.3.4 परमाणु ऊर्जा सहयोग
8.3.5 विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी
8.3.6 सांस्कृतिक तथा शिक्षा के क्षेत्र में सहयोग
8.3.7 आतंकवाद
8.3.8 पाकिस्तान और चीन के मुद्दों पर भारत के प्रति अमेरिका के दृष्टिकोण
8.4 समस्याएं एवं संभावनाएं
8.5 सारांश
8.6 शब्दावली
8.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.8 सन्दर्भ ग्रन्थ
8.9 सहायक / उपयोगी पाठ्य सामग्री
8.10 निबन्धात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् वैश्विक परिदृश्य में दो महत्वपूर्ण परिवर्तन स्पष्ट तौर पर दिखाई दे रहे थे। एक तरफ जहां अनेक स्वतंत्र राज्यों का उद्भव हो रहा था तथा वैश्विक मानचित्र में नये देश उभरकर सामने आ रहे थे वहीं दूसरी तरफ विश्व का ध्रुवीकरण भी हो रहा था। विश्व दो खेमों पूंजीवादी और साम्यवादी खेमों में बंट रहा था। एक खेमे का नेतृत्व जहां अमेरिका कर रहा था वहीं दूसरी खेमें का नेतृत्व रूस कर रहा था। इस प्रकार संपूर्ण विश्व दो महाशक्तियों में विभाजित हो रहा था। इन दोनों महाशक्तियों में जिस समय शीत युद्ध जोर पकड़ रहा था उसी समय भारत भी ब्रिटिश औपनिवेशिक शक्ति से मुक्त हुआ। जिस समय भारत स्वतंत्र हुआ उस समय उसके समक्ष सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यह था कि क्या भारत दो महाशक्तियों में से किसी भी एक महाशक्ति का पिछलग्गू राष्ट्र बनकर रह जाएगा अथवा वह स्वतंत्र विदेशनीति का पालन करेगा। भारत के समक्ष यह एक बहुत ही दुविधा का प्रश्न था। लेकिन भारत एक नवोदित राष्ट्र होते हुए भी अपने साहस और स्वतंत्र आत्म निर्णय का परिचय देते हुए स्वतंत्र विदेशनीति को अपनाने का रास्ता चुना। इसी साहस, स्वतंत्र आत्म निर्णय तथा स्वतंत्र विदेशनीति की सोच की पृष्ठभूमि में गुटनिरपेक्षता नामक नीति का बीज प्रष्फूटित हुआ। इस गुटनिरपेक्षता रूपी विषय की सोच को प्रदर्शित करने में नेहरू के साथ नसिर और टिटो भी महत्वपूर्ण रूप से भागीदार थे। 1946 में गठित अंतरिम सरकार के मुखिया के रूप में भाषण देते हुए नेहरू ने कहथा 'जहां तक संभव होगा हमारा प्रयत्न ऐसे गुटों में शामिल होने से बचने की होगी जिनके कारण अतीत में युद्ध हो चुके हैं अथवा जिनके कारण भविष्य में युद्ध होने की संभावना है। नेहरू का व्यक्तिगत तौर पर ऐसा मानना था कि किसी भी ऐसी राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक संगठन में शामिल होने से भारत की स्वाधीनता संकुचित हो सकती है जिसका नेतृत्व विचारधारा विशेष का प्रतिनिधित्व करने वाली कोई महाशक्ति कर रही है। नेहरू की इस सोच का स्वागत अफ्रिकी और एशियाई देशों ने किया। इसी क्रम से मिस्र के नासिर, युगोस्लाविया के मार्शल टीटो और इंडोनेशिया के सुकार्णो ने नेहरू का भरपूर सहयोग किया। देखते ही देखते गुटनिरपेक्ष आंदोलन की सदस्यता नवोदित राष्ट्रों के स्वाधीनता की कसौटी का पर्याय बन गयी। हालांकि प्रारंभ में दोनों महाशक्तियों ने गुटनिरपेक्ष की कसौटी का पर्याय बन गयी। हालांकि प्रारंभ में दोनों महाशक्तियों ने गुटनिरपेक्ष को शंका की दृष्टि से देखा तथा इसे मौका परस्ती और अवसरवादिता का नाम दिया। नेहरू ने इन सभी आलोचनाओं का निराकरण करते हुए कहा कि यह अवसरवादिता अथवा तटस्थता की हठधर्मिता नहीं है अपितु इस नीति का अर्थ सभी देशों के साथ मित्रता का संबंध स्थापित करना, गठबंधन अथवा राजनीतिक, आर्थिक और सैनिक सन्धियों में किसी विशेष विचारधारा के साथ शामिल नहीं होना। उनका मानना था कि भारत का अपने घरेलू और वैदेशिक नीतियों के विवेकपूर्ण, तर्कसंगत तथा बेहतर विकल्प चुनने के लिए गुटनिरपेक्षता आंदोलन ही एक यर्थाथवादी मंच साबित हो सकता है।

भारत के स्वतंत्रता के पश्चात् जहां तक इसके साथ अमेरिका के संबंध का प्रश्न है, इनके संबंध हमेशा उतार चढ़ाव तथा माधुर्यता एवं तनाव के रहे हैं। भारत और अमेरिका विश्व के दो विशाल लोकतंत्र होने के नाते इनके संबंधों में मित्रवत व्यवहार की आशा की जाती है, लेकिन इनके संबंधों में कटुता भी बरबस स्वतंत्रता से लेकर अबतक देखने को मिला है। जैसा कि ऊपर चर्चा की गई है कि भारत स्वतंत्र होने के बाद गुटनिरपेक्षता की नीति पर चलने पर अडिग रहा। किसी भी गठबंध अथवा सैनिक संधियों से दूर रहने की नीति अपनाई। जिसके कारण दोनों महाशक्तियों भारत को शंका की दृष्टि से देखते थे। अमेरिकी नेतृत्व में गठित उत्तर अटलांटिक संधि संगठन , दक्षिण पूर्व एशिया संधि संगठन , मध्य एशिया संधि संगठन (ब्म्छज्व्) थे। अमेरिका को ऐसी आशा थी कि भारत इन संगठनों की सदस्यता अवश्य स्वीकार करेगा परंतु ऐसा संभव न हुआ जिससे अमेरिका और भारत के संबंधों में कटुता के बीज यहीं से पनपने लगे। नेहरू का मानना था कि प्रादेशिक संगठनों की सदस्यता स्वीकार करना संयुक्त राष्ट्र के उद्देश्यों के विरूद्ध है। भारत अमेरिका संबंधों में उस समय तनाव तब और अधिक आया जब अमेरिका ने

1954 में पाकिस्तान से सैन्य संबंध स्थापित किया, 1959 में भारत अमेरिका संबंधों को और कटु बना दिया। भारत द्वारा पाकिस्तान और अमेरिका की इन समझौतों तथा अमेरिका द्वार पाकिस्तान को दिये जने वाले सहायता का विरोध किये जाने पर, भारत को यह आश्वासन दिया गया कि इन शास्त्रास्त्रों का प्रयोग भारत के विरूद्ध नहीं किया जाएगा। लेकिन यर्थाथ में 1965 और 1971 के युद्ध में पाकिस्तान के द्वारा इन शस्त्रास्त्रों का प्रयोग भारत के विरूद्ध खुलकर किया गया। यहां यह ध्यान दिलाना जरूरी है कि 1947 में कश्मीर के मुद्दे पर भी संयुक्त राष्ट्र संघ में अमेरिका ने भारत के विरूद्ध पाकिस्तान का समर्थन किया था। अमरीका ने कश्मीर समस्या की तुलना जूनागढ़ से कर इसे हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष कहकर और उलझन में डाल दिया। हिन्द चीन के प्रश्न पर भी दोनों देशों में संबंध तनावपूर्ण रहे। फ्रांस के इस उपनिवेश को साम्यवादी प्रसार से बचाने के लिए अमेरिका ने फ्रांस की मांग पर तत्काल सैनिक सहायता उलब्ध कराया जबकि भारत इसके पक्ष में न था। यह हिन्द चीन की समस्या को शांतिपूर्ण ढंग से सुलझाने के पक्ष में था। 1974, और 1998 के भारत के परमाणु परीक्षणों के विरूद्ध अमरीका की तीव्र प्रतिक्रिया रही साथ ही उसने कुछ आर्थिक प्रतिबंध भी लगाए। अभी हाल में आई एफ एस देवयानी खेबरागडे की अमेरिका में अपमान के कारण दोनों देशों के बीच स्थिति तनावपूर्ण हो गई थी।

उपरोक्त घटनाएं जहां भारत-अमेरिका में खट्टास उत्पन्न की वहीं दूसरी तरफ दोनों देश अनेक मुद्दों पर साथ-साथ चल रहे हैं। आर्थिक, सांस्कृतिक, शिक्षा, वैज्ञानिक, तकनीक और आतंकवाद के मुद्दों पर भारत और अमेरिका के आपसी साझा प्रयास जारी है। 1950 के दशक में खाद्य सामग्री की कमी की समस्या का सामना करने के लिए अमरीका ने भारत को खाद्य सामग्री की आपूर्ति की। 1950 के तकनीकी सहयोग समझौते के अनुसार अमेरिका भारत को महत्वपूर्ण सहायता प्रदान करता रहा। 1951 से 1954 तक भारत अमेरिका संबंध मधुर रहे। उसक बाद 80 के दशक में राजीव गांधी की अमेरिका यात्रा को नेहरू की खोजयात्रा से जोड़ा। भारत-अमेरिका संबंधों में एक नया मोड़ 21 मार्च 2000 से मानी गई जो 22 वर्षों के बाद किसी अमेरिकी राष्ट्रपति की यात्रा थी। इस यात्रा के दौरान दृष्टिकोण पत्र 2000 पर हस्ताक्षर किया गया, जिसमें विभिन्न क्षेत्रों (व्यापार, निवेश, विज्ञान प्रौद्योगिकी, सूचना आधारित उद्योग) के बीच आने वाली अड़चनों को हटाने के लिए प्रतिबद्धता व्यक्त की गई। सितंबर 2013 में प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह की यात्रा के दौरान ऊर्जा सुरक्षा, आर्थिक संबंध, आतंकवाद सामरिक भागीदारी के साथ-साथ क्षेत्रीय और वैश्विक मुद्दों पर बात की। प्रधान मंत्री नरेन्द्र मोदी की सितंबर 2014 की अमेरिका यात्रा तथा 26 जनवरी 2015 की गणतंत्र दिवस के समारोह में अमरीकी राष्ट्रपति ओबामा को भारत यात्रा का न्योता दोनों देशों को राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक, प्रौद्योगिकी और सूचना क्षेत्रों के संबंधों से आगे चलकर एक भावनात्मक संबंध विकसित करने का मार्ग प्रशस्त कर रहा है।

8.2 उद्देश्य

इस ईकाई के अंतर्गत भारत-रूस की ऐतिहासिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, रक्षा तथा परमाणु ऊर्जा संबंधों का विस्तृत वर्णन करेंगे ।इस ईकाई में भारत की स्वतंत्रता से लेकर अब तक के समय समय पर आये सम्बन्धो में उतार-चढ़ाव भरे संबंधों पर विस्तारपूर्वक विवेचन करेंगे। इसके अतिरिक्त भारत के परमाणु परीक्षण के समय सम्बन्धों में आये तनावए पाकिस्तान तथा चीन से युद्ध के समय अमेरिकी दृष्टिकोण तथा भारत अमेरिका असैन्य परमाणु सहयोग समझौता आदि घटनाओं पर विस्तृते दृष्टिपात करेंगे। इस ईकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आपः-

- भारत अमेरिका सम्बन्धों के ऐतिहासिक महत्व को समझ सकेंगे।
- भारत अमेरिका के शीतकालीन समय के संबंधों के उतार-चढ़ाव को समझ सकेंगे।
- भारत अमेरिका के निकट संबंधों का विस्तृत वर्णन कर सकेंगे।

- परमाणु असैन्य सहयोग समझौता होने के पश्चात दोनों देशों के सम्बन्धों में आये मूलभूत सकारात्मक बदलाओं को समझ सकेंगे।

8.3 भारत अमेरिका -

भारत अमेरिका विश्व के दो बड़े लोकतांत्रिक राष्ट्र हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् दोनों से ऐसी आशा की जा रही थी कि इन दोनों प्रजातांत्रिक देशों का आपस में मधुर संबंध होना स्वाभाविक है लेकिन यर्थाथ में ऐसा न दिखा। भारत एक ओर जहां समाजवादी विचारों से प्रभावित था वहीं अमेरिका पूंजीवादी विचार का नेतृत्व कर रहा था। यही कारण रहा कि दोनों देश लोकतांत्रिक होते हुए भी एक-दूसरे के उतने करीब नहीं आ सके जितना दो लोकतांत्रिक देशों को होना चाहिए। भारत की स्वतंत्रता के तुरंत पश्चात् पाकिस्तान ने कश्मीर पर आक्रमण कर दिया। उस समय भारत ने कश्मीर मुद्दा संयुक्त राष्ट्र संघ में उठाया जहां पर अमरीका ने भारतीय दृष्टिकोण का समर्थन नहीं किया तथा पाकिस्तान को आक्रमणकारी राष्ट्र नहीं माना। जिससे दोनों देशों के संबंध कमजोर हुए। 1949 में भारत ने जब कम्यूनिस्ट चीन को मान्यता प्रदान की तो अमेरिका को यह नागवार गुजरा। 1950 के कोरिया युद्ध के समय भारत इसका शांतिपूर्ण समाधान चाहता था किंतु अमेरिका युद्ध में भी भारत को शामिल करना चाहता था, किंतु भारत ने इसमें भाग नहीं लिया। 1956 के हंगरी संकट के समय साम्यवादी सरकार का तख्ता पलट कर दिया गया तब हंगरी ने सोवियत संघ से सहायता मांगी। जिसका अमेरिका ने विरोध किया यहां भारत का दृष्टिकोण स्पष्ट नहीं था, जिससे अमेरिका ने नाराजगी जाहिर की। 1956 में स्वेज संकट के समय भारत-अमेरिका नजदीक आते हुए प्रतीत हुए किंतु 1961 के गोवा संकट के समय, गोवा का भारत में विलय का अमेरिका ने विरोध किया। 60 के दशक में उत्तरी वियतनाम पर अमेरिका द्वारा भारी बम वर्षा द्वारा तीव्र आलोचना का परिणाम यह निकला कि अमरीकी राष्ट्रपति जानसन द्वारा मई 1965 की शास्त्री की अमरीकी यात्रा का निमंत्रण वापस ले लिया गया। भारतीय प्रधान मंत्री इंदिरा गांधी ने अमरीका यात्रा की जिससे यह अपेक्षा की गई कि दोनों देशों के संबंधों में सुधार होगा लेकिन इस तरह की कोई शुरूआत नहीं हुआ। बांग्लादेश संकट के समय भी इंदिरा गांधी भारत का पक्ष रखने के लिए अमरीका की यात्रा पर गई लेकिन कोई साकारात्मक परिणाम न निकला। अगस्त 1971 में भारत-सोवियत संघ के बीच मैत्री संधि को मूर्त रूप दिया गया जिसके कारण अमेरिकी विदेश नीति को गहरा धक्का लगा। 1977 में जनता पार्टी अस्तित्व में आई। राष्ट्रपति कार्टर ने मोरारजी को बधाई संदेश भेजा। ऐसा माना जा रहा था कि अमरीका-भारत संबंधों में अपूर्व वृद्धि होगी। कार्टर ने भारत की यात्रा की तथा अपनी मां के भारत प्रवास को याद करते हुए इस देश के साथ भावनात्मक लगाव के प्रकट किया। परमाणु क्षेत्र से संबंधित वार्ता सफल नहीं रही लेकिन तीन क्षेत्रों आर्थिक एवं व्यापारिक, विज्ञान एवं तकनीकी तथा शिक्षा और संस्कृति में सहयोग बढ़ाने का निर्णय लिया गया। उद्योग कृषि तथा शिक्षा के क्षेत्र में भी नई योजनाएं शुरू करने का आश्वासन अमेरिका द्वारा भारत को दिया गया। भारतीय प्रधान मंत्री देसाई और विदेश मंत्री बाजपेयी ने अमेरिका की यात्रा की जिसके द्वारा अमेरिका में इन दोनों नेताओं ने स्पष्ट रूप से संदेश दिया कि भारत गुटनिरपेक्षता की नीति का शुरू से ही समर्थक रहा है और रहेगा। भारत ने अफगानिस्तान में हुई क्रांति पर अमेरिकी नीति का समर्थन करने के बजाय अपने स्वतंत्र निर्णय लेने की शक्ति का परिचय देते हुए इसे अफगानिस्तान का आंतरिक मामला बताया। उत्तर दक्षिण संवाद, नई विश्व अर्थव्यवस्था के प्रश्न पर श्री देसाई ने समृद्ध राष्ट्रों के उपभोक्तावाद तथा लालची रवैये की कड़ी आलोचना की। अतः इन सभी घटनाओं के विश्लेषण के आधार पर जनता सरकार को विदेश नीति को अमरीकी पिछलगू की नीति नहीं कहा जा सकता है। 80 के दशक में राजीव गांधी ने अमरीका की यात्रा की। अमरीका द्वारा आर्थिक एवं तकनीकि सहायता मिली। दूसरी तरफ अमेरिकी सिनेट ने एक प्रस्ताव पारित कर आणिवक मामले में भारत और पाकिस्तान को एक ही श्रेणी में लाकर रख दिया। अमरीकी समर्थित बहुउद्देश्यीय एवं प्रद्योगिकी सहायता बंद कर

दिया गया जहां भारत ने इसका कड़ा विरोध किया। भारत और अमेरिका के संबंधों में कटुता आई। राष्ट्रपति क्लिंटन की 2000 में भारत यात्रा भारत-अमरिका संबंधों के एक नये अध्याय की शुरूआत मानी जा सकती है। इसके बाद प्रधानमंत्री की बाजपेयी की अमरीका यात्रा हुई जिसके अंतर्गत उन्होंने कांग्रेस के दोनों सदनों की संयुक्त बैठक को संबोधित किया। इन्होंने आतंकवाद तथा परमाणु अप्रसार का मुद्दा उठाया। प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह की अमरीकी यात्राओं के शिखर वार्ताओं में अमरीका ने भारत को विश्व मंच पर आर्थिक, सामरिक, बौद्धिक सम्पदा के क्षेत्र में एक उभरती शक्ति के रूप में मान्यता दी। विशेषकर बदलते हुए वैश्विक परिदृश्य को ध्यान में रखते हुए व्यापार, निवेश, ऊर्जा सुरक्षा, रक्षा, सूचना, विज्ञान और प्रौद्योगिकी तथा परमाणु सहयोग पर विशेष जोर दिया गया है। राष्ट्रपति बराक ओबामा नवंबर 2010 की भारत यात्रा पर रहे, यात्रा के दौरान हुए वार्ताओं में दोनों देशों के कई कंपनियों के बीच समझौते हुए जिसमें अधक से अधिक रोजगार के अवसर उपलब्ध होने की संभावना व्यक्त की गई। राष्ट्रपति ओबामा ने 'रक्षा अनुसंधान संगठन' एवं, भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन एवं 'भारत डानेमिक्स लि0 पर से प्रतिबंध हटाने की घोषणा की। दोनों देशों ने मादक पदार्थों की तस्करी, आतंकवाद, समुद्री डकैती से रक्षा तथा समुद्री सुरक्षा, मानवीय सहायता, तथा आपदा राहत से संबंधित विषयों पर आदान-प्रदान तथा भागीदारी पर सहमति व्यक्त की। दोनों देशों ने साइबर सुरक्षा सहयोग तथा व्यापार एवं पूंजी निवेश पर आपसी सहमति व्यक्त की। सितंबर 2014 में भारतीय प्रधानमंत्री शिखर वार्ता के लिए अमरीका पहुंचे जहां उन्होंने 'मेक इन इंडिया' की जानकारी दी। उन्होंने भारत के पास उपलब्ध तीन शक्तियों लोकतंत्र, जनसांख्यिकी लाभांश और मांग के विशिष्ट संयोजन का भी उल्लेख किया। मंगल ग्रह मिशन की सफलता की ओर ध्यान दिलाते हुए मोदी ने भारतीय युवा को संकेतित करते हुए कौशल विकास पर भी बल दिया। संयुक्त राष्ट्र महासभा के 69वें अधिवेशन में हिंदी में संबोधन किया। इन्होंने सभा का ध्यान कई वैश्विक चुनौतियों जैसे कमजोर वैश्विक अर्थव्यवस्था, विश्व के कई भागों में अशांति एवं तनाव, अग्रवादी हिंसा, तस्करी, अफ्रीका में इबोला संकट, जलवायु परिवर्तन, कार्बन उत्सर्जन से संबंधित समस्या, पर्यावरण संकट तथा वैश्विक गरीबी की तरफ आकर्षित किया।

इस प्रकार भारत अमेरिका के आरंभ में अब तक के संबंध तनाव से सामंजस्य तथा नकारात्मकता से सकारात्मकता की तरफ दिखाई पड़ रहे हैं। दोनों देशों के संबंध सहयोगात्मकता और उद्देश्यपूर्णता की ओर बढ़ रहे हैं।

8.3.1 आर्थिक संबंध

जिस समय भारत स्वतंत्र हुआ उस समय अमेरिका यह अपेक्षा कर रहा था कि भारत अपनी चरमरायी हुई अर्थव्यवस्था को मजबूत करने के लिए या तो पूंजीवादी गुट और अमेरिकी नेतृत्व वाली गठबंधनों की सदस्यता अवश्य स्वीकार करना चाहेगा। लेकिन भारत ने ऐसा नहीं किया, क्योंकि नेहरू को इस बात की अच्छी तरह समझ थी कि भारत के आर्थिक विकास के लिए किसी गुट में शामिल होने से अच्छा है दक्षिण एशिया में शांति स्थापित करने का प्रयास किया जाए। भारत ने स्वयं को शक्ति संघर्ष से अलग रखने की नीति अपनाई। 1951 से 1954 तक अमरीका ने भारत को आर्थिक सहायता दी तथा भारत के प्रथम पंचवर्षीय योजना की कुशलता की कामना किया। 1950 के दशक में इस प्रकार खाद्य समस्या का सामना करने के लिए खाद्य पदार्थों की आपूर्ति की गई। इसके अतिरिक्त कई नीजी संस्थाओं फोर्ड फाउण्डेशन तथा रॉकफेलर फाउन्डेशन से भी भारत को महत्वपूर्ण सहायता प्रदान की जा रही थी। 1960 के दशक में चार वर्ष की अवधि के लिए पीएल 480 नामक एक समझौता हुआ, जिसके द्वारा अमरिका ने पर्याप्त मात्रा में खाद्यान् भेजने का आश्वासन दिया। 1967 में अमरीकी दबाव के कारण रूपए का अवमूल्यन करना पड़ा। भारत-पाक युद्ध के बाद अमरीका ने भारत को बंद की गई आर्थिक सहायता पुनः प्रारंभ की गई लेकिन यह सहायता नगण्य थी जिसके कारण भारत की योजनाओं पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

1990 के दशक में भारत द्वारा उदारीकरण की नीति को अपनाया गया। भारत के इस आर्थिक सुधार तथा व्यापार व पूंजी निवेश की खूली नीति का अमरीका द्वारा स्वागत किया। भारत द्वारा उठाये गये इस साहसपूर्ण कदम को अमरीका ने उत्साहित किया। ऋण उपलब्धि के भारत के अनुरोध को अमरीका ने समर्थन प्रदान किया। प्रधान मंत्री पी0वी0 नरसिम्हा राव की अमरीका यात्रा ने भारत-अमरीका संबंधों को एक नई दिशा प्रदान की। 1990 का दशक, भारत अमरीका आर्थिक क्रियाकलापों एवं वाणिज्य विकास के दृष्टिकोण से बहुत ही महत्वपूर्ण रहा। जनवरी 1995 में अमरीका के तत्कालीन वाणिज्य मंत्री रोनाल्ड ब्राउन के नेतृत्व में आए एक शिष्ट मंडल ने ऊर्जा उत्पादन, परिवहन, पेट्रोरसायन, वित्तीय सेवाओं, दूरसंचार तथा स्वास्थ्य रक्षा परियोजनाओं के लिए सात अरब से भी अधिक अमरीकी डॉलर के आर्थिक समझौते पर हस्ताक्षर हुए। दूसरी तरफ अमरीका की अंतर्राष्ट्रीय विकास एजेंसी उन कार्यक्रमों पर बल दे रही थी जो भारतीय अर्थव्यवस्था के अवसंरचनाओं तथा संस्थाओं में परिवर्तन एवं उनके नजीकरण में सहायक होंगे। इस प्रकार जो आर्थिक उदारीकण ने गुणात्मक परिवर्तन का आधारशिला रख दिया। भारत को अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष से आर्थिक सहायता प्राप्त हुई तथा आर्थिक उदारीकरण अपनाने से भारत दुनिया के 10 विशाल बाजारों में सम्मिलित हो गया। वित्तीय क्षेत्र में आर्थिक उदारीकरण के पश्चात् अमरीका की विभिन्न कंपनियों भारत में निवेश कर रही है। वर्ष 2012-13 में अमरीका, भारत का बड़ा व्यापारिक साझीदार व निर्यात गन्तव्यों में से एक था। वर्ष 1990 के भारत-अमरीका का कुल साझा व्यापार जहां 5.6 अरब डॉलर था वहीं 2013 में इन दोनों देशों का कुल साझा बाजार 63.704 डॉलर तक पहुंच गया था जो इन 23 वर्षों में 1037.5 प्रतिशत की व्यापक वृद्धि को दर्शाता है। अमेरीका भारत के साथ व्यापार करने वाला दूसरा सबसे बड़ा देश है वहीं चीन प्रथम स्थान रखता है। अगर हम तुलनात्मक विश्लेषण करते हैं तो पाते हैं कि जहां वर्ष 2013 में भारत चीन का द्विपक्षीय व्यापार 68 अरब डालर है वहीं भारत-अमेरिका का द्विपक्षीय व्यापार 63.7 अरब डालर है। अमेरीका को निर्यात की जाने वाली सर्वाधिक भारतीय वस्तुओं में टेक्सटाइल की भागीदारी 17.1 प्रतिशत की रही है। दूसरी तरफ अमेरिका से भारत को आयातीत होने वाली सर्वाधिक वस्तुओं में बहुमूल्य पत्थर व धातु की 24 प्रतिशत की हिस्सेदारी है। भारत अमेरिका द्विपक्षीय संबंध का एक सकारात्मक पक्ष यह है कि व्यापार संतुलन भारत के पक्ष में झुका हुआ तथा द्विपक्षीय व्यापार में अमेरिका का वस्तु व्यापार घाटा 20 अरब डॉलर का है तथा व्यापार घाटा 6.6 अरब डॉलर का है।

भारत-अमेरिका आर्थिक संबंधों को मजबूती प्रदान करने के उद्देश्य से 'भारत-अमेरिका वाणिज्यिक वार्ता' आरंभ करने का समझौता 23 मार्च 2000 को हुआ। जिसका उद्देश्य व्यापार को सुविधाजनक बनाना तथा अर्थव्यवस्था क्षेत्रों, जिसमें आई टी, आधारित संरचना, जैव प्रौद्योगिकी एवं सेवा भी शामिल है। नवंबर 2011 में इस वार्ता के तहत 'व्यवसाय से व्यवसाय' संपर्क का आयोजन किया गया था। इसके अतिरिक्त बाद के वर्षों में भारत-अमेरिका व्यापार को सरल बनाने हेतु तथा एक-दूसरे की आवश्यकता को पूरा करने हेतु समय-समय पर अनेक व्यापारिक मंचों, समूहों तथा संगठनों का गठन किया गया। इनमें प्रमुख रूप से भारत-अमेरिकी व्यापार नीति मंच (2005), भारत-अमेरिका कृषि ज्ञान पहल (2005), भारत-अमेरिका सी ईओ फोरम (2006), निजी क्षेत्रक सलाहकार समूह 2007) भारत-अमेरिका कृषि संवाद ,मानसून पूर्वानुमान करार, संयुक्त मानसून डेस्क, द्विपक्षीय उड्डयन सुरक्षा समझौता (2011) है। इन सबके अतिरिक्त जुलाई 2014 ई0 में भारत तथा अमेरिक, अपने-अपने नागरिकों द्वारा विदेशों में जमा किये जा रहे बेहिसाब धन को रोकने के लिए तथा अपने नागरिकों द्वारा प्रत्येक देश में धारित वित्तीय खातों के बारे में जानकारी साझा करने पर सहमत हुए। यहॉ स्पष्ट रूप से उल्लिखित है कि अमेरिका 1 जुलाई 2014 को अस्तित्व में आने वाले अपने 'विदेश खाता कर अनुपालन अधिनियम (एफ ए टी सी ए) के तहत भारत सहित 50 देशों से अपने नागरिकों के बारे में वित्तीय जानकारी प्राप्त करना चाहता है।

8.3.2 रक्षा सहयोग

भारत-अमेरिका रक्षा सहयोग शित युद्ध काल में यदि विश्लेषण किया जाय तो शैथिल्यता के रूप में ही प्रतीत होता है। भारत द्वारा अमेरिका नेतृत्व वाली सैनिक गुटों की सदस्यता को अस्वीकार करना तथा अपने स्वतंत्र विदेश नीति निर्माण के मार्ग को प्रशस्त करने का निर्णय कहीं न कहीं भारत-अमेरिका रक्षा संबंधों को तीव्रता प्रदान नहीं कर सका। 1965 में अमेरिका द्वारा भारत और पाकिस्तान को समान स्तर पर परखने की नीति के अधीन दोनों देशों को दी जाने वाली आर्थिक एवं सैनिक सहायता को बंद कर दी गई, चूंकि उस समय भारत में खाद्यान समस्या मुंह बाये खड़ी थी। अतः यह अमेरिका के द्वारा भारत के प्रति कठोरता की नीति थी। शीतयुद्धोत्तर काल में पी0वी0 नरसिम्हा राव ने अमरीका यात्रा की जिसमें राष्ट्रपति बुश के मुलाकात के परिणाम स्वरूप दोनों में रक्षा संबंधी समझौते पर हस्ताक्षर हुए। हिन्द महासागर में भारत-अमेरिकी नौसेना के संयुक्त अभ्यास की इजाजत दी गई। भारत और अमेरिका ने 10 से 15 मई 1995 तक एक संयुक्त नौसेना अभ्यास मालाबार ।। भी किया। दोनों देशों द्वारा रक्षा संबंधों की गत्यात्मकता प्रदान करते हुए जून 2005 में 'भारत-अमेरिका रक्षा संबंधों की नई रूप रेखा' पर हस्ताक्षर किया गया। जिसके अंर्तगत रक्षा अभ्यास, रक्षा व्यापार तथा प्रौद्योगिकी हस्तांतरण एवं सहयोग के माध्यम से पारस्परिक लाभ के रक्षा सहयोग का अनुपालन करने पर सहमत हुए हैं। दोनों देशों के बीच रक्षा सहयोग को आगे बढ़ाने में रक्षा नीति समूह (क्ळच्), रक्षा संयुक्त कार्य समूह ,रक्षा खरीद एवं उत्पादन समूह ,वरिष्ठ प्रौद्योगिकी सुरक्षा समूह संयुक्त तकनीकी समूह , सैन्य सहयोग समूह, तथा सर्विस टू सर्विस एक्सक्यूटिव स्टीयरिंग ग्रुप महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। रक्षा सहयोग को बढ़ावा देने में 'मलाबार' संयुक्त नौसैनिक अभ्यास का महत्वपूर्ण योगदान है। सितंबर 2014 में प्रधान मंत्री मोदी की अमेरिकी यात्रा के परिणाम स्वरूप दोनों देशों के बीच रक्षा सहयोग को 10 साल और बढ़ाने पर सहमति बनी। प्रधान मंत्री मोदी ने अमरीकी कम्पनियों को भारतीय रक्षा उत्पादन क्षेत्र में भागीदारी करने का निमंत्रण दिया। भारतीय सरकार ने भी रक्षा सहयोग को और अधिक सकारात्मक बनाने के प्रयास में रक्षा में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश की सीमा को बढ़ाकर 26 प्रतिशत से 49 प्रतिशत कर दिया है। इस प्रकार उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि आरंभ के वर्षों में रक्षा के क्षेत्र में बहुत ज्यादा चढ़ाव नहीं था, परंतु बाद के दिनों में दोनों देशों के सहयोग ने रक्षा संबंधों को एक नई दिशा दी है।

8.3.4 परमाणु ऊर्जा सहयोग

भारत की स्वतंत्रता के समय से ही भारत-अमेरिका संबंध परमणु क्षेत्र में गैर बराबरी का रहा है। अमेरिका पांच परमाणु सम्पन्न राष्ट्रों के अतिरिक्त किसी अन्य राष्ट्र को परमाणु सम्पन्न राष्ट्र के रूप में स्वीकार करने से इन्कार करता रहा है। इसीलिए अमेरिका ने भारत के 1974 तथा 1998 के परमाणु विस्फोट का जोरदार ढंग से विरोध किया। इसके अतिरिक्त तमाम तरह के भारत पर आर्थिक और सैन्य प्रतिबंध लगा दिये। किंतु समय के साथ अमेरिकी दृष्टिकोण में भी परिवर्तन आया तथा अमेरिका-भारत के बीच 18 जुलाई 2005 में असैन्य परमाणु सहयोग समझौते पर सहमति बनी तथा 2 मार्च 2006 को जार्ज डब्ल्यू बुश तथा मनमोहन सिंह ने हस्ताक्षर किये। इस समझौते को 123 समझौता भी कहते हैं। इस समझौते पर हस्ताक्षर तत्कालिन विदेश मंत्रियों श्री प्रणव मुखर्जी तथा कोण्डालिजा राइस द्वारा 10 अक्तूबर, 2008 को वाशिंगटन में किया गया था। नवंबर 2010 में राष्ट्रपति ओबामा की भारत यात्रा के दौरान दोनों देशों ने नागरिक परमाणु समझौते के क्रियान्वयन की शुरूआत के लिए सभी चरणों के पूरे होने की घोषणा की गई थी। इसके साथ ही भारत और अमेरिका की कम्पनियॉं इस क्षेत्र में सहयोग शुरू करने को लेकर प्रयासरत हैं। इस पहल को भारत- यूएस नागरिक ऊर्जा कार्यदल की नियमित बैठकों द्वारा ऊर्जा प्रदान की गई। इस समझौते को 25 जनवरी 2015 को अंतिम रूप दिया गया। धातव्य है कि मनमोहन

सिंह की पिछली सरकार तथा अमेरिका की बुश सरकार के समय भारत अमेरिकी असैन्य परमाणु समझौता हुआ था, किंतु जवाबदेही कानूनों से जुड़े मुद्दों के समुचित समाधान न होने के कारण समझाते को मूर्त रूप नहीं दिया गया जा सका। यहां यह उल्लेखनीय है कि इस कानून के अंतर्गत किसी परमाणु बिजली घर में दुर्घटना की स्थिति में उसकी जिम्मेदारी यंत्र आपूर्ति करने वाली कंपनी पर डाली गई है जिसमें आपूर्ति कंपनी के प्रबंधकों की गिरफ्तारी से लेकर वित्तीय हर्जाना जैसी कार्रवाई की व्यवस्था है। भारत-अमेरिका असैन्य परमाणु समझौते का 'सिविल लाइबिलिटी फॉर न्यूक्लियर डायमेज ऐट 2010' एक विशिष्ट भाग है। इसके तहत भारत ने अमेरिका से यह वायदा किया था कि वह वियन घोषणा पत्र के अनुरूप कान्वेंशन ऑन सप्लीमेंटरी कम्पेनसेशन अर्थात् परमाणु छति के लिए पूरक मुआवजे का पालन करने हेतु सभी आवश्यक कदम उठायेगा। भारत और अमेरिका के 100 अरब डॉलर के एक दशक की परियोजनाओं का भविष्य टिका हुआ है। ध्यातव्य है कि अमेरिकी कम्पनियॉं जनरल इलेक्ट्रिक तथा वेस्टिंग हाउस को आंध्र प्रदेश तथा गुजरात में 6.6 परमाणु बिजली घर लगाने की सैद्धांतिक तौर पर सहमति मिल चुकी है किंतु उक्त कानून के लागू न होने के कारण बिजली घरों के स्थापना पर कार्य अभी प्रारंभ नहीं किया जा सका है। इसके अतिरिक्त अमेरिका को यह भी चिंता है कि उसकी परमाणु कम्पनियों को भारत में व्यापार का समुचित अवसर नहीं मिला। यह विदित है कि अमेरिकी प्रयास से ही भारत को परमाणु क्लब में शामिल किया गया किंतु इसका फायदा अमेरिका को नहीं मिला। यहां यह उल्लेखनीय है कि 2008 में भारत-अमेरिका असैन्य परमाणु करार के पश्चात ही इस करार को आधार बनाकर भारत ने फ्रांस से परमाणु बिजली घर लगाने का करार किया तथा रूस को भी नए रियेक्टर लगाने का सौदा मिला किंतु इस होड़ में अमेरिकी कंपनियॉं पीछे रह गई।

समझौते के मुख्य बिन्दु

(1) भारत अपने 22 नाभिकीय संयंत्रों में से 14 अंतर्राष्ट्रीय निगरानी हेतु खोलेगा।

(2) सैन्य परमाणु रियेक्टरों तथा फास्ट ब्रिडर रियेक्टरों को अंतर्राष्ट्रीय निगरानी में नहीं रखा जाएगा।

(3) भारत अपने सैन्य तथा असैन्य परमाणु संयंत्रों को 2014 तक अलग करने की बात संधि में की गई थी।

समझौते से भारत को लाभ

(1) भारत को संवर्द्धित यूरेनियम के अतिरिक्त अन्य परमाणु ईंधन तथा प्रौद्योगिकी मिल सकेगी।

(2) भारत परमाणु ऊर्जा उत्पादन के क्षेत्र में तेजी से आगे बढ़ सकेगा तथा पेट्रोलियम पदार्थों पर निर्भरता कम होगी।

(3) इस समझौते से भारत को स्वतः मान्यता मिल जाएगा।

(4) परमाणु संबंध के क्षेत्र में भारत एक जिम्मेदार तथा गंभीर राष्ट्र के रूप में स्थापित होगा।

(5) सुरक्षा परिषद में भारत की दावेदारी और मजबूत होगी।

(6) भारत द्वारा परमाणु परीक्षण के पश्चात् लगाये गये तमाम अंतर्राष्ट्रीय प्रतिबंध स्वतः समाप्त हो जाऐंगे तथा संभावनाओं के नये द्वार खुलेंगे।

समझौते से अमेरिका को लाभ

(1) अमेरिका ने भारत के साथ असैय परमाणु समझौता की तमाम बाधाओं को दूर कर अपनी वैश्विक महाशक्ति की छवि बरकरार रखी।

(2) परमाणु ऊर्जा कार्यक्रम में वह भारतीय परमाणु वैज्ञानिकों के विशेषज्ञता का लाभ उठा सकेगा।

(3) अमेरिका इसके द्वारा चीन पर नियंत्रण रख सकेगा।

(4) भारत अमेरिका के लिए एक बड़ा बाजार है जिसका वह लाभ उठा सकेगा।

(5) भारत के परमाणु कार्यक्रम की जानकारी प्राप्त करने में अमेरिका को कूटनीतिक कामयाबी मिली है।

(6) संपूर्ण एशिया में अमेरिका का वर्चस्व बढ़ेगा तथा इस कार्य में भारत जैसे शक्तिशाली राष्ट्र सहयोगी की भूमिका निभायेगा।

भारत के लिए जोखिम

(1) भारत की परमाणु कार्यक्रम की गोपनीयता पूरी तरह समाप्त हो जाएगी।

(2) अंतर्राष्ट्रीय निगरानी से मुक्त भारत की सैन्य परमाणु संयंत्रों के बारे में जानकारी प्राप्त करना अमेरिका के लिए अब कठिन नहीं रहा।

(3) भारत को प्राप्त ईंधन तथा तकनीकी चोरी-छिपे दूसरे देश न जाय यह जिम्मेदारी भारत की होगी। (4) सैन्य तथा असैन्य परमाणु संयंत्रों को अलग करना कठिन तथा व्ययसाध्य है।

16.3.5 विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी

भारत तथा अमेरिका विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में निम्नलिखित मंचों के माध्यम से आपसी सहयोग को बढ़ावा दे रहे हैं

(1) 'भारत-यूएसए विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी समझौता' जिस पर हस्ताक्षर अक्तूबर 2005 में किया गया।

(2) 'भारत-अमेरिका विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संयुक्त मिशन' के माध्यम से सहयोग के लिए '2012-2014' एक्शन प्लान बनाया गया।

(3) 'भारत-अमेरिकी विज्ञान एवं प्रद्योगिकी विन्यास कोस' की स्थापना वाणिज्यिकरण को बढ़ावा देने के लए 2009 में की गई थी।

(4) 'भारत-यूएसए' विज्ञान एवं प्रद्योगिकी मंच की स्थापना 2000 में की गई थी।

(5) 'मलेनियम अलायंस' यू एस एड तथा फिक्की का संयुक्त प्रयास है जो भारत में विकासात्मक चुनौतियों के समाधान करने का प्रयास करता है।

(6) 'मानसून डेस्क' मानसून पूर्वानुमान को विस्तार देने हेतु अमेरिकी राष्ट्रीय पर्यावरण पूर्वानुमान केन्द्र में एक मानसून पटल की स्थापना नवंबर 2010 में की गई थी।

(7) 'ज्वाइइसरिशोल्यूसन प्रोग्राम' के माध्यम से अरब की खाड़ी तथा हिन्द महासागर में गहरे समुद्री धरातल में नमून ड्रिलिंग की जाती है तथा साथ ही साथ वैश्विक जलवायु परिवर्तन पर अनुसंधान की जाती है।

भारत और अमेरिका के मध्य अंतरिक्ष क्षेत्र में सहयोग का एक लम्बा अनुभव रहा है। दोनों देशों ने अंतरिक्ष में सहयोग पर एक द्विपक्षीय संयुक्त कार्यदल की स्थापना एक मंच के रूप में किये हैं। इस कार्यदल की चौथी बैठक का आयोजन वाशिंगटन में 21-22 मार्च 2013 को हुई थी। दोनों राष्ट्रों के मध्य अंतरिक्ष में सहयोग के प्रमुख क्षेत्र निम्नलिखित हैं

(1) वैज्ञानिकों के आदान-प्रदान

(2) ओसीएम 2 एवं इन्सैट ३ डी में सहयोग

(3) मंगल मिशन में सहयोग

(4) कार्बन/पारिस्थतिकी प्रणाली निगरानी एवं मानकीकरण्

(5) रेडियो आकुल्टेशन में सहयोग

(6) भू-विज्ञान सहयोग

(7) अंतर्राष्ट्रीय अंतरिक्ष केंद्र

(8) वैश्विक नौवाहन उपग्रह प्रणाली

(9) अंतरिक्ष खोज सहयोग

(10) अंतरिक्ष कचरा।

8.3.6 सांस्कृतिक तथा शिक्षा के क्षेत्र में सहयोग

भारत-अमेरिका के सांस्कृतिक संबंध निरंतर प्रगाढ़ हो रहे हैं। अमेरिकी लोगों में भारतीय संगीत नृत्य कला तथा साहित्य में बहुत रूचि रखते हैं। कैनेडी केन्द्र भारतीय संस्कृति संबंध परिषद तथा राजदूतावास के सहयोग से मार्च 2011 में तीन सप्ताह तक चलने वाले एक विशाल पर्व 'मैक्सिमम इंडिया' का आयोजन किया गया था जिसमें सुप्रसिद्ध भारतीय कलाकारों की रचनाओं तथा प्रतिभाओं का प्रदर्शन किया गया था। दोनों देशों के दूतावास भी समय-समय पर सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन करते रहते हैं।

अमेरिका में भारतीय लोगों की संख्या बढ़कर 2010 ई0 में 30 लाख हो गई है। जो अमेरिकी आबादी का एक प्रतिशत है। जिससे जन-जन के बीच संबंध और प्रगाढ़ हुए हैं। भारतीय अमेरिकी समुदाय के शिक्षाविद् उद्यमी तथा व्यवसायिक लोगों की विशाल संख्या है जो अमेरिका में अपना प्रभाव छोड़ रहे हैं। ये लोग अमेरिका के उच्चस्तरीय प्रशासनिक तथा संवैधानिक पदों पर विराजमान हैं।

भारत- अमेरिका संबंध शिक्षा के क्षेत्र में भी निरंतर गतिशील है। 2009 में 'सिंह-ओबामा ज्ञान पहल' शुरू किया गया जिसके अंतर्गत विश्वविद्यालयों की सम्बद्धता तथा यू-एस एवं भारतीय विश्व विद्यालयों के बीच कनिष्ठ संकाय विकास आदान-प्रदान को बढ़ावा देने हेतु पांच मिलियन अमेरिकी डॉलर की व्यवस्था की गई। इसके अतिरिक्त भारत तथा अमेरिका ने एक नये द्विपक्षीय फूलब्राइट समझौते पर हस्ताक्षर किये हैं जो अमेरिका से प्राप्त वित्तीय पोषण के साथ 1950 से संचालित फूल-ब्राइट समझौते का स्थान लेगा। जिसमें भारत तथा अमेरिका की सरकारें संपूर्ण भागीदार के रूप में छात्रवृत्ति कार्यक्रम का क्रियान्वयन करेंगी। प्रथम भारत-यूएस शिक्षा शिखर सम्मेलन का आयोजन 13 अक्तूबर 2011 को वाशिंगटन डीसी में किया गया था। इस सम्मेलन के समापन पर एक संयुक्त विज्ञाप्ति जारी किया गया था जिसमें दोनों देश निम्न बिन्दुओं पर सहमति जताये थे। उच्च शिक्षा को प्राथमिकता, शोध एवं विकास में विस्तार, व्यावसायिक शिक्षा तथा कौशल विकास के क्षेत्र में भागीदारी, शैक्षणिक कार्यक्रमों को सशक्त बनाना तथा दोनों देशों में ऐसे सहयोग को गहनता और समर्थन प्रदान करने में निजी क्षेत्रों की संलिप्तता का स्वागत करना आदि शामिल है।

दूसरी शिक्षा वार्ता 2012 में वाशिंगटन में हुई, जिसमें भारतीय शिक्षा जगत में क्रांति लाने वाले निर्णय लिये गये। यहां पर कम्यूनिटी कॉलेज की तर्ज पर कौसल विकास संस्था खोलने की बात की गई। ध्यातव्य है कि अमेरिकी कम्यूनिटी कॉलेज, वोकेशनल प्रशिक्षण प्रदान करने वाले उच्च शिक्षण संस्थान है। ये कॉलेज 1901 में खाले गये तथा 1929 की आर्थिक मंदी के दौरान जब बेरोजगारी बढ़ी तब इन कॉलेजों ने दो वर्षीय कोर्स द्वारा हजारों अर्द्ध पेशेवर श्रम का निर्माण की। जबकि भारत में वोकेशनल कोर्सों का चलन बहुत कम है, जिससे स्नातक तो ज्यादा लोग होते हैं किंतु कुशल श्रमिक बहुत कम होते हैं। ऐसा एक अनुमान के मुताबिक 2022 तक भारत को 500 मिलियन श्रम तक की जरूरत होगी किंतु हमारे वर्तमान ढॉचे में केवल तीन मिलियन लोगों को ही वोकेशनल प्रशिक्षण दिया जा सकता है। जबकि हमारी आवश्यकता इससे तीन गुनी अधिक है। अतः इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए कम्यूनिटी कॉलेज की स्थापना पर बल दिया जा रहा है। इसी कड़ी में जून 2013 में मैसिव ओपन ऑनलाईन कोर्सेज में सहयोग हेतु आईआईटी मुंबई एवं एडएक्स के बीच समझौता हुआ।

8.3.7 आतंकवाद

भारत और अमेरिका दोनों आतंकवाद से पीड़ित राष्ट्र हैं। भारत जहां पिछले चार दशक से आतंकवाद को झेल रहा है वहीं अमेरिका डेढ़ दशक से आतंकवाद के प्रति गंभीर हुआ है। आज भी आतंकवाद पर अमेरिका का दृष्टिकोण दोहरा चरित्र वाला है, और भारत के आतंकवाद की समस्या के प्रति उपेक्षित दृष्टिकोण अपनाता है। इस

संबंध में भारत के प्रधान मंत्री नरेन्द्र मोदी ने काउन्सिल ऑन फॉरेन रिलेशन्स के अपने संबोधन में ठीक ही कहा कि आतंकवाद का मुकाबला करने में हमें गुणा-भाग यानि लाभ-हानि की प्रवृत्ति छोड़ देनी चाहिए। उन्होंने कहा कि भारत में जो आतंकवाद है वह घरेलू नहीं बल्कि निर्यातीत आतंकवाद है। साथ ही साथ उन्होंने आतंकवाद के अच्छे और बुरे रूप में वर्गीकरण करने को अनुचित बताया। तथा जाति, धर्म सीमओं से परे आतंकवाद को प्रश्रय देने वाले राष्ट्र के प्रति कठोर रूख अपनाने का आह्वान किया। अमेरिका में जब अलकायदा ने 11 सितंबर 2001 को बर्ल्ड ट्रेड सेंटर पर हमला किया तब अमेरिका का रूख आतंकवाद के प्रति कड़ा हो गया। भारत उस समय अमेरिका के साथ खड़ा था और आतंकी हमले का निंदा किया। इसके बाद अमेरिका ने 2001 में तालीबानी आतंकवाद को समाप्त करने के लिए अफगानिस्तान पर आक्रमण किया तथा 2003 में रासायनिक हथियारों के संदेह होने पर इराक पर आक्रमण किया। किंतु इन दोनों राष्ट्रों से अमेरिकी सैनिकों की वापसी होने लगी तो वहॉं आतंकवाद और अराजकता और बढ़ गई। अफगानिस्तान में तालिबान जहॉं मजबूत हो रहा है वहीं इराक और सिरिया में इस्लामिक स्टेट का प्रभाव दिन-प्रतिदिन बढ़ रहा है। भारत की चिंता विशेषतः अफगानिस्तान से नाटो सैनिकों की वापसी को लेकर है क्यों कि भारत की चिंता जायज है कि अमेरिकी सैनिकों की वापसी से अफगानिस्तान में सुरक्षा तथा स्थायत्वि पर प्रतिकूल असर पड़ेगा। जिसका प्रभाव भारत पर भी पड़ेगा। इसलिए भारत, अफगानिस्तान से धीरे-धीरे सैनिकों की वापसी चाहता है ताकि इराक जैसी हालत अफगानिस्तान की न हो। भारत-अमेरिकी ने उन नागरिकों के बारे में सूचना के आदान-प्रदान का निर्णय लिया जो सिरिया इराक अथवा अन्य किसी आतंकवादी सैनिक संगठनों से जुड़े हों। धातव्य है कि अमेरिका के सैकड़ों नागरिक इराक में इस्लामिक स्टेट से मिल गये हैं। भारत के भी कुछ नागरिक आईएस से जुड़ गये हैं। यद्यपि भारत पश्चिम एशिया में कुख्यात आईएस या आईएसआईएस संगठन के खिलाफ जारी संघर्ष में किसी गठबंधन का हिस्सा नहीं है तथापि उस क्षेत्र में आतंकी हमलों के लिए जाने वाले लोगों से जुड़े अहम विषयों से निपटने में अमेरिका के साथ मिलकर काम करने पर सहमति जताई। आईएस जैसे संगठनों को हम अंतर्राष्ट्रीय गठजोड़ के द्वारा समाप्त किया जा सकता है। अमेरिका और भारत ने लश्कर-ए-तोएबा जैश-ए-मोहम्मद, डी कंपनी, अलकायदा तथा हक्कानी नेटवर्क जैसे संगठनों के आतंकियों तथा अपराधिक नेटवर्कों के सुरक्षित ठिकानों को समाप्त करने हेतु संयुक्त रूप से सहमति जतायी है। ओबामा प्रशासन ने भारत को आतंकवाद पर साझा सहयोग प्रदान करते हुए दाऊद इब्राहिम, हाफिज सईद जैसे आतंकियों को भारत को सौंपे जाने के वास्ते, पाकिस्तान पर दबाव बनाने की पहल कर रहा है। इसके अतिरिक्त अमेरिका ने भारत को अपने प्रसिद्ध माइन-ऐसिस्टेंट अम्बुस प्रोटेक्टेट विमानों को बेचने का भी निर्णय लिया है जिनसे समय रहते आईईडी का पता चल जाएगा।

8.3.8 पाकिस्तान और चीन के मुद्दों पर भारत के प्रति अमेरिका के दृष्टिकोण

जिस समय भारत स्वतंत्र हुआ उस समय अंतर्राष्ट्रीय जगत में विश्व दो गुटों में बंट चुका था, यह शीत युद्ध का समय था। अमेरिका इस बात की आशा कर रहा था कि भारत अपनी सैनिक तथा आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अमेरिकी (पूंजीवादी) खेमें में शामिल होगा। लेकिन भारत ने अपनी स्वतंत्र विदेश नीति को अपनाते हुए तथा सम्प्रभुता का अनोखा परिचय देते हुए किसी भी गुट अथवा सैनिक संधि में सम्मिलित होने से मना कर दिया। भारत का यह रूख अमेरिका को नागवार गुजरा तथा उसने इसी क्रम में 1954 में पाकिस्तान को NATO का सदस्य बना लिया। अमेरिका ने पाकिस्तान से सैनिक संधि करके उसे बड़े स्तर पर सैनिक सामग्री भी उपलब्ध कराया। जहां तक अमेरिका का पाकिस्तान के साथ संबंध स्थापित करने का प्रश्न था इसके दो उद्देश्य पूरे हो रहे थे पहला, वह भारत द्वारा सैनिक गुट में शामिल न होने पर दण्ड देना तथा दूसरा, पाकिस्तान के शत्रु भारत की शक्ति

को सिमित कर पाकिस्तान को प्रसन्न करना। आगे चलकर अमेरिका-पाकिस्तान द्विपक्षीय रक्षा समझौते भारत अमेरिका संबंधों को और कटू बना दिया क्योंकि इसके जरिए अमेरिका पाकिस्तान को अस्त्र-शस्त्र एवं हथियार उपलब्ध कराता रहा। पाकिस्तान को दी जाने वाली अमरीकी सहायता का भारत लगातार विरोध किया जिसे अमेरिका द्वारा यह कह कर टाल दिया जाता कि यह सहायता केवल साम्यवाद के प्रसार को रोकने के लिए दिया जा रहा है बाकि अन्य किसी प्रयोजन के लिए नहीं जबकि पाकिस्तान ने इन शस्त्रों का प्रयोग 1965 और 1971 के युद्ध में खुल कर किया। इन सबके अतिरिक्त पाकिस्तान को अपने गुट में शामिल कर अमेरिका दक्षिण-एशिया में अपनी पहुंच स्थापित करना चाहता था।

राष्ट्रपति कार्टर के समय में जब अमेरिका को जब यह पता चला क पाकिस्तान गोपनीय रूप से परमाणु अस्त्रों का निर्माण करने वाला है तो उसने अपनी ओर दी जाने वाली आर्थिक और सैनिक सहायता पर रोक लगा दी गई। लेकिन 1979 के अंत में अफगानिस्तान में सोवियत हस्ताक्षेप के कारण अमेरिका द्वारा पाकिस्तान को पुनः सैन्य एवं आर्थिक सहायता प्रदान कर दी गई। रिगन प्रशासन में यह सहायता और अधिक कर दी गई। आगे चलकर 1980 के दशक में सीनेटर प्रेसलर द्वारा प्रस्तावित एक संशोधन पारित हो किया गया। इसके अनुसार पाकिस्तान को कोई भी सहायता देने से पूर्व राष्ट्रपति को यह प्रमाणित करना आवश्यक था कि पाकिस्तान के पास कोई परमाणु शस्त्र नहीं थे। इसके तहत सभी स्थितियों को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रपति बुश ने 1990 के शुरूआती दशक में पाकिस्तान को दी जाने वाली आर्थिक सैनिक सहायता बंद कर दी। परंतु, 1995 में अमेरिकी सीनेट द्वारा हैक ब्राऊन ने एक संशोधन किया जिसके तहत प्रेसलर संशोधन में एक छूट देने की व्यवस्था कर दी। जिसका साफ मतलब यह था किसी न किसी बहाने अमेरिका द्वारा पाकिस्तान को सहायता प्रदान करना।

शीतयुद्ध के समाप्त होने के बाद भारत-अमेरिकी संबंधों में सुधार हुए हैं। 09/11 की दुर्घटना के बाद अमेरिका ने अपनी विदेशनीति में परिवर्तन करते हुए आतंकवाद तथा कश्मीर के प्रश्न पर भारत के पक्ष में होता दिखाई दे रहा है।

अमेरिका वैश्विक परिदृश्य में साम्यवाद के प्रसार को रोकने के लिए प्रतिबद्ध था, अतः इस कारण से वह चीन का विरोधी था। 1962 में चीन का भारत पर आक्रमण ने भारत-अमेरिकी संबंधों को एक नया दृष्टिकोण प्रदान किया। 1961 में जब नेहरू अमेरिकी यात्रा पर गये तो कैनेडी प्रशासन सह अस्तित्व के प्रश्न को अस्वीकार करते हुए यह माना कि कोई राष्ट्र लोकतंत्र और साम्यवाद के प्रश्न पर तटस्थ भी रह सकता है। भारत-अमेरिका के संबंधों में मधुरता आती दिखाई दी। अतः जब चीन ने 1962 में भारत पर आक्रमण किया तो भारत के अनुरोध पर अमेरिका बिना शर्त के सहायता देने के लिए तैयार हो गया।

8.4 समस्याएं एवं संभावनाएं

प्रारंभ से ही भारत-अमेरिका संबंधों में कभी कड़वाहट तो कभी मधुरता का समन्वय देखा गया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् जब भारत ने गुटनिरपेक्षता की नीति अपनाई तो अमेरिका ने भारत पर दोहरा चरित्र का आरोप लगाया। लेकिन, जब भारत ने 1950 के सुरक्षा परिषद के उस प्रस्ताव को स्वीकार किया जिसमें उत्तरी कोरिया को दक्षिणी कोरिया के विरूद्ध आक्रामक घोषित किया गया था तब अमेरिका ने भारत के निर्णय का समर्थन किया। 1965 के भारत-पाक युद्ध तथा 1971 के बांग्लादेश के संकट के समय अमेरिका का दृष्टिकोण पाकिस्तान समर्थक रहा। जहां तक कश्मिर का प्रश्न है अमेरिका जान-बूझ कर भारत के संवैधानिक दृष्टिकोण की अनदेखी करता है। 1971 से 1991 की अवधि में भारत-सोवियत मैत्री अमेरिका में तनाव उत्पन्न करती है। इजराइल के प्रश्न पर, भारत-अमेरिका नीतियॉ परस्पर विरोधी रही है। एनपीटी तथा सीटीबीटी पर भारत के रवैये को अमेरिका ने कभी पसंद नहीं किया। लेकिन वह भारत के कठोर रवैये को समाप्त करने में सफल नहीं रहा। अफगानिस्तान में सोवियत

हस्तक्षेप को लेकर भारत और अमेरिका के विचारांे में हमेशा भिन्नता बनी रहती है। वर्तमान में मनमोहन-बुश प्रशासन में असैन्य-परमाणु सहयोग समझौते से जुड़े जवाबदेही कानूनों के मुद्दें पर समुचित समाधान न होने के कारण तथा अमेरिकी कम्पनियों को भारतीय बाजार में समुचित अवसर न मिलने पर तनाव की स्थिति उत्पन्न होती रहती है।

भारत-अमेरिका संबंधों में कई बिन्दुओं पर तनाव देखे गये हैं परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि इन दोनों देशों में कभी सहयोगात्मक संबंध नहीं रहे हैं अथवा इनमें सहयोग की संभावनाएं नहीं हैं। कैनेडी प्रशासन में भारत और अमेरिका के बीच चार वर्षों की अवधि के लिए पीएल 480 नामक एक समझौता हुआ, जिसके अंतर्गत अमेरिका ने भारत को पर्याप्त मात्रा में खाद्यान्न उपलब्ध करवाए। 1962 के भारत-चीन युद्ध में अमेरिका ने भारत का समर्थन किया। 1964 में भारत के अनेक भागों में भारत-अमेरिका ब्रिटेन तथा आस्ट्रेलिया के वायु सैनिकों का संयुक्त अभ्यास हुआ। इसके अतिरिक्त अमेरिका ने भारत को तारापुर में परमाणु शक्ति संयंत्र स्थापित करने के लिए सहयोग दिया। इसी प्रकार समय-समय पर दोनों देशों में सहयोगात्मक संबंध भी विकसित हुए । शीत युद्ध समाप्त होने के पश्चात् तथा भारत में आर्थिक उदारीकरण बहाल करने की प्रक्रिया ने दोनों देशों के संबंधों को एक नई गति प्रदान की है। हाल ही में भारत ने रक्षा में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को 49 फीसदी कर अमेरिकी कंपनियों को भारत में निवेश के लिए निमंत्रण दिया है। दोनों देश सामरिक साझेदारी की दूरदर्शिता को प्रकट करते हुए हाल ही में यह संयुक्त बयान जारी किया है कि सामरिक साझेदारी हमारी समृद्धि और शांति के लिए प्रयास है। ताकि दोनों देशों की प्रछन्न क्षमता का उपयोग किया जा सके जिससे दोनों देशों के नागरिकों, अर्थव्यवस्थाओं एवं कारोबारियों के बीच संबंधों में वृद्धि हो सके। प्रधान मंत्री मोदी की अमेरिकी यात्रा में दोनों देशों ने इस बात पर सहमति जताई कि हम साथ मिलकर विश्वसनीय एवं स्थायी मैत्री स्थापित करने का प्रयास करेंगे जो देशों के सुरक्षा एवं स्थायित्व को बढ़ावा दे सके। इसके अतिरिक्त जलवायु परिवर्तन, स्वच्छता, शिक्षा, विज्ञान, पर्यावरण, अनियंत्रित प्रदूषण तथा आतंकवाद से निपटने के साझा सहयोग पर बल दिया। दोनों देशों ने कहा कि हमारा विजन है कि संयुक्त राज्य एवं भारत के बीच 21वीं शताब्दी में भरोसेमंद साझेदार के रूप में एक परिवर्तनकारी संबंध स्थापित होगा।

अभ्यास प्रश्न

1. भारत कब स्वतंत्र हुआ थाघ्

A. 1946 B 1947 C. 1948 D 1949

2. भारत ने अपना पहला परमाणु परिक्षण कब कियाघ्

A. 1972 B. 1973 C. 1974 D. 1975

3. भारत ने दूसरी बार परमाणु परिक्षण कब कियाघ्

A. 1996 B. 1997 C. 1998 D. 1999

4. अमेरिका के वर्ल्ड ट्रेड सेंटर पर आतँकवादी हमला कब हुआघ्

A. 2000 B. 2001 C. 2002 D. 2003

5. भारत तथा अमेरिका के बीच असैन्य परमाणु सहयोग समझौते पर पहली बार सहमति कब बनीघ्

A. 2003 B. 2004 C. 2005 D. 2006

6. अभी हाल ही में अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा किस समारोह के मुख्य अतिथि थेघ्

A. स्वतंत्रता दिवस B. गणतंत्र दिवस C. शहीद दिवस D. प्रवासी भारतीय दिवस

8.5 सारांश

वर्तमान समय में भारत-अमेरिका संबंध प्रत्येक क्षेत्र में निरंतर गतिशील हैं। चाहे वो सामाजिक क्षेत्र हो, चाहे वो राजनीतिक क्षेत्र हो, चाहे वह आर्थिक क्षेत्र हो या ऊर्जा क्षेत्र है या सामरिक क्षेत्र हो। पहले जहां भारत अमेरिका संबंध शीतयुद्ध काल में तनावपूर्ण थे वहीं सोवियत संघ के विखंडन के पश्चात् तथा भारत में 1990 के दशक में आर्थिक उदारीकण के शुरूआत होने से दोनों देशों के संबंध मधुर होने शुरू हो गये। विशेषतः आर्थिक उदारीकरण भारत-अमेरिका संबंधों को बहुत घनिष्ठ बना दिया। इस संबंध का अनुमान हम इस बात से लगा सकते हैं कि अमेरिका भारत का सबसे बड़ा व्यापारिक सहयोगी लंबे समय से रहा है। आज भी अमेरिका के साथ व्यापारिक सहयोग चीन के बाद सबसे ज्यादा है। भारत ने जब अपना द्वितीय परमाणु परीक्षण 1998 में किया तब दोनों देशों का संबंध एक बार पुनः शिथिल अवस्था में आ गई थी, किंतु कुछ वर्ष पश्चात् ही अमेरिका की बुश सरकार ने जब भारत के साथ परमाणु असैन्य सहयोग समझौते पर सहमति जताई तो दोनों देशों के संबंध पुनः मधुर होने लगे। अमेरिका ने भारत को परमाणु ऊर्जा प्रदान करने के लिए संयुक्त राष्ट्र तथा एनएसजी द्वारा भारत को परमाणु करार में आने वाली बाधाओं को दूर करने हेतु कई प्रकार के तकनीकी सुविधाओं को प्रदान करवाया। इसके अतिरिक्त भारतीय प्रधान मंत्री नरेन्द्र मोदी सितंबर, 2014 में अमेरिकी यात्रा की तो दोनों देशों के संबंध और प्रगाढ़ हुए, साथ ही साथ प्रधान मंत्री नरेन्द्र मोदी अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा को भारत के गणतंत्र दिवस के मुख्य अतिथि के तौर पर आने का न्योता दिया तो अमेरिकी राष्ट्रपति ने सहर्ष स्वीकार किया तथा 26 जनवरी 2015 को 66वें भारतीय गणतंत्र दिवस के साक्षी बने।

8.6 शब्दावली

लोकतंत्र . जनता के मूल्यों आदर्शो को प्रतिफलित करने वाली व्यवस्था
एनपीटी . परमाणु अप्रसार संधि
सीटीबीटी .व्यापक परमाणु परीक्षण संधि
एनएसजी . न्यूक्लियर सप्लायर ग्रुप
नाटो . नार्थ अटलांटिक ट्रीटी आर्गेनाईजेशन
अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति दृ विश्व के विभिन्न देशों के बीच होने वाली क्रियाविधि
अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध . एक ऐसा अनुशासन जो दो या दो से अधिक राज्यों के सम्बन्धो का अध्ययन करता है।
कूटनीति . विदेश नीति के संचालन का तरीका
संयुक्त राष्ट्र संघ . एक अंतराष्ट्रीय संगठन
सोवियत संघ . भूतपूर्व रूस
गुटनिरपेक्षता . तृतीय विश्व के देशो का एक तटस्थ संगठन
लश्कर-ए-तोएबा . एक आतंकवादी संगठन
जैश-ए-मोहम्मद . एक आतंकवादी संगठन
अलकायदा . एक आतंकवादी संगठन
हक्कानी नेटवर्क . एक आतंकवादी संगठन
आईएस . इस्लामिक स्टेट

8.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.B, 2.C, 3.C, 4. B, 5. C, 6.B

8.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

1.खन्ना, वी. एन. एवं अरोड़ा, लिपाक्षी (2006) "भारत की विदेश नीति" विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि., नई दिल्ली।

2.दीक्षित जे. एन. (2004) "भारतीय विदेश नीति", प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली।

3.घई, यू. आर. एवं घई के. के. (2005) "अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति", न्यू एकेडमिक पब्लिशिंग कंपनी, जालंधर।

4.घई, यू. आर. एवं घई. वी. (2004) "भारतीय विदेश नीति", न्यू एकेडमिक पब्लिशिंग कंपनी, जालंधर।

5.वरमानी, आर. सी. (2007) "समकालीन अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध", गीतांजलि पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

6.फड़िआ, बी. एल. (2014) "अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति", साहित्यिक भवन पब्लिकेशन, इलाहाबाद।

7.बीस्वाल, तपन (2010), "अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध", मैकमिलन पब्लिशर्स इंडिया लि., नई दिल्ली।

8.9 सहायक/उपयोगी सामग्री पाठ्य /

1.भारतीय विदेश मंत्रालय की आधिकारिक वेबसाइट

2.द हिन्दू समाचार पत्र

3.जनसत्ता समाचार पत्र

8.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.भारत- अमेरिका सम्बन्धो की ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को ध्यान मे रखते हुए, आर्थिक तथा परमाणु ऊर्जा सम्बन्धो पर प्रकाश डालिये।

2.भारत- अमेरिका के बीच सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक्, सांस्कृतिक तथा ऊर्जा सहयोग सम्बन्धी सम्बन्धों का विस्तृत वर्णन कीजिये।

इकाई 09 : भारत व चीन

इकाई की संरचना

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 भारत और चीन संबंध
9.3.1 भारत – चीन संबंध का प्रमोद काल (1949-1958)
9.3.2 भारत- चीन संबंध का शीत काल (1958-1970)
9.3.3 भारत –चीन सम्बन्धों का तनाव शैथिल्य काल (1970- 2001)
9.3.4 भारत – चीन संबंधो का पुनरुथान (2001- वर्तमान)
9.3.5 आर्थिक संबंध
9.4 सारांश
9.5 शब्दावली
9.6 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर
9.7 संदर्भ ग्रंथ
9.8 सहायक /उपयोगी पाठ्य सामाग्री
9.9 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

चीन व भारत विश्व के दो बड़े विकासशील देश हैं। दोनों ने विश्व की शांति व विकास के लिए अनेक काम किये हैं। भारत और उसके सब से बड़े पड़ोसी देश चीन के बीच लंबी सीमा रेखा है। लम्बे अरसे से भारत सरकार चीन के साथ अपने संबंधों का विकास करने को बड़ा महत्व देती रही है। भारत व चीन बहुध्रुवीय दुनिया की स्थापना करने का पक्ष लेते हैं, प्रभुत्ववादी व बल की राजनीति का विरोध करते हैं और किसी एक शक्तिशाली देश के विश्व की पुलिस बनने का विरोध करते हैं। इस समय चीन व भारत अपने-अपने शांतिपूर्ण विकास में लगे हैं। अंतरराष्ट्रीय मामलों में दोनों में व्यापक सहमति है। आंकड़े बताते हैं कि संयुक्त राष्ट्र संघ में विभिन्न सवालों पर हुए मतदान में अधिकांश समय, भारत और चीन का पक्ष समान रहा। अब दोनों देशों के सामने आर्थिक विकास और जनता के जीवन स्तर को सुधारने का समान लक्ष्य है। इसलिए, दोनों को आपसी सहयोग की आवश्यकता है।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई के अंतर्गत हम भारत –चीन के सम्बन्धों का अध्ययन करेंगे। जिसके अंतर्गत भारत –चीन के बीच राजनीतिक और आर्थिक सम्बन्धों के बारे मे जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। इस इकाई को भलीभाँति पढ़ने और समझने के बाद आप :-

- भारत –चीन के बीच प्रमुख मुद्दे को समझ जाएंगे
- भारत-चीन के बीच आर्थिक संबंधो को अध्ययन कर सकेंगे
- वैश्वीकरण के दौर मे भारत-चीन के सम्बन्धों का महत्व को समझ जाएँगे
- चीन का दक्षिण एशिया मे भूमिका को समझ सकेंगे

9.3 भारत और चीन संबंध

भारत और चीन के सम्बन्धों को चार काल मे बाटा जा सकता हैं।

9.3.1 भारत – चीन संबंध का प्रमोद काल (1949-1958)

7 दिसम्बर 1946 मे जवाहरलाल नेहरू ने अपने नई दिल्ली से रेडियो प्रसारण मे कहा कि "चीन अपने महान इतिहास के साथ एक शक्तिशाली देश हैं। वह हमारा पड़ोसी हैं। वह युगों से हमारा मित्र रहा हैं और यह मित्रता बनी रहेगी और बढ़ेगी और फूलेगी"। चीन की पीपुल्स गणराज्य के साथ राजनयिक संबंधों की स्थापना करनेवाला पहला गैर- समाजवादी देश भारत बना। के॰ एम॰ पनिक्कर चीन को भारत के पहले राजदूत नियुक्त किए गए। 1950 के दशक में चीन व भारत के संबंध इतिहास के सब से अच्छे काल में थे। दोनों देशों के शीर्ष नेताओं ने एक-दूसरे के यहां की अनेक यात्राएं कीं और उनकी जनता के बीच भी खासी आवाजाही रही। शुरुआती दशक मे भारत और चीन के संबंध कोरिया मुद्दे और तिब्बत समस्या को लेकर तनावपूर्ण रहे। जनवरी 1951 मे भारत और चीन के बीच चावल-पटसन विनिमय समझौता हुआ। लेकिन भारत और चीन के सम्बन्धों की परिपक्वता 1954 मे चीन के प्रधानमंत्री चाउ-एन-लाई के भारत की यात्रा के बाद आई। पंचशील सिद्धांत चीन और भारत द्वारा प्रवर्तित किये गये। पंचशील की मुख्य विषयवस्तु है-

(1) एक दूसरे की प्रादेशिक अखंडता और प्रभुसत्ता का सम्मान करना
(2) एक दूसरे के विरुद्ध आक्रामक काररवाई न करना
(3) एक दूसरे के आंतरिक विषयों में हस्तक्षेप न करना
(4) समानता और परस्पर लाभ की नीति का पालन करना तथा
(5) शांतिपूर्ण सह- अस्तित्व की नीति में विश्वास रखना।

इस यात्रा के बाद दोनों देशों ने पंचशील सिंद्धतों मे विश्वास व्यक्त किया। पंचशील चीन व भारत द्वारा दुनिया की शांति व सुरक्षा में किया गया एक महत्वपूर्ण योगदान है, और आज तक दोनों देशों की जनता की जबान पर है। भारत के प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू ने अक्टूबर 1954 मे चीन की यात्रा की। अक्टूबर 1954 दोनों देश आपस मे 8 वर्षीय व्यापार एवं परस्पर संपर्क संधि पर हस्ताक्षर किए। 1954 मे "हिन्दी चीनी भाई भाई" का नारा लगा। इससे दोनों देशों के बीच और नजदीकियां बढ़ी। अप्रैल 1955 मे भारतीय प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू और चीन के प्रधानमंत्री चाउ-एन-लाई बांडुंग, इंडोनेशिया में एफ्रो-एशियाई सम्मेलन के दौरान मिले। नवम्बर –दिसंबर 1956 मे चीन के प्रधानमंत्री चाउ-एन-लाई दूसरी बार यात्रा किया। जिसके परिणामस्वरूप सयुंक्त राष्ट्र मे चीन के स्थायी सदस्यता पर भारत का समर्थन, ताइवान समस्या पर भारत का समर्थन, गोवा मामले पर चीन का भारत का समर्थन मिला। यह काल भारत और चीन के सम्बन्धों का स्वर्णकाल रहा

9.3.2 भारत- चीन संबंध का शीत काल (1958-1970)

1960 के दशक में चीन व भारत के संबंध शीत काल में प्रवेश कर गये। 1957-58 मे भारत और चीन के सम्बन्धों मे तनाव आ गए और भारत-चीन के बीच सीमा विवाद उत्पन्न हो गया। जैसा की 23 जनवरी 1959 मे चाउ-एन-लाई ने कहा "भारत-चीन सीमा कभी भी औपचारिक रूप से सीमाकिन्त नहीं की गयी है"। इसके पहले चीन के एक के एक मासिक पत्रिका 'चाईना पिकटोरियल' मे कुछ मानचित्र प्रकाशित किया जिसमे भारत के बड़े भाग को चीन के भाग के रूप मे दिखाया गया। भारत सरकार के विरोध करने पर चीन उसे पुराना नक्शा बताकर बात को टाल दिया। 1958 मे चीन ने भारत के खुरनाक किले पर अधिकार कर लिया। इसी बीच तिब्बत समस्या पर

भारत सरकार ने दलाई लामा को समर्थन दिया। 9 मार्च 1959 को तिब्बत मे चीन सरकार के विरुद्ध विद्रोह हुआ। तिब्बत की मंत्रिपरिषद ने तिब्बत को स्वतंत्र घोषित कर दिया। लेकिन चीन की सेना ने इस विद्रोह को दमन कर दिया। विद्रोह के दमन होने के साथ ही तिब्बत के नेता दलाई लामा ने अपने अनुयायियों के साथ भारत मे शरण लिया। भारत सरकार ने दलाई लामा को राजनीतिक शरण दिया। इस कदम से चीन काफी नाराज हुआ। चीन सरकार की तीव्र प्रतिक्रिया हुई तथा भारत पर पंचशील सिद्धांत तोड़ने का आरोप भी लगाया। इधर चीन के सैनिक भी बार - बार सीमा अतिक्रमण कर रहे थे। सन 1959 के अंत तक भारत और चीन के बीच एक पूर्ण सीमा विवाद पनप चुका था। भारत के प्रधानमंत्री ने स्वीकार किया कि "भारत अपने आप को एक खतरनाक स्थिति मे पाता है, जिसमे युद्ध की संभावना दिखाई देती हैं"। भारत का हर संभव प्रयास था कि सीमा विवाद शांतिपूर्ण तरीकों से हल किया जाए इसीलिए चीन के शुरुआती कार्यवाही को नजरंदाज किया। 7 अगस्त, 1959 को चीन की गश्ती टुकड़ी ने खीजमैन के स्थान पर भारतीय प्रदेश मे प्रवेश किया और 25 अगस्त 1959 को एक बड़ी चीनी टुकड़ी ने नेफ़ा के सावन मण्डल मे प्रवेश किया और लौंगजू की भारतीय सीमा चौकी पर कब्जा कर लिया। इसके बाद सीमा घटनाओं की एक श्रृंखला चालू हो गई। नेहरू ने सीमा विवाद की समस्या की नजाकत को देखते हुए चाउ-एन-लाई को भारत अमात्रित किया जिससे शांतिपूर्ण से समाधान हो जाए। अप्रैल 1960 में दिल्ली की औपचारिक यात्रा करते हुए चीन के प्रधानमंत्री चाउ एन-लाई ने भारत के सामने प्रस्ताव रखा कि चीन मैकमोहन रेखा को स्वीकार कर लेगा यदि भारत अक्साई चिन पर चीन के कब्ज़े को स्वीकार कर ले और उसे चीन की भूमि मान ले। भारत की सरकार ने चीन के इस प्रस्ताव को मानने से इंकार कर दिया। इसके बाद सीमा पर टकराव पहले की तरह जारी रहे।

1962 की गर्मियों में और शरदकाल में सीमा पर रक्तपात और मुठभेड़ें बहुत ज़्यादा बढ़ गईं। फिर 20 अक्तूबर को चीनी सैनिकों ने भारी संख्या में भारत के उत्तरी इलाकों में और उत्तर-पूर्वी इलाकों में घुसपैठ शुरू कर दी। दो देशों के बीच युद्ध भड़क उठा। 20 से 25 अक्तूबर के बीच सिर्फ़ पाँच दिन के भीतर भारत के ढाई हज़ार सैनिक शहीद हो गए। चीन ने अपने हताहतों की संख्या की घोषणा नहीं की। लेकिन विशेषज्ञों का कहना है कि चीन के भी सैकड़ों सैनिक मारे गए थे। इस लड़ाई के फलस्वरूप चीन ने भारत के 14 हज़ार वर्ग किलोमीटर के इलाके पर कब्ज़ा कर लिया। मुख्य तौर पर यह अक्साई चिन का इलाका था, जिसे भारत अपना इलाका मानता था।

1962 की लड़ाई में चीन ने भारत की 14 हज़ार वर्ग किलोमीटर भूमि पर कब्ज़ा कर लिया। लेकिन अमरीका, ब्रिटेन और सोवियत संघ द्वारा जब चीन की कार्रवाइयों की आलोचना की गई तो पेइचिंग को भारत के साथ एकतरफ़ा ढंग से युद्ध बंद करने की घोषणा करनी पड़ी। भारत और चीन के बीच उभरे पारस्परिक मतभेदों को दूर करने के लिए दिसम्बर 1962 में कोलम्बो में छह गुटनिरपेक्ष देशों के प्रतिनिधियों का सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में यह प्रस्ताव रखा गया कि चीनी सेना को वहाँ से 20 किलोमीटर पीछे हटना होगा, जहाँ पर वह उपस्थित है और 20 किलोमीटर के इस इलाके को 'नो मैन्स लैण्ड' या असैनिक-क्षेत्र घोषित कर दिया जाएगा। भारत इस प्रस्ताव पर तुरन्त राजी हो गया और चीन ने भी कुछ शर्तों के साथ इसे स्वीकार कर लिया। लेकिन आगे इस बारे में जो बातचीत हुई, उससे पता लगा कि दोनों देशों का नज़रिया एक-दूसरे के पूरी तरह से विपरीत है। इसलिए इस बारे में कुछ नहीं किया जा सका और पूरी योजना ही विफल हो गई। इस तरह 1962 के भारत-चीन युद्ध के बाद चीन के पास भारत की 36 हज़ार किलोमीटर वह भूमि रह गई, जो इस युद्ध से पहले भारत के अधिकार में थी।

इस के बावजूद दोनों के मैत्रीपूर्ण संबंध कई हजार वर्ष पुराने हैं। इसलिए, यह शीतकाल एक ऐतिहासिक लम्बी नदी में एक छोटी लहर की तरह ही था। 70 के दशक के मध्य तक वे शीत काल से निकल कर फिर एक बार घनिष्ठ हुए। चीन-भारत संबंधों में शैथिल्य आया, तो दोनों देशों की सरकारों के उभय प्रयासों से दोनों के बीच फिर एक बार राजदूत स्तर के राजनयिक संबंधों की बहाली हुई।

9.3.3 भारत –चीन सम्बन्धों का तनाव शैथिल्य काल (1970- 2001)

परस्पर डर, शत्रुता और अविश्वास के माहौल मे रहने के पश्चात धीरे – धीरे दोनों देश को लगा की अब फिर से एक साथ आना चाहिए। भारत भी धीरे धीरे अपने शक्ति बढ़ाने लगा था। भारत द्वारा 1965 और 1971 के युद्ध मे पाकिस्तान को हराने के बाद भारत की स्थिति विश्व की नजर मे दक्षिण एशिया मे एक शक्ति रूप मे होने लगी। इस स्थिति को चीन भी समझ चुका था। चीन के तरफ से संबंध को सुधारने के लिए प्रयास जारी हो चुका था। इसका सबसे बड़ा संकेत तब मिला जब 1970 मे बींजिग मे मई दिवस स्वागत समारोह के अवसर पर माओ-त्से-तुंग ने भारतीत प्रभारी राजदूत का स्वागत समारोह कराते हुए कहा था कि "भारत एक महान देश हैं तथा भारत और चीन बहुत पहले अच्छे मित्र थे, उन्हे फिर मित्र बनना चाहिए।" इस घटना को 'माओ मुस्कराहट' बोला जाता हैं। चीन ने कश्मीर समस्या पर भी भारत और पाकिस्तान को शांतिपूर्ण प्रयासों पर पहल करने की बात करने लगा। हालकि वह पाकिस्तान को कश्मीर समस्या पर समर्थन करता रहा।

1972 मे मध्य चीनी और भारतीय अधिकारियों के बीच गैर – सरकारी तथा अप्रत्यक्ष स्तर पर संबंध बनाए और बढ़े। तत्कालीन भारत के विदेश मंत्री स्वर्ण सिंह ने भी जनवरी 15, 1972 को राज्यसभा मे कहा कि "भारत बीती बातों को भुलाने और चीन के साथ नए पारी की शुरुआत करने को तैयार हैं।" इस वक्तव्य से स्पष्ट हो गया था कि 1972 तक भारत चीन के प्रति अपने रिश्ते सुधारने को तैयार था। 1974 मे भारत ने शांतिपूर्ण परमाणु परीक्षण किया और 1975 मे सिक्किम का भारत मे विलय हुआ। इन दोनों ही मुद्धे पर चीन ने भारत सरकार की आलोचना की। जिसके परिणाम स्वरूप भारत और चीन के बीच सम्बन्धों को गति नहीं मिल पाई।

इन दोनों देशों के साथ सबसे बड़ा समस्या सीमा विवाद था। भारत और चीन यह समझने लगे थे कि युद्ध करके सीमा सम्बन्धी विवादों को हल नहीं किया जा सकता है। इसलिए 15 अप्रैल 1976 में दिल्ली और पेइचिंग ने 1962 की लड़ाई के बाद टूट चुके आपसी कूटनीतिक सम्बन्धों को फिर से क़ायम कर लिया। के. आर. नारायण को पीकिंग मे भारत का राजदूत नियुक्त किया गया और भारत-चीन के सम्बन्धों को मजबूत करने का एक सार्थक और सफल प्रयास था। इसके जवाब मे चीन ने 5 महीने के बाद भारत मे अपना राजदूत नियुक्त किया। अप्रैल 1977 मे भारत और चीन ने 13.2 करोड़ रु. मूल्य की एक व्यापार संधि की। फरवरी 1978 मे चीन का एक 16 सदस्यीय व्यापार प्रतिनिधि मण्डल भारत आया और व्यापार बढ़ाने के लिए बातचीत हुई।

1978 मे संयुक्त राष्ट्र के मुख्यालय मे भारत के तत्कालीन विदेश मंत्री अटल बिहारी वाजपेयी और चीन के तत्कालीन विदेश मंत्री हुआ के साथ लगभग 50 मिनट बात हुई। जिसमे चीन के विदेश मंत्री ने वाजपेयी को बताया कि "चीन के लोग उनकी यात्रा को बड़ी बेसब्री से इंतजार कर रहे हैं।" फरवरी 1979 मे वाजपेयी चीन की यात्रा पर गए। उन्होने चीन के नेताओं दे प्रत्यक्ष बात की। 20 साल बाद कोई भारतीय उच्च अधिकारी चीन के यात्रा की। लेकिन इस यात्रा का आगाज जितना अच्छा था उतना अंजाम अच्छा नहीं हुआ। वियतनाम पर चीन के आक्रमण के फैसले का विरोध दिखाने के लिए वाजपेयी ने बीच मे ही यात्रा समाप्त कर भारत लौटने का निर्णय कर लिया। लेकिन इस यात्रा के समय दोनों देश ने यह महसूस किया कि सभी मुद्दो का हल बातचीत से ही किया जा सकता हैं। 1979 में चीन और भारत के विदेश मंत्रालयों के सीमा-विवाद सम्बन्धी कार्यकारी-दल एक-दूसरे के देशों की यात्रा करने लगे। भावना की जगह बुद्धि को महत्त्व दिया जाने लगा। भारत इस बात पर सहमत हो गया कि वह अब इस तरह की कोई शर्त नहीं लगाएगा कि चीन पहले 1962 की लड़ाई में कब्ज़े में ली गई भारतीय ज़मीन को खाली करे, उसके बाद ही भारत उससे कोई बातचीत करेगा।

1980 मे भारत मे सत्ता परिवर्तन हुआ और इन्दिरा गांधी एक बार फिर प्रधानमंत्री बनी। दो देश आर्थिक, साँस्कृतिक और खेल क्षेत्रों में फिर से सहयोग करने लगे। इसके बाद चीन में बड़े राजनीतिक बदलाव सामने आए,

जिनकी वज़ह से भारत और चीन के आपसी रिश्ते और बेहतर होने लगे। पिछली शताब्दी के आठवें दशक के अंत में देंग स्याओ पिंग के नेतृत्त्व में सुधारवादी और व्यवहारवादी गुट सत्ता में आ गया, जिसने 1982 में यह प्रस्ताव रखा कि भारत और चीन के बीच जारी सीमा-विवाद को अनिश्चितकाल के लिए एक किनारे रख दिया जाए और आपसी सम्बन्धों का विकास किया जाए। दोनों देश एक-दूसरे से बातचीत करने के लिए तैयार हो गए थे, लेकिन 1986-87 में भारत और चीन ने फिर से एक-दूसरे पर यह आरोप लगाने शुरू कर दिए कि उन्होंने अरुणाचल प्रदेश के इलाके में एक-दूसरे के इलाकों पर कब्ज़ा कर लिया है। यही नहीं दोनों देशों ने फिर से अपनी सेनाओं को सतर्क कर दिया और कुछ सैन्य-गतिविधियाँ भी दिखाई देनी लगीं। तब भारत और चीन के बीच लड़ाई होते-होते रह गई। इन घटनाओं ने यह भी दिखाया कि राजनीतिक बातचीत का कोई विकल्प नहीं है। हालाँकि इन वार्ताओं से भी दो देशों के बीच चले आ रहे सीमा-विवाद हल नहीं हुए, लेकिन इनसे यह बात तो साफ़ हो गई कि पुरानी मानसिकता छोड़नी होगी और सभी विवादग्रस्त मुद्दों पर खुले दिमाग से बातचीत करनी होगी। इसके बाद 1988 में दो देशों के नेताओं और उच्चाधिकारियों ने एक-दूसरे के देशों की यात्राएँ करनी शुरू कर दीं। इन यात्राओं और मेल-मुलाक़ातों के बाद ही 1993 और 1996 में दो देशों ने शान्ति को बनाए रखने और सैन्य-क्षेत्र में पारस्परिक विश्वास को बढ़ाने के लिए क़दम उठाने के बारे में महत्त्वपूर्ण दुपक्षीय समझौतों पर हस्ताक्षर किए। फिर 1998 में भारत में गठजोड़ सरकार सत्ता में आई। भारत के तत्कालीन रक्षामंत्री जार्ज फ़र्नान्डीज ने चीन पर आरोप लगाया कि उसने पाकिस्तान को परमाणविक तक्नोलौजी दे दी है और तिब्बत में परमाणविक रॉकेट तैनात कर दिए हैं। इसके बाद 1998 में भारत ने परमाणविक परीक्षण किया। इससे भारत-चीन सम्बन्धों में फिर एक बार गरमा-गरमी दिखाई देने लगी। लेकिन सीमा-विवाद पर बातचीत जारी रही। वर्ष 1998 में दोनों देशों के संबंधों में भारत द्वारा पांच मिसाइलें छोड़ने से फिर एक बार ठंडापन आया। पर यह तुरंत दोनों सरकारों की कोशिश से वर्ष 1999 में भारतीय विदेशमंत्री की चीन यात्रा के बाद समाप्त हो गया।

9.3.4 भारत – चीन संबंधो का पुनरुथान (2001- वर्तमान)

वर्ष 2001 में पूर्व चीनी नेता ली फंग ने भारत की यात्रा की। वर्ष 2002 में पूर्व चीनी प्रधानमंत्री जू रोंग जी ने भारत की यात्रा की। इस के बाद, वर्ष 2003 में भारतीय प्रधानमंत्री वाजपेई ने चीन की यात्रा की। उन्होंने चीनी प्रधानमंत्री वन चा पाओ के साथ चीन-भारत संबंधों के सिद्धांत और चतुर्मुखी सहयोग के घोषणापत्र पर हस्ताक्षर किये। घोषणापत्र में भारत ने औपचारिक रूप से कहा कि भारत तिब्बत को चीन का एक भाग मानता है। इस तरह भारत सरकार ने प्रथम बार खुले रूप से किसी औपचारिक दस्तावेज के माध्यम से तिब्बत की समस्या पर अपने रुख पर प्रकाश डाला, जिसे चीन सरकार की प्रशंसा प्राप्त हुई। इस घोषणापत्र ने जाहिर किया कि चीन व भारत के द्विपक्षीय संबंध अपेक्षाकृत परिपक्व काल में प्रवेश कर चुके हैं। इस घोषणापत्र ने अनेक महत्वपूर्ण द्विपक्षीय समस्याओं व क्षेत्रीय समस्याओं पर दोनों के समान रुख भी स्पष्ट किये। इसे भावी द्विपक्षीय संबंधों के विकास का निर्देशन करने वाला मील के पत्थर की हैसियत वाला दस्तावेज भी माना गया। चीन व भारत के संबंध पुरानी नींव पर और उन्नत हो रहे हैं। वर्ष 2004 में चीन और भारत ने सीमा समस्या पर यह विशेष प्रतिनिधि वार्ता व्यवस्था स्थापित की। भारत स्थित पूर्व चीनी राजदूत च्यो कांग ने कहा, इतिहास से छूटी समस्या की ओर हमें भविष्योन्मुख रुख से प्रस्थान करना चाहिए।

6 जुलाई 2006 को चीन और भारत प्राचीन व्यापार मार्ग फिर से खोला दिया गया जो नाथूला, सिल्क रोड का हिस्सा था। नाथूला हिमालय के माध्यम से एक पास है और 44 साल पहले 1962 के भारत-चीन युद्ध के बाद बंद कर दिया गया था। यह 2006 में तोड़ दिया गया। जनवरी 2008 में, प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने चीन का दौरा

किया और राष्ट्रपति हू जिंताओ और प्रधानमंत्री वेन जियाबाओ के साथ मुलाकात की और व्यापार, वाणिज्य, रक्षा, सैन्य, और विभिन्न अन्य मुद्दों से संबंधित द्विपक्षीय विचार-विमर्श किया।

15 से 17 दिसंबर 2010 को प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह के निमंत्रण पर प्रधानमंत्री वेन भारत की सरकारी यात्रा पर आए। इस यात्रा के दौरान प्रधानमंत्री वेन, प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह के साथ वार्ता आयोजित किया। प्रधानमंत्री वेन चीन-भारत के कूटनीतिक संबंधों के 60 साल का मूल्यांकन किया। प्रधानमंत्री वेन ने चीन-भारत व्यापार सहयोग शिखर सम्मेलन के उद्घाटन समारोह को संबोधित कर चीनी और भारतीय सांस्कृतिक समुदायों के प्रतिनिधियों के साथ मुलाकात की। 2012 मे आयोजित नई दिल्ली में ब्रिक्स शिखर सम्मेलन चीन के राष्ट्रपति हू जिंताओ ने बोलते हुए कहा कि "चीन भारत-चीन दोस्ती का विकास रणनीतिक सहयोग को गहरा और आम विकास चाहते हैं और यह चीन के अडिग नीति है। भारतीय प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने कहा "भारत चीन-भारत संबंधों को शांतिपूर्ण, समृद्ध और लगातार विकसित और अधिक गतिशील के निर्माण के लिए प्रतिबद्ध है।" अन्य विषयों सीमा विवाद समस्याओं और एक एकीकृत ब्रिक्स केंद्रीय बैंक सहित चर्चा की गई।

चीन के प्रधानमंत्री ली 18 मई 2013 को भारत ने अपनी पहली विदेश यात्रा की। जिसमे सीमा विवाद को सुलझाने के लिए और आर्थिक संबंधों को प्रोत्साहित करने के शांतिपूर्ण प्रयासों का समर्थन किया। श्री ली अपनी यात्रा के दौरान तीन मुख्य विषयों पर ध्यान केन्द्रित किया। सबसे पहले कूटनीतिक सहयोग को बढ़ाने के लिए, दूसरा व्यापार और अन्य क्षेत्रों में संबंधों को सीमेंट के लिए और अंत में आम समृद्ध भविष्य के लिए रणनीति तैयार करने के लिए।

चीन के राष्ट्रपति शी जिनपिंग ने सितम्बर 2014 मे भारत की यात्रा की। शी जिनपिंग ने भारत के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के साथ शिखर बैठक की। समिति और प्रतिनिधिमंडल स्तरीय, दोनों वार्ताएं मिलाकर लगभग तीन घंटे तक चलीं। इसमें निर्णय हुआ कि चीन अगले पांच साल में भारत में 20 अरब डॉलर का निवेश करेगा। वहीं, दोनों नेताओं ने सीमा विवाद तथा वीजा मुद्दे सहित दोनों देशों के बीच संबंधों के सभी पहलुओं पर विस्तार से चर्चा की। मोदी व चीन के राष्ट्रपति के बीच यहां हुई विस्तृत बैठक के बाद समझौतों पर हस्ताक्षर किए गए। इनमें भारत में चीनी औद्योगिक पार्कों की स्थापना और भारतीय रेलवे में निवेश शामिल है। एक अन्य सहमति पत्र (एमओयू) पर विदेश मंत्री सुषमा स्वराज तथा चीन के विदेश मंत्री वांग यी ने हस्ताक्षर किए। इससे भारतीय तीर्थयात्री नाथुला दर्रे (सिक्किम) से भी कैलाश मानसरोवर की यात्रा पर जा सकेंगे। फिलहाल यह यात्रा लिपुलेख दर्रे (उत्तराखंड) से होती है। नाथुला के जरिए यात्रा शुरू होने से तीर्थयात्रियों के लिए यात्रा का समय व संकट कम होगा। अब और अधिक विशेष बुजुर्ग तीर्थयात्री यह यात्रा कर सकेंगे।

इसके साथ ही चीन ने भारत के रेलवे नेटवर्क को मजबूत बनाने पर सहमति जताई है। रेलगाड़ियों की गति बढाने, हाइस्पीड रेलवे में सहयोग की व्यावहार्यता का अध्ययन करने तथा रेलवे स्टेशनों के पुनर्विकास के लिए दो समझौते हुए हैं। रेलवे में सहयोग को बढ़ावा देने के लिए रेल मंत्रालय तथा चीन राष्ट्रीय रेलवे प्रशासन मिलकर कार्ययोजना तैयार करेंगे। सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय ने चीन के प्रेस, प्रकाशन प्रशासन के साथ आडियो वीडियो सह निर्माण समझौता किया है। चीन के साथ सीमा मुद्दे पर वार्ता और कूटनीतिक विचार-विमर्श के लिए राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार श्री अजीत डोभाल, भारत के विशेष प्रतिनिधि नियुक्त किये गए। यह व्यवस्था राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार के कुल दायित्व का हिस्सा होगी।

चीन के राष्ट्र पति जिनपिंग ने कहा कि भारत आना मेरे लिए खुशी की बात है। भारत के प्रधानमंत्री के साथ सभी मसलों पर सकारात्मक बातचीत हुई। चीनी राष्ट्रपति ने कहा कि हमारे बीच सार्थक बातचीत हुई जिसमें परस्पर हित से जुड़े हुए सभी मुद्दे शामिल थे। शी ने मोदी को अगले साल के शुरू में चीन की यात्रा का न्यौता दिया। उन्होंने

यह भी कहा कि भारत चीन की एकता को दुनिया देखेगी। दोनों देशों को सक्रिय होकर विवाद हल करना चाहिए। दुनिया में भारत और चीन की अहम भूमिका है।

9.3.5 आर्थिक संबंध

बीते एक दशक में भारत और चीन के बीच व्यापार तेजी से बढ़ा है। दोनों देश आर्थिक भागीदारी के नए सोपान चढ़ रहे हैं। नई दिल्ली और बीजिंग के बीच व्यापार जिस रफ्तार से आगे बढ़ रहा है उससे चीन शीघ्र ही भारत का सबसे बड़ा व्यापारिक भागीदार बन जाएगा जबकि भारत चीन के 10 व्यापारिक भागीदार देशों में शुमार है। उम्मीद है कि वर्ष 2015 तक दोनों देशों के बीच द्विपक्षीय व्यापार बढ़कर 100 अरब डॉलर तक पहुंच जाएगा।

करीब पांच लाख भारतीय प्रतिवर्ष चीन की यात्रा कर रहे हैं जबकि भारत आने वाले चीनी नागरिकों का आंकड़ा करीब एक लाख है। भारत की रिलायंस इंडस्ट्रीज, महिंद्रा एंड महिंद्रा, एनआईआईटी, इंफोसिस, टीसीएस और विप्रो जैसे दिग्गज कम्पनियां चीन में अपने प्रतिष्ठान खोल चुकी हैं जबकि चीन की साइनोस्टील एवं शूगैंग इंटरनेशनल कम्पनियां भारत में कारोबार कर रही हैं। दोनों देशों के बीच व्यापारिक संबंध एक बेहतर भविष्य का खाका खींचते हैं।

भारत और चीन के बीच द्विपक्षीय व्यापार 2011-12 में 754,574.2 लाख डॉलर था, जबकि 2010-11 के दौरान यह 590,003.6 लाख डॉलर था। शर्मा ने कहा कि चीनी कम्पनियों को राष्ट्रीय विनिर्माण एवं निवेश जोन में आमंत्रित किया गया है, जिस पर अच्छी प्रतिक्रिया मिली है। वैश्विक आर्थिक मंदी के खास संदर्भ में भारत-चीन के आर्थिक रिश्ते को रेखांकित करते हुए चेन ने निवेश बढ़ाने की चल रहीं पहल पर बात की, ताकि चीनी कम्पनियां भारत में सेज और विनिर्माण जोन स्थापित कर सकें। भारत में लगभग 58 करोड़ डॉलर का चीनी निवेश है, जिसमें वृद्धि की काफी सम्भावना है। चेन ने कहा कि व्यापारिक प्रतिनिधिमंडल में बिजली, पेट्रोरसायन ओर मशीनरी सेक्टरों के प्रमुख प्रतिनिधि शामिल हैं। आर्थिक सम्बंध, व्यापार, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी (जेईजी) पर संयुक्त समूह का गठन 1988 में उस समय हुआ था, जब तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी बीजिंग गए हुए थे। भारत-चीन संयुक्त आर्थिक समूह की 9वीं बैठक के बाद मीडियाकर्मियों से बातचीत में शर्मा ने कहा कि चीन ने दोनों देशों के बीच व्यापार असंतुलन के मुद्दे पर सहयोग देने तथा भारतीय आईटी, आईटी सम्बंधित सेवाओं व फार्मास्युटिकल्स सेक्टर को चीनी बाजार सुलभ कराने का भारत को भरोसा दिया है। फिलहाल व्यापार का पलड़ा चीन के पक्ष में झुका हुआ है, और 2011-12 में यह 396514.6 लाख डॉलर था।

चीन के राष्ट्र पति जिनपिंग ने कहा कि भारत आना मेरे लिए खुशी की बात है। चीन के लोगों की तरफ से भारत की जनता को शुभकामनाएं देता हूं। चीनी राष्ट्रपति ने कहा कि हमारे बीच सार्थक बातचीत हुई जिसमें परस्पर हित से जुड़े हुए सभी मुद्दे शामिल थे। शी ने मोदी को अगले साल के शुरू में चीन की यात्रा का न्यौता दिया। उन्होंने कहा कि भारत ने विकास के नए मुकाम हासिल किए हैं। शी ने कहा कि भारत और चीन एक दूसरे के महत्व पूर्ण पड़ोसी हैं। उन्होंने यह भी कहा कि भारत चीन की एकता को दुनिया देखेगी। दोनों देशों को सक्रिय होकर विवाद हल करना चाहिए। दुनिया में भारत और चीन की अहम भूमिका है।

7 .अभ्यास प्रश्न

पहला कौन गैर साम्यवादी देश हैं जो चीन के साथ राजनयिक संबंध स्थापित किया ?

A.पाकिस्तानB.भूटान C.भारतD.अमेरिका

पंचशील समझौता किन देशों के बीच हुआ ?

A .चीनपाकिस्तान- B.भारतचीन- C.भारतनेपाल- D.चीन अमेरिका-

'चाईना पिकटोरियल' क्या है?

A.चीन की मासिक पत्रिका B.चीन की राजधानी C.चीन की नदी D.चीन का एक शहर का नाम

भारत सरकार ने वर्तमान मे चीन के साथ सीमा मुद्दे पर वार्ता और कूटनीतिक विचार विमर्श के-लिए किसे विशेष प्रतिनिधि नियुक्त किया है ?

A.सुषमा स्वराज B. एपीजे कलाम C.अजीत डोभाल D.अरुण जेटली

9.4 सारांश

21वीं शताब्दी के चीन व भारत मित्र भी हैं और प्रतिद्वंदी भी। अंतरराष्ट्रीय मामलों में दोनों में व्यापक सहमति है। अब दोनों देशों के सामने आर्थिक विकास और जनता के जीवन स्तर को सुधारने का समान लक्ष्य है। इसलिए, दोनों को आपसी सहयोग की आवश्यकता है। अनेक क्षेत्रों में दोनों देश एक-दूसरे से सीख सकते हैं।

चीन-भारत संबंधों के भविष्य समय गुजरने के साथ दोनों देशों के बीच मौजूद विभिन्न अनसुलझी समस्याओं व संदेहों को मिटाया जा सकेगा और चीन व भारत के राजनीतिक संबंध और घनिष्ठ होंगे। इस वर्ष सितम्बर में चीनी प्रधानमंत्री वन चा पाओ भारत की यात्रा पर गए। उनके भारत प्रवास के दौरान चीन व भारत दोनों देशों के नेता एक साथ बैठकर समान रुचि वाली द्विपक्षीय व क्षेत्रीय समस्याओं पर विचार-विमर्श किए। भविष्य में भारत- चीन संबंध और स्वस्थ होंगे और और अच्छे तरीके से आगे विकसित होंगे। आज हम देख सकते हैं कि भारत व चीन के संबंध लगतार विकसित हो रहे हैं। यह दोनों देशों की सरकारों की समान अभिलाषा भी है। दोनों पक्ष आपसी संबंधों को और गहन रूप से विकसित करने को तैयार हैं। चीन-भारत संबंध अवश्य ही और स्वस्थ व मैत्रीपूर्ण होंगे और एक रचनात्मक साझेदारी का रूप लेंगे। भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति नारायण ने कहा, मेरा विचार है कि चीन और भारत को द्विपक्षीय मैत्रीपूर्ण संबंधों को और गहरा करना चाहिए। हमारे बीच सहयोग दुनिया के विकास को आगे बढ़ाने में अहम भूमिका अदा कर सकेंगे।

9.5 शब्दावली

प्रभुत्ववादी – सर्वोच्च

प्रमोद काल- खुशनुमा समय

अखंडता- एकता

घुसपैठ- अनधिकार प्रवेश

अभिलाषा- इच्छा

9.6 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

I. इ) भारत II. आ) भारत-चीन III. A. चीन की मासिक पत्रिका IV. C. अजीत डोभल

9.7 संदर्भ ग्रंथ

1.यू. आर. घई "भारतीय विदेश नीति" न्यू अकेडमी पब्लिशिंग कंपनी जालंधर

2.पुष्पेश पंत "भारत की विदेश नीति" टाटा मैकग्राह हिल नई दिल्ली

3.तपन विस्वाल " अंतर्राष्ट्रीय राजनीति" मैकमिलन पब्लिशिंग नई दिल्ली

4.जे एन दीक्षित "भारतीय विदेश नीति" प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली

5.हर्ष वर्धन पंत "भारतीय सुरक्षा एवं विदेश नीति" प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली

9.8 सहायक /उपयोगी पाठ्य सामाग्री

1.वी एन खन्ना "भारत की विदेश नीति"

2.अरुण शौरी "चीन मित्रा या ?"

3.अरुण शौरी "भारत-चीन संबंध"

9.9 निबंधात्मक प्रश्न

1.भारत-चीन के बीच हुए 1962 के युद्ध के कारणों की विवेचना करें?